मूलग्रन्थके विषयमें बंगालके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों और सामयिकपत्रोंकी सम्मतियाँ।

कलकत्ता सिटी कालेजके प्रिन्सिपाल श्रीयुत उमेशचंद्रदत्त बी. ए. लिखते हैं—

"प्रत्येक मनुष्यके भीतर अमोघ इच्छाशक्ति है। किसी भी बड़े कामका संकल्प करके उस शक्तिके सहारे साधना करनेसे सिद्धि मिलती है। ग्रन्थकार केवल नीतिवादियोंकी तरह इस महान् तत्त्वका ही विचार करके नहीं रह गया है, परंतु उसने ऐतिहासिक उज्ज्वल दृष्टान्तों द्वारा अपनी रचनाको सप्रमाण सिद्ध कर दिखलाया है। अँगेरजीके प्रसिद्ध लेखक स्माइलकी पद्धतिके अनुसार यह ग्रंथ लिखा गया है। लेख सरल, विशुद्ध और उत्तम उत्तम युक्तियोंसे परिपूर्ण है। ऐसे ग्रन्थोंकी वर्त्तमान समयमें बहुत आवश्यकता है। यह पुस्तक स्त्री-पुरुषोंको सदाचार सम्पादन करनेमें सहायक होगी।"

सुप्रसिद्ध लेखक पंडित शिवनाथ शास्त्री एम्. ए. लिखते हैं—

"कर्मक्षेत्रको पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। हमारे बंगाली भाइयोंके चारित्रमें पुरुषोचित साहस और कर्त्तव्यसाधनमें दृढ़ताकी बड़ी कमी है। ग्रंथकारने इस अभावको दूर करनेके लिए विशेष प्रयास किया है। यह पुस्तक घर घर प्रत्येक युवकके हाथमें जाना चाहिए।"

हिन्दूकालेजके मुख्य संस्कृत अध्यापक श्रीकेदारनाथ घोष लिखते हैं—

"इस पुस्तकके भीतरी और बाहरी दोनों अंग परम सुन्दर हैं। ग्रन्थकारने योग्य समयमें निरुद्यमी, उत्साहहीन और हतभाग्य भारतवासियोंका उत्साह बढ़ानेके लिए लेखनी उठाई है। लेखक पुस्तक-रचनामें पूर्णरूपसे सफल हुआ है। यह पुस्तक प्रत्येक शिक्षित पुरुषके पास रहना चाहिए। ऐसे ग्रंथका समस्त भारतीय भाषाओंमें अनुवाद होना चाहिए।"

"इस ग्रंथको पढ़ते पढ़ते कर्मवीर बननेकी आकांक्षा मनमें उत्पन्न होती है। किसी भी ग्रंथके लिए इससे अधिक प्रशंसाकी बात और नहीं है।" (संजीवनी।)

"आत्मसंयम करना सीखने और सदाचार संपादन करनेमें यह पुस्तक युवाओंके लिए बहुत सहायक होगी। पुस्तककी भाषा सरल है, वर्णन सहज ही समझमें आता है और भाव हृदयको उन्नत बनाता है। युवाओंमें यदि ऐसे ग्रन्थका प्रचार न हो तो हमारे देशका दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।" (हितवादी।)

The Amrita Bazar Patrika says:—" To the lovers of a pure and healthy literature this invigorating and hightened book will offord real and genuine employment. To young readers in Particular we earnestly recommend the perusal of this excellent treatise which for Solid usefulness may well be preferred to those lighter Productions of the day."

The Bengalee says:—" Karma Kshetra preaches the gospel of work and teaches the great lesson that life is real and earnest and should be devoted to work. It is precisely this kind of literaure that is wanted for the formation of the character of the rising hopes of the nation and we have no hesitation in placing this book in the hand of every young man; the stimulating effect of a book of this kind it would be impossible to overestimate."

The Behar Herald says:—" The Style of the book is admirable, the arrangement of the matter is excellent, the expositions are lucid and the arguments are convincing and skilfully put. The study of such a work is an intellectual tonic."

मूलग्रन्थकर्त्ताकी प्रस्तावना।
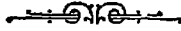
भारतीय युवाओंके कल्याणके लिए कर्मक्षेत्रकी रचना की गई है। इस ग्रन्थमें कर्मवादके सम्बन्धमें तात्त्विक दृष्टिसे कुछ विचार नहीं किया गया है और यह ग्रंथका उद्देश्य भी नहीं है। मनुष्योंके भीतर इच्छाशक्ति नामक एक ईश्वरदत्त महाशक्ति है। इस बातको समझानेके लिए ग्रंथके आरंभमें प्रयास किया गया है। मनुष्य-मात्रको कार्य्यमें प्रवृत्त होनेके पहले आत्मशक्तिको जान लेनेकी परमावश्यकता है। मनुष्य विश्वासका दास है। यदि वह सरलतासे दृढ़ विश्वास करे कि मुझमें इच्छाशक्ति है और मैं उस महाशक्तिकी सहायतासे अनेक दुःसाध्य प्रतीत होनेवाले कार्योंको साध्य कर सकता हूँ, तो वह विघ्नोंके भयसे अथवा प्रारब्धको दोष देकर निश्चेष्ट नहीं बैठ सकता। जिस मनुष्यको अपनी इच्छाशक्तिपर दृढ़ विश्वास हो, उसे कर्ममें प्रवृत्त करना और उसे उपदेश तथा आदर्शों द्वारा उत्साहित करना चाहिए। इसी उद्देश्यसे कर्मके मूलमें संकल्प, मध्यमें साधना और अंतमें सिद्धिके विषयमें लिखा गया है। स्वदेशी कर्मवीर पुरुषोंके आदर्शोंको सन्मुख रखकर यह बतलानेकी चेष्टा की गई है कि यदि संकल्प दृढ़ हो और आशा, निश्चय, साहस, आस्था तथा भक्तिके साथ साधना की जाय तो हमारे देशके युवक प्रयासके प्रमाणानुसार सिद्धि प्राप्त करके कर्मक्षेत्रमें निर्भयतासे विचरण करके अपनी, अपनी आत्माकी और अपने देशकी उन्नति करनेमें समर्थ हो सकते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस ग्रंथमें कर्मवीर पुरुषोंका समग्र जीवनचरित नहीं लिखा गया। क्योंकि यह कुछ जीवनचरितोंका संग्रह नहीं है। जिन महापुरुषोंका आदर्श इस ग्रंथमें एकत्रित किया गया है, उनमेंसे अनेकोंके विस्तृत जीवनचरित लिखे जा चुके हैं। कुशल लेखकोंने उनके जीवनकी समस्त घटनायें उनमें उत्तमतापूर्वक लिखी हैं। अतएव उन सब घटनाओंकी पुनरावृत्ति करना अनावश्यक है। इस ग्रंथको लिखते समय उन सब ग्रंथकारोंके लिखे हुए जीवनचरितोंसे हमें यथेष्ट सहायता मिली है, अतएव हम उनका उपकार मानते हैं।

इस ग्रंथमें कर्मकी तीन अवस्थायें दिखाई गई हैं । प्रथम संकल्प, दूसरी साधना और तीसरी सिद्धि । जिन कर्मवीर पुरुषोंका आदर्श इसमें दिखलाया गया है, वे भारतीय शिक्षित समुदायमें भलीभाँति परिचित हैं । उनका अधिक परिचय, जन्म–मृत्युका समय, जन्मस्थान अथवा माता-पिताके कुलका वर्णन इसमें नहीं लिखा गया है । ये सब बातें उनके जीवनचरितोंमें मिलेंगी । परंतु उन्होंने अपना संकल्प किस अवस्थामें किया था, कैसी अनुकूल अथवा प्रतिकूल अवस्थामें उन्होंने अपने संकल्पोंकी साधना की थी और उन्होंने अंतमें कैसी सिद्धि प्राप्त की थी, इन सब बातोंका इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन लिखा गया है । हम आशा करते हैं कि हमारे देशके युवकगण कार्यके समय कर्मक्षेत्रके भिन्न भिन्न विभागोंमें इन सब पुण्य-प्रसंगोंको पढ़कर भले कामोंके लिए संकल्प करेंगे; आशा, निश्चय, साहस, आस्था और भक्तिके साथ साधनामें प्रवृत्त होंगे और अंतमें भगवत्कृपासे सिद्धि प्राप्त करेंगे ।

ग्रन्थकार ।
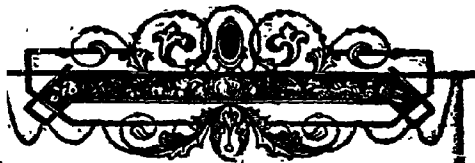
वक्तव्य ।

यह पुस्तक श्रीशशिभूषणसेन रचित बङ्गला पुस्तकका अनुवाद है । इस ग्रंथके लेखनेका उद्देश्य ग्रंथकारने अपनी प्रस्तावनामें दरशाया है । मूल ग्रन्थकारकी प्रस्तावनाका अनुवाद हमने ग्रंथारंभमें दे किया है, इसकारण अब फिरसे इस विषयमें कुछ लिखकर पुनरुक्ति करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

यहाँपर यह कह देना उचित है कि यह पुस्तक मूल बंगला पुस्तकपरसे नहीं, किंतु उसके **गुजराती अनुवाद**परसे लिखी गई है । मूल पुस्तक न मिलनेके कारण ही हमको ऐसा करना पड़ा है । अतः हम मूल लेखकके साथ ही साथ गुजराती भाषान्तरकर्ता **वैद्यमार्तंड यादवजी त्रीकमजी आचार्य** और **शास्त्री नाथजी चि० मोहनजी व्यास बी. ए.** काभी आभार मानते हैं । जहाँतक मुझसे हो सका मैंने अनुवाद–कार्यको बहुत सावधानीके साथ किया है, फिर भी प्रमादवश या अल्पज्ञताके कारण जो भूलें रह गई हों, उनके लिए मैं पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

देवरी (सागर) म. प्र.
वसन्तपञ्चमी सं. १९७२ — शिवसहाय चतुर्वेदी ।

विषयानुक्रमणिका ।

पहला प्रकरण ।

दूसरा प्रकरण ।

तीसरा प्रकरण ।

चौथा प्रकरण ।

परमात्मने नमः ।

कर्मक्षेत्र ।

पहला प्रकरण ।

आत्मशक्तिकी पहिचान ।

मनुष्य कर्मशील है । क्रियाके विना मनुष्यके अस्तित्वकी कल्पना करना भी कठिन है । कर्मरहित पुरुष मुर्दाके समान है । इच्छासे या विना इच्छासे, जानकर या अन-जानमें, मनुष्यके भीतर और बाहर निरंतर कोई न कोई काम--कोई न कोई क्रिया हुआ ही करती है । धमनियोंमें रक्त बहा करता है, फेंफड़ोंमें श्वासोच्छ्वास क्रिया होती रहती है और मस्तिष्कमें विचार-शृंखला उठा करती है । इन्हीं विचारोंके अनुसार भोजन करने, चलने, फिरने, खेती करने, घर बनाने, सड़कें तैयार करने, समुद्रके भीतर बिजलीके तार डालने, बेलूनमें बैठकर आकाशमें उड़ने आदि छोटे अथवा बड़े, दृश्य अथवा अदृश्य, किसी न किसी काममें--किसी न

किसी क्रियामें मनुष्य निरंतर लगा ही रहता है। इन सब कामोंको हम साधारण रीतिसे दो भागोंमें विभक्त करते हैं- (१) कुछ काम ऐसे हैं जो अपने आप हुआ करते हैं और मनुष्यकी इच्छाके अधीन नहीं हैं; जैसे रक्तका बहना, खाये हुए अन्नका पचना और शरीरका बढ़ना आदि; (२) कुछ कार्य ऐसे हैं जो मनुष्यकी इच्छानुसार हुआ करते हैं और जो मनुष्यकी इच्छाशक्तिके अधीन हैं। जो कार्य अपने आप हुआ करते हैं अर्थात् जो मनुष्यकी इच्छाशक्तिके अधीन नहीं हैं वे हमारे विषयसे बाहर हैं; परंतु जो कार्य मनुष्यकी इच्छाके अधीन माने गये हैं, इस जगह हमको उनके विषयमें विचार करना है। ये काम आदिसे अंत तक किस प्रकार हमारी इच्छाशक्तिके अधीन हैं यह जाननेके लिए हमें प्रयत्न करना उचित है। कर्मके साथ इच्छाशक्तिका जो संबंध है, उसका जानना परमावश्यक है; क्योंकि उसे जाने बिना आत्मशक्तिकी अज्ञानताके कारण हमको अनेक दुःख भोगना पड़ते हैं। जिस प्रकार मनुष्यको यह जानना आवश्यक है कि मेरी निर्बलता कहाँ है, उसी प्रकार उसे यह जाननेकी भी आवश्यकता है कि मेरी शक्ति कहाँ है। जिस तरह एक दरिद्र किसान अपने खेतमें गड़े हुए गुप्त धनका हाल न जाननेके कारण जन्मभर कङ्गाल रहता है, उसी तरह अनेक लोग अपनी शक्तिका हाल न जाननेके कारण संसारमें सामान्य और छोटे छोटे विघ्नोंके भयसे निश्चेष्ट और कायर बने रहते हैं। ऐसे लोगोंको किसी कामके करनेका उपदेश देनेके पहले-किसी काममें उत्साहित करनेके पहले, उन्हें यह समझा देना चाहिए कि उनमें कितनी शक्ति है-कितनी क्षमता है। मनको उत्तेजन देनेवाले व्याख्यानोंसे भाव पैदा होता है और भाव पैदा होनेसे मनकी प्रवृत्ति कर्मकी ओर झुकती है; परंतु यह प्रयास मूर्च्छामें पड़े हुए व्यक्तिको उसके हाथ पैर हिला-डुलाकर उस जागृत करनेके समान क्षणस्थायी है। उसकी जागृतिको स्थायाचिरी

करनेके लिए उसे उदाहरणों और दलीलोंके द्वारा विश्वास उत्पन्न करानेकी आवश्यकता है; क्योंकि मनुष्य विश्वासका दास है।

कुतर्क करनेवालोंके वाक्चातुर्य्यको एक ओर रखकर हम यह मान लेते हैं कि मनुष्यकी इच्छा मनुष्यके स्वाधीन है; जो ऐसा न माने तो कहना चाहिए कि अपराध, पाप, पुण्य, दंड, प्रायश्चित्त आदिका भागी मनुष्य नहीं है। परन्तु ऐसा नहीं है, कर्ममें मनुष्यका कर्तृत्व माना जाता है और कर्मकी मूलमें उसकी इच्छाशक्तिको प्रधान गिनते हैं। इच्छासे कर्मकी प्रवृत्ति होती है। इच्छा ही शक्ति है। यह शक्ति जिसमें जितनी अधिक होती है, वह उतने ही प्रमाणमें अधिक सफल होता है। मनुष्यकी देह, अवयव और उसके विभाग यंत्रके समान हैं, मन इस यंत्रको चलानेवाला है और वह इच्छाशक्तिके सहारे उन सबको अपने अपने कामोंमें लगाये रहता है। शरीरपर इच्छाशक्तिकी सत्ता आश्चर्यजनक है। शरीर कैसा ही असमर्थ और लकड़ीके समान जड़ क्यों न हो गया हो, परंतु वह इच्छाशक्तिके इशारेसे नाचता है। जगतके कर्मवीर पुरुषोंके जीवनचरित पढ़नेसे इस बातकी सत्यता भलीभाँति विदित होती है। हम आगे कई महापुरुषोंकी इच्छाशक्तिका वर्णन करते हैं।—

सात्विक इच्छाशक्तिका उदाहरण बुद्धदेव।

पृथ्वीके महापुरुषोंमें बुद्धदेवकी साधनाकी बात लेकर हम इस विषयको स्पष्ट करनेका प्रयत्न करते हैं। बुद्धने आराड और रुद्रक नामके दो पंडितोंके पास हिन्दूशास्त्रों और योगका अध्ययन किया था। परंतु जब वे उनको उनकी इष्ट वस्तु प्राप्त करनेका उपाय न बता सके, तब बुद्धने सोचा कि मैंने अभी तक देहको पापसे दूर रखकर क्या किया? क्योंकि पापसे दूर रहनेपर भी अब भी मैं देह तथा मनमें वासनाओंकी वेदनाका अनुभव कर रहा हूँ; वासनाओंको निर्मूल किये बिना क्या हो

सकता है ? अब मैं कठिन साधनाओंके द्वारा मन तथा शरीरको क्षीण करूँगा और वासनाओंके बीजको देह तथा मनसे उखाड़कर फेंक दूँगा—तभी निश्चिन्त होऊँगा। ऐसा संकल्प करके बुद्धदेव निरंजना नदीके तीरपर जा पहुँचे। वहाँ एक सुन्दर वन था, उसकी प्राकृतिक शोभा बहुत रमणीय थी। वनस्थल शान्तिसे परिपूर्ण था निरंजना उस रमणीक वनमेंसे होकर निर्मल धारासे निरंतर वहा करती थी। वृक्षोंकी शीतल छाया ग्रीष्म-आतपको शान्त करती थी। वृक्षोंके ऊपर कोयल और नीचे हँस, बतक आदि जलचर पक्षी कलरव किया करते थे। प्रकृति मानों उस स्थानपर मूर्तिमान् शान्तिरूपसे निवास करती थी। बुद्धदेव पहले इस प्रमोदवनमें बहुत समय तक रह चुके थे, परंतु उन्हें ऐसी शान्ति और तृप्ति पहले कभी नहीं मिली थी। उन्हें ऐसा मालूम होने लगा कि मानों इस स्थानपर आते ही मेरे प्राण एकदम शान्तिरसमें डूब गये हैं। उस स्थानको उन्होंने अपनी साधनाके लिए उपयोगी समझकर अपना संकल्प दृढ़ किया और फिर वे उस स्थानपर योगासन लगाकर बैठ गये। लगातार ६ वर्षें उन्होंने इसी तरह अचलरूपसे व्यतीत कीं। उन्होंने इच्छाशक्तिकी सहायतासे योगप्रक्रिया द्वारा स्वासोच्छ्वासको रोककर समाधि-साधन की, इस अवसरमें उनके भीतर और बाहर कई फेरफार हो गये, भूख, प्यास, स्नेह, ममता आदि उनपर अपना कुछ प्रभाव न डाल सकी। धूप, ठंड और बरसात आदि कोई भी उनको चलायमान न कर सकी। वर्फसे ढँकी हुई उच्च पर्वत-शिखरोंके सदृश शान्त और समाहित चित्तसे वे ध्यानमें मग्न बने रहे। उनके शरीरके ऊपर जेष्ठ-आषाढ़की कड़ी धूप, श्रावण-भादोंकी प्रबल वर्षा और अगहन-पौषकी विषम शीत पड़ती थी; तो भी श्रेष्ठसाधक महात्मा बुद्धदेवका उस ओर ध्यान ही न जाता था। लगातार ६ वर्षोंतक कभी वृक्षोंके कंदमूल फल [illegible]कर और कभी बिना कुछ खाये ही रह जाते थे। महात्मा बुद्ध कपिलवस्तुके राजकुमार और

शाक्यकुलके गौरव-स्वरूप थे । उनका सुकुमार शरीर सूखकर अस्थि-पंजरमात्र रह गया था—लकड़ीके समान जड़ हो गया था। अब यहाँपर मैं यह पूँछता हूँ कि मनुष्य-शरीरपर इच्छाशक्तिका कितना प्रभाव है ? इच्छा प्रबल हो और संकल्प दृढ़ हो तो शरीरको घोलकर और आत्मभोगोंको त्यागकर चाहे जो साधना साधितकी जा सकती है। इस विषयमें अब कौन शंका करेगा ?

धार्मिक विश्वासोंके कारण आज भी इस देशमें नाना प्रकारकी तपस्यायें और साधनायें की जाती हैं । जिस मुक्तिलाभके लिए महात्मा बुद्धने वैसी उग्र तपस्या की थी, उसी मुक्तिलाभके लिए आज भी कई एक प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध पुरुष वनोंमें, पर्वतोंकी गुफाओंमें योग—साधनमें लगे हुए हैं। उनकी साधनाओंसे यह जाना जाता है कि यदि वे इच्छित कार्यकी साधनाके लिए मनुष्य दृढ़-संकल्पवाला हो तो वह शारीरिक दुःखोंको विघ्नस्वरूप नहीं गिनता। उसकी इच्छाशक्तिके सामने कोई भी शारीरिक दुःख नहीं टिक सकता। जिस प्रकार पर्वतसे निकले हुए झरनेका जल मार्गमें पड़नेवाले पत्थरोंको लाँघ जाता है, उसी तरह इच्छाशक्ति भी प्रबल विघ्नोंको उल्लंघन कर सकती है । राजकुमार बुद्धने स्नेह, ममता, सुख और ऐश्वर्य्यको त्यागकर सिद्धि प्राप्त करनेके लिए जिस कठोर साधनासे संसारको स्तब्ध कर रक्खा था, वह एक प्रकारकी साधना थी—वह सात्विक साधना थी । अब राजसी साधनाका उदाहरण देते हैं—

राजसी इच्छाशक्तिका उदाहरण महाराणा प्रतापसिंह।

“ जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ” अर्थात् जननी माता और जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ हैं। इस मंत्रके उपासक एक श्रेष्ठ साधककी बात यहाँ लिखी जाती है । उस परसे तुम जान सकोगे कि नष्ट हुए गौरव और खोये हुए राज्यको पुनः प्राप्त करनेके लिए, और उसी तरह स्वतंत्रताकी

रक्षाके हेतु एक राजकुमार भी वनवासी होकर–फल मूल खाकर कैसी कठोर साधना कर सकता है! राजपूताना साधनाकी दर्पणरूप भूमि और प्रकृतिकी उग्रमूर्तिका क्रीडास्थल है। कहीं बड़े बड़े मैदान, कहीं छोटी छोटी पहाड़ियाँ और नदियाँ उसे सुशोभित किया करती हैं। इस प्राकृतिक चित्रके भीतर स्वतंत्रताकी पुण्यभूमि और सती–धर्मका प्रसिद्ध तीर्थस्थान चित्तौड़ है। हम जिस समयकी बात लिख रहे हैं, उस समय चित्तौड़ मुसलमानोंके अधिकारमें था। राना उदयसिंहने चित्तौड़से भागकर उदयपुरमें अपनी साधारण राजधानी स्थापित की थी।

परन्तु चार वर्ष भी न वीतने पाये थे कि उनका परलोकवास हो गया। उदयसिंहकी मृत्युके बाद प्रतापसिंह मेवाड़के राना हुए। मुगल-सम्राट् उनके पिताके शत्रु थे। उनके अधिकांश कुटुम्बी भी सम्राट्के पक्षमें जा मिले थे। कुछ स्वदेशप्रेमी राजपूतोंके सिवा प्रतापका और कोई सहायक न था। मददका सुभीता और बलका भरोसा जो कुछ कहो वे ही लोग थे। उनकी सलाह और सहायताके भरोसे प्रतापसिंहने मुगलराज्यकी आधीनता स्वीकार नहीं की; इतना ही नहीं, पर मित्रता करनेके लिए भी उन्होंने तिरस्कार प्रदर्शित किया। प्रतापसिंहकी इच्छा थी कि मैं चित्तौड़को पीछे लौटाऊँगा, अपने बाहुबलपर भरोसा रखकर मुगल-सैन्यरूपी दुस्तर सागरको पार करूँगा। उनकी यही वासना थी, यही दृढ़ प्रतिज्ञा थी और इसी प्रतिज्ञाको सफल करनेके लिए वे निरंतर तत्पर रहा करते थे। वे शत्रुसैन्यकी हलचलको बड़ी बारीकीसे जानने और स्वतंत्रताकी रक्षाके लिए, भूख, प्यास और नींदको छोड़कर मेवाड़के राजपूतोंको लड़ाईकी शिक्षा देने लगे। इस तरह धीरे धीरे प्रतापसिंहने २२,००० हजार राजपूतोंकी सेना तैयार कर ली। यह खबर धीरे धीरे बादशाहके कानों तक पहुँच गई। अकबरने मानसिंह और शाहजादा सलीमको असंख्य फौजके साथ प्रतापसिंहको वशमें करनेके लिए भेजा।

उस समय भारतवर्षमें थर्मोपोली * के समान हल्दीघाटका युद्ध हुआ। इस युद्धका हाल इतिहासमें पढ़ते समय आज भी शरीर कांप उठता है। प्रतापसिंहके उस साहस और शौर्यकी छटाका अनुभव करते ही आज भी शरीरमें रोमांच हो आता है। वास्तवमें प्रतापसिंहका वीरत्व ऐसा ही था! इस महायुद्धमें राजपूतकुल-कलंक मानसिंहके रुधिरसे अपनी तरवार रँगनेकी इच्छासे प्रतापसिंह एक मदोन्मत्त हाथीकी तरह चारों ओर घूमने लगे। मानसिंह तो न मिला, पर उसके वदले उनके सामने शाहजादा सलीम आ गया। प्रतापसिंहका चेटक नामका घोड़ा सलीमके हाथीकी सूँड़पर अपने आगेके दोनों पैर रखकर खड़ा हो गया। प्रतापने अपना तीक्ष्ण भाला भयंकर वेगसे सलीमकी ओर फेंका, भाला लोहेके हौदेमें लगकर टूट गया, तो भी उसने महावतके प्राण ले ही लिये। हाथी निरंकुश होकर रणस्थलसे भाग गया, इस तरह उसने अपने और अपने मालिकके प्राण वचाये। उस समय रणमदमें मत्त हुए प्रतापसिंह शत्रु-सैन्यसे घिर गये। वनवासी होनेपर भी प्रताप-सिंहने मेवाड़का राजछत्र छोड़ा न था। इस भयंकर युद्धमें वह रक्तवर्ण राजछत्र उनके गर्वित मस्तकपर शोभा देता था। चारों ओरसे शत्रु सैन्य दारुणवेग और भयंकर कोलाहलके साथ उस राजछत्रकी ओर दौड़ पड़ी। प्रताप इस समय संकटमें पड़ गये थे, तो भी उन्होंने

* थर्मोपोली नामका घाट ग्रीस देशमें है। वहाँ ईस्वी सन्‌के ४८० वर्ष पहले ईरानके बादशाह झर्कसीसकी चढ़ाईके समय मुट्ठीभर स्पार्टा लोगोंने थोड़ेसे एथी-नियन्स और थीस्पीयन लोगोंके साथ मिलकर ईरानी फौजसे बड़ी दृढ़ताके साथ साम्हना किया था। उस युद्धमें बादशाहीसेना संख्यामें बहुत अधिक थी, परंतु तो भी वे लोग उसके साथ बड़ी मजबूतीके साथ लड़े। इसी घटनाके कारण वह स्थान इतिहासमें प्रसिद्ध है।

उस राजचिह्नको परित्याग नहीं किया था । यद्यपि वे विपत्तिकी गंभीरताको भलीभाँति जानते थे, परन्तु उनका वीर हृदय उससे घबराया नहीं था । प्रतापसिंहमें तरवार चलानेकी अपूर्व कुशलता थी । जिस समय वे शत्रुओंका संहार करनेमें लगे थे उस समय उनका विशाल शरीर रक्तसे रंग गया था और शत्रुओंके किये हुए सात जखमोंसे लोहू बह रहा था; परंतु उस ओर उनका ध्यान भी न था । बिना विश्राम लिये और बिना थके वे अत्यंत उत्साहके साथ शत्रु-संहार करनेमें लगे हुए थे । इस समय झाला राणाने उनके राजछत्रको अपने हाथमें लेकर शत्रुओंके हाथसे उनकी रक्षा की थी । इसी समय उनके काले घोड़े चेटकने अपने स्वामीको दूसरी जगह ले जाकर उनकी रक्षा की । इस तरह अपने समस्त सुखोंको वलि देकर और अनेक प्रकारके दुःखोंको सहकर जो अपने संकल्पको सिद्ध करते हैं उन्हें धन्य है ! उनके वीरमंत्रकी दीक्षाको धन्य है ! इस तरह हल्दीघाटकी पवित्र भूमिपर होनेवाले उस भयंकर संग्रामका अंत हुआ । उस महायुद्धमें १४,००० स्वदेशाभिमानी और राजभक्त राजपूतोंने अपने प्राणोंकी वलि दी ! हल्दीघाटकी एक एक रज आज भी महाराणा प्रतापसिंहके अपूर्व वीरत्वका स्मरण कराती है । हल्दीघाटके युद्धके वाद दिन, महीना और वरस बीतने लगे । महापराक्रमी मुगलबादशाह कम कमसे प्रतापके हाथके स्थान अपने हाथमें करने लगा । प्रताप अपने परिवार सहित एक पहाड़से दूसरे पहाड़पर, एक वनसे दूसरे वनमें और एक गुफासे दूसरी गुफामें छिपकर मुगलोंसे अपनी रक्षा करने लगे, परन्तु शत्रुलोग छायाके समान उनका पीछा करते ही रहे । मनुष्य अपने सुखके लिए इतनी चिन्ता नहीं करता, परंतु अपने कुटुम्बियोंको किस प्रकार सुखमें रक्खें, इसके लिए वे चिंतातुर रहने लगे । कहीं अपना कुटुम्ब मुगलोंके हाथमें न पड़

जाय और पवित्र सीसोदिया कुलको कलंक न लग जाय यही चिन्ता उनको निरंतर वेदना पहुँचाती रहती थी। उनको वनवासमें कई बार शत्रुओंके भयसे अपने बाल बच्चोंको भिल्लानियोंके साथ जंगलके अंधकारयुक्त गुप्तस्थानोंमें छिपा देना पड़ा। फल और झरनोंके पानीसे अपनी भूख और प्यास बुझानी पड़ी। ऐसा कहा जाता है कि एक दिन उनको पाँच बार परोसी हुई थाली छोड़कर एक ठौरसे दूसरे ठौरको भागना पड़ा था; पर तो भी उस वीर पुरुषका हृदय न डिगा। यह साधना कुछ कम कठोर नहीं है। केवल मुगल-सम्राट्के साथ वे मित्रता करना स्वीकार कर लेते, तो वे राजाओंके योग्य सुख और स्वतंत्रतासे रह सकते थे। उन्होंने अपनी इच्छा और स्वतंत्रताकी प्रेरणासे उज्ज्वल यशके लिए यह संन्यासव्रत धारण किया था और उसमें सिद्धि-लाभ करनेकी दृढ़ आशासे वे इस कठोर साधनामें लगे हुए थे। हम पूछते हैं कि इसका मूल कारण क्या है? इसका उत्तर यह है कि केवल दृढ़ प्रतिज्ञा और अनिवार्य्य इच्छाशक्ति। इसके सिवा इसका और दूसरा कारण क्या हो सकता है?

अग्निमें जलानेकी शक्ति है। इस शक्तिकी सहायतासे कोई अच्छा काम करता है और कोई बुरा। तत्त्ववेत्ता लोग अग्निकी सहायतासे भाफ उत्पन्न करके सैकड़ों कारखाने चलाते हैं, अग्निहोत्री ब्राह्मण उसकी सहायतासे यज्ञ कर्म करते हैं और दुष्ट तथा पाजी लोग उससे घरोंको जलाकर सैकड़ों लोगोंको दरिद्र और निराधार बना देते हैं—उन्हें बरबाद कर डालते हैं। इससे भलीभाँति जाना जाता है कि शक्तिका सदुपयोग और दुरुपयोग उसके प्रयोगके उद्देश्यके ऊपर निर्भर रहता है। अब हम इच्छाशक्तिका एक दूसरा उदाहरण देते हैं। उस उदाहरणमें अच्छेपनका अभाव रहनेपर भी इच्छाशक्तिकी प्रबलता दिखाई देगी। यह तामसी इच्छाशक्ति है। हम जिसके विषयमें कह रहे हैं वह भारतवर्षका एक

मॅकियावेली,* खटपटवाली राजनीतिमें कुशल और अपने नामसे प्रसिद्ध होनेवाला चाणक्य है।

तामसी इच्छाशक्तिका उदाहरण चाणक्य।

मगधदेशकी राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) में आज शोकका उत्सव था। आज महाराज महानन्दके बापका श्राद्ध था। राजमहलके विशाल चौकमें मंडपके नीचे एक बड़ी श्राद्ध-सभा भरी थी। भिन्न भिन्न प्रदेशोंसे आये हुए लोगोंके समूह उस जगह जमा हुए थे। एक ओर शास्त्रज्ञ ब्राह्मण बैठे हुए शास्त्रसम्बन्धी वादविवाद कर रहे थे और दूसरी ओर सब लोग बैठे हुए शास्त्रार्थ सुन रहे थे। एक ओर दानमें देनेके लिए गायें और घोड़े आदि एकत्रित किये गये थे। स्थल स्थलपर चांदी और सुवर्णके पात्र सूर्यके तेजसे चमक रहे थे। साधारण दर्शक बड़ी उत्सुकताके साथ चारों ओर देखते थे। बाहरी भागमें भाट और चारण मधुर स्वरसे मृत पुरुषोंका यशोगान करते हुए, उनके अक्षय स्वर्ग-सुखके हेतु, ईश्वरसे प्रार्थना कर रहे थे। चारों ओर उत्सुकता और धूमधाम नजर आती थी। ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होनेवाले प्रधानमंत्री राक्षसको श्राद्धमें ब्राह्मणोंका निमंत्रित करनेका काम सौंपा गया था और इसलिए वह इस काममें खूब उलझा हुआ था। कपटी और वैर भँजानेकी इच्छा रखनेवाला शत्रु हमेशा अशुभ करनेका सुयोग देखा करता है। महानन्दका दूसरा मंत्री शक-

---

* मॅकियावेली (निकोलो) ई० सन् १४६९ के मई मासमें तीसरी तारीखको फलेरेन्समें जन्मा था। उसने राजनीतिसंबंधी कई पुस्तकें लिखी हैं। उसने अपनी ' दि प्रिन्स ' नामक पुस्तकमें राजाओंको स्वतंत्र सत्ता प्राप्त करनेके लिए क्या क्या योजनायें करना चाहिए, इसका विवेचन किया है। उसमें वह लुचाई, धोखेबाजी, कपट और गुप्त षड्यंत्रोंसे भी काम लेनेका उपदेश देनेसे नहीं चूका है।

टार कि जिसे पहले महानंदने कैदमें डालकर अपमानित किया था— बदला लेनेके लिए छुपी रीतिसे प्रयत्न कर रहा था। एक दिन उसने देखा कि चाणक्य नामका एक ब्राह्मण पैरमें दर्भ (कुशा) का काँटा लग जानेके कारण कुपित होकर उस खेतकी सब दर्भको उखाड़कर फेंक रहा है। उसने उसके राजनीतिशास्त्र और कूटबुद्धि सम्बन्धी ज्ञान-का परिचय पाकर उसे महानंदके वंशका नाश करानेके लिए सब तरहसे उपयुक्त समझा। शकटारको आज अच्छा सुयोग मिला। उसने चाणक्यको निमंत्रित ब्राह्मणोंकी तरह लाकर सभाके भीतर मुख्य आसन-पर बैठा दिया और आप किसी कामके बहानेसे सभासे बाहर चला गया। इतनेमें राक्षस महानंदकी आज्ञानुसार निमंत्रित ब्राह्मणोंको सभामें ले आया; परंतु उसने आकर देखा कि निमंत्रित ब्राह्मणोंके लिए जो आसनें तैयार की गईं थीं, उसपर पहले ही से चाणक्य आ बैठा है। उसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ और उसका काला वर्ण, बेडौल आकार तथा लाल लाल आँखें देखकर विस्मय और क्रोधके आवेशमें आकर पूँछा—' तुम्हें किसने यहाँ बैठाया है ? ' सभाके अंदर इस तरह पूँछनेके कारण चाणक्य-को कुछ खेद और अपमान मालूम हुआ; परन्तु उसने अपने मनोभावको छिपाकर राक्षसके प्रश्नका उचित उत्तर दे दिया। राक्षसने शकटारकी सारी करतूत समझकर उसकी इस शरारतको राजासे जाकर कहा। शकटारपर राजाकी पहले ही से अप्रसन्नता थी, आज भरी सभामें उसकी ऐसी शरारत देखकर राजाके क्रोधका ठिकाना न रहा। उन्होंने उसी समय सभामें आकर काले वर्ण, बड़े दांत और लाल आँखोंवाले चाणक्यकी चोटी पकड़कर उसे आसनपरसे उठा दिया। इसमें शक-टारकी कुछ चालबाजी है, इस बातकी चाणक्यको कुछ भी खबर न थी। जब उसने सभाके भीतर अपना ऐसा अपमान देखा, तब उसने उग्रमूर्ति धारणकरके और सभाके सन्मुख धरतीपर जोरसें पैर पटककर

कहा–“ अरे राजकुल कलंक, दुर्मति महानंद ! तूने भरी सभामें निरपराधी ब्राह्मणका जो अपमान किया है, उसके लिए तुझे एक दिन अवश्य पश्चात्ताप करना पड़ेगा ! ” इसके बाद उसने सभासदोंकी ओर देखकर कहा–“ हे सभासदो ! मैं चाणक्यशर्मा हूँ, महानंदने विना अपराध आज मेरी चोटी पकड़कर जो अपमान किया है उसका वदला मैं उसे दूँगा । मैं सबके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जबतक नंदवंशको जड़-मूलसे न उखाड़ डालूँगा तवतक इस छूटी चोटीको न बाँधूगा; यह छूटी चोटी महानंदको काले साँपके समान होगी । ” चाणक्य इस तरह कहकर सभा छोड़के वह शकटारके घर चला गया । सभासदोंने मानों श्राद्धसभामें दक्षयज्ञका नाटक देखा । वे लोग निमंत्रित और शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मणका इस तरह अपमान होते देखकर और राजाके भयसे डरकर लज्जा और तिरस्कारसे सिर नीचा करके मन-ही-मन कहने लगे कि, “ अपरं वा किं भविष्यति ”–अब और क्या होगा ? शकटार चाणक्यकी मुखमुद्रा देखते ही समझ गया कि मेरा प्रयत्न सफल हुआ । फिर अपने मनमें महानंदके सर्वनाशकी योजना करके प्रपंची लोगोंके समान वह उसे सहायता देनेका वचन देकर उत्तेजित करने लगा । दो कुटिलोंका विचार एकसा होगया । चाणक्य कपटी राजनीतिका पारदर्शी विद्वान् था; इसके सिवा वह कई प्रकारके रासायनिक प्रयोग भी जानता था । उसकी यह सारी विद्या और बुद्धि इस समय महानंदके नाश साधनमें लगी । उसकी विषप्रयोगकी कुशलतासे महानंदकी मृत्यु हुई इसके पश्चात् इसी तरह महानंदके भाई, लड़के आदि सभी उसके द्वारा मारे गये । उनके वंशमें केवल चन्द्रगुप्त बचा और वही राजसिंहासनका अधिकारी हुआ । इतिहासमें इन बातोंका अच्छी तरह वर्णन लिखा हुआ है । यहाँपर उन बातोंके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है । जो कुछ लिखा गया है उस परसे आना

जाता है कि यदि मनुष्य चाहे तो कठिनसे कठिन काममें भी सफलता प्राप्त कर सकता है। कुटिल मनुष्यकी प्रकृतिमें प्रतिज्ञाका बल कैसा भयंकर होता है ? कहाँ दरिद्र चाणक्य और कहाँ मगधपति राजराजेश्वर महानन्द ! समयके प्रभावसे चाणक्यकी उत्कट प्रतिज्ञाके सामने—जैसे नदीके प्रवाहमें घासका तिनका बहता जाता है, उसी तरह वह बहता गया। इच्छाशक्तिका ऐसाही माहात्म्य है। यद्यपि चाणक्यके इस राज्योच्छेद करनेका काम कुछ वर्णन करने योग्य नहीं था, पर तो भी मनुष्यकी इच्छाशक्तिका एक प्रसिद्ध दृष्टान्त होनेके कारण इस जगह उदाहरणस्वरूप लिखा गया है। चाणक्यका यह कार्य पूर्णरीतिसे वैर-बुद्धिका था, इसलिए उसे तामसी—कर्मके अंदर गिनना चाहिए। तामसी-कर्म कभी अनुकरणीय नहीं होते; इतना ही नहीं, किंतु वे बहुत निंदनीय भी होते हैं। चाणक्यके इन सब कार्योंको देखकर या सुनकर ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि मनुष्य स्थितिका दास है, और संसारकी घटनाओंमें कलवाली पुतलीके समान वह सदा नाचा करता है। मनुष्य यदि जाने और विश्वास रक्खे कि मुझमें शक्ति है। तो वह मुर्दाके समान क्यों पड़ा रहे? वह अपना मार्ग स्वतःही सुधार ले। जिस स्थानको जाना है उसके मार्गमें—निश्चित कामको पार करनेके मार्गमें, कोई भी विघ्न उसकी गतिको रोक नहीं सकता, जो कदाचित् विघ्नकी शक्ति अपनी शक्तिसे बढ़ीचढ़ी हो, तो उस विघ्नको दूर करनेके प्रयत्नमें वह अपने प्राणोंको बलि कर देगा; पर कायरके समान आलसी होकर पीछे नहीं हटेगा। इस तरहके प्रयासमें ही वीरत्व है—इसी जगह ही निर्बलता और सबलताकी भिन्नता दिखाई देती है।

विश्वासके वशमें होकर हँसते हँसते देहको भस्म करदेनेके उदाहरण इस पुण्यभूमिमें कुछ कम नहीं हैं। सतीधर्मका अनुसरण करके स्वर्गलोकमें पतिसे मिलनेकी आशासे इस लोकके सुख, ऐश्वर्य, स्नेह और ममता

आदिको त्यागकर, मृतपतिके साथ चितामें शयन करके इस देशकी स्त्रियोंने जगतको दिखा दिया है कि वे पुष्पसे भी कोमल होनेपर भी समय पड़नेपर वज्रसे भी कठोर हो सकती हैं। राजपूतानेके इतिहाससे एक दृष्टांत यहाँ दिया जाता है—

प्रबल इच्छाशक्तिका उदाहरण अजितसिंहकी बारह रानियाँ।

आज संवत् १९८० के आषाढ़ मासकी अमावास्या है। बरसातके बादलोंकी काली घटा चारों ओर छाई हुई थी। प्रकृति मानों कुछ समझकर पहले ही से शोकग्रस्त हो गई थी। धीरे धीरे अजितसिंहका शव नदीके किनारे लाया गया। नदीके किनारे चिता बनाई गई थी। राजाओंके योग्य सारी तैयारियाँ की गई थीं। मनों घी और चन्दन लाकर रक्खा गया था। धूप, रार, वगैरह अग्निग्राही पदार्थ रक्खे थे। पवित्र नदियोंका जल जुदे जुदे घड़ोंमें रक्खा गया था। चारों तरफ एक ही तरहकी दौड़-धूप दिखाई देती थी। राजकर्मचारियोंने प्राचीन रीतिके अनुसार राजाके अन्तःपुरमें शोक समाचार पहुँचाया। यह दुखदाई बात सुनते ही रानियोंने बाहर आकर पतिके साथ सती होनेकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने भक्तिसे गद्गद् होकर विष्णु भगवान्से प्रार्थना करके कहा—'हे प्रभु ! तुम हमारे ऊपर कृपादृष्टि करो, जिससे हम सतीधर्मकी रक्षा कर सकें।' इसके पश्चात् सज-धजकर चिताके पास आ खड़ी हुईं। जो वीरकन्यायें, वीरपत्नियाँ और वीरमातायें होती हैं वे कहीं मृत्युसे डरती हैं ? आज वे सब अपनी इच्छा और आतुरताके साथ एकट्ठी हुई थीं। उन्होंने अनेक तरहके रत्नोंके आभूषण पहने थे, चंदन और फूलोंकी मालायें धारण की थीं, जिससे उनकी एक विचित्र शोभा दिखाई देती थी। आज अमंगलके दिन मंगलके साज सजे थे। सबको एक साथ मरते देखकर उनके नाथू

नामके एक कार्यकर्त्ताने कहा— "पूजनीय माताओ! जिस कामको करनेके लिए तुम तैयार हुई हो, उसे पहले एकबार खूब अच्छी तरहसे सोच समझकर देखो, तुम सब इतने दिनों तक सुख-सम्पत्तिमें रहीं हो, सूर्यकी किरणोंको तुम सहन नहीं कर सकती हो, फिर इस जलती हुई चितामें; किस तरह अपना शरीर भस्म कर सकोगी? क्या अपने मनके इस भावको जब तुम चितारोहण करके इस प्रचंड अग्निसे जलने लगोगी तब स्थिर रख सकोगी? उस समय यदि तुम पीछे पैर रक्खोगी तो फिर लोक निन्दासे तुम्हें संसारमें मुँह दिखाना कठिन हो जायगा; इतना ही नहीं, पर तुम्हारे स्वर्गस्थित स्वामीके यशमें भी कलंक लग जावेगा। इन सब बातोंका पहले स्थिर चित्तसे विचार करो।" इतना कहके वह रुक गया। तब रानियोंने निश्चयसूचक शब्दोंमें कहा—"सतीका सुख और ऐश्वर्य जो कुछ कहो वह सब पतिके साथ है। पतिप्राणा सतियोंकी पतिके मरनेके पश्चात् उसके साथ सती होनेके सिवा और कुछ इच्छा ही नहीं रहती। यही हमारा कुल-धर्म है। तुम भी इस बातको भलीभाँति समझते हो, हम शारीरिक क्लेशसे नहीं डरतीं।" नाथूकी युक्ति व्यर्थ गई। इसके बाद मंत्री, पुरोहित आदि सब लोग राजा अजितसिंहकी पटरानियोंके पास आये और अत्यन्त नम्रतापूर्वक गद्गद् कंठसे हाथ जोड़कर कहने लगे—"हे देवियो! इस शोककी घटाको अब और मत बढ़ाओ, अपना सती होनेका संकल्प छोड़ दो। महाराज अजितसिंहके परलोकवाससे हम पितृहीन हो गये हैं, अब जो तुम भी उनके साथ सती होओगी तो हम मातृहीन भी हो जावेंगे और सारा राज्य शोकसागरमें डूब जायगा। हम नहीं जानते कि इस शोकका अंत कब आवेगा? राज्यके अंदर कई तरहकी गड़बड़ी मच जायगी। अतएव हमारी नम्र प्रार्थना है कि समस्त प्रजाके कल्याण और राज्यके मंगलके लिए आप इस संकल्पको त्याग देवें।

शास्त्रोंमें विधवाओंको ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करनेका विधान दिया है, आप ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके पतिके अक्षयस्वर्गकी कामनामें तत्पर रहें। इससे सबका कल्याण होगा!" ऐसा कहकर सब लोग चुप हो रहे और शांतिपूर्वक उनके प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे। इसके बाद रानी चौहानी शान्तवचनोंसे सबको समझाने लगीं और उन्होंने अपनी सती होनेकी कामना इतनी दृढ़ताके साथ कही कि फिर किसीको कुछ कहनेका साहस न हुआ। सब रानियाँ शीघ्र ही चिताके पास आकर पतिके चरणोंकी पूजा करने लगीं। फिर रीत्यानुसार चिताकी प्रदक्षिणा करते समय रानियाँ अपने अपने आभूषण उतारकर दान करने लगीं। इस शोकमयी घटनाको अधिक विस्तार देनेकी आवश्यकता नहीं है। क्रमानुसार शास्त्रविधि होनेके पश्चात् अजितसिंहकी बारह रानियाँ पति-चितामें अपने शरीरको भस्म करनेके लिए तैयार हुईं। चितामें अग्नि दी गई, देखते देखते भयंकर लपटें उठने लगीं। पतिको देवता माननेवाली रानियोंने हँसते हँसते अपने सुकुमार शरीरकी आहुति दे दी! ऐसा न होता तो उनमें वह प्रफुल्लता, वह कान्ति और वह तेज कहाँसे आया? रानियोंके सुकोमल शरीरके रूप-लावण्यको दग्ध करनेके लिए अग्निने मानो उग्ररूप धारण किया–देखते देखते सब भस्म हो गईं। वीर और सती स्त्रियोंके अभूतपूर्व कृत्यको देखकर सब लोग भय, भक्ति और विस्मयके साथ उनकी जयध्वनि करने लगे। जयघोषके प्रचंड शब्दोंसे आकाश गूंज उठा। वंशपरम्परारूपसे उस प्रशंसाकी प्रतिध्वनि आज भी सुनाई देती है, और अनंतकाल तक सुनाई देगी।

क्रमशः बुद्ध, प्रतापसिंह, चाणक्य और अजितसिंहकी बारह रानियोंके दृष्टान्त दिये गये हैं। उनमें आपको प्रत्येक कार्यके मूलमें कर्त्तव्यकर्मपर दृढ़ विश्वास दिखाई देगा और उस विश्वाससे उत्पन्न होनेवाला दृढ़ संकल्प भी पाया जावेगा। संकल्पसाधन करनेमें जो महात्मा संसारमें श्रेष्ठ गिने

गये हैं, उन सबके प्रातःस्मरणीय चरितोंको पढ़कर हमने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि मनुष्य जिस कामके विषयमें निश्चय कर लेता है, कि मैं इस कामको अवश्य करूँगा तो वह उस कामके पूर्ण करनेमें अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करता है। मनुष्यके अंदर एक शक्ति है और वह उसकी इच्छाशक्ति है। इस इच्छाशक्तिसे काम लेनेके संबंधमें आप जितनी आस्था, जितना विश्वास रक्खेंगे उतने ही प्रमाणमें आपकी प्रयत्नशक्ति भी बढ़ती जायगी। यह इच्छाशक्ति कितने तरहकी है, इसे समझानेके लिए बुद्धदेवकी योगसाधना, प्रतापसिंहका देशोद्धार करनेका प्रयास, चाणक्यका नंदवंशका उच्छेद-साधन और अजितसिंहकी बारह रानियोंका अपने पतिके साथ सती होनेका वृतान्त लिखा गया है। इन सब साधकोंकी इच्छाशक्ति इतनी प्रबल थी कि उनकी इच्छाशक्तिके सामने कोई भी विघ्न टिक नहीं सका। जिस प्रकार पर्वतसे निकलने और समुद्रमें मिलनेवाली नदीके प्रवाहको कोई रोक नहीं सकता है, उसी तरह इन सब अचल, दृढ़ प्रतिज्ञावाले मनुष्योंकी इच्छाके सामने स्नेह, ममता, सुख, ऐश्वर्य, दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक आदि विघ्न जरा भी नहीं टिक सके। सुखकी मोहनीमूर्ति अथवा दुखकी भयंकर भ्रकुटी, कोई भी इच्छाशक्तिकी गति रोकनेमें समर्थ नहीं हुई। इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए—मनकी कामना पूर्ण करनेके लिए मनुष्य अपनी देह और मनके ऊपर इच्छाशक्तिका प्रयोग करता है। सिद्धि प्राप्त करना या मर जाना इन दो सीमाओंके भीतर वे काम करते हैं। इन दो सीमाओंके अंदर किसी भी जगह वह शक्ति विराम नहीं लेती है—यह शक्ति ऐसी ही प्रबल है। सर्वशक्तिमान् और मंगलमय परमेश्वरने मनुष्यके भीतर यह महाशक्ति भर दी है। हम इस शक्तिका माहात्म्य नहीं जानते हैं; इतना ही नहीं, बरन हममेंसे कई एक इस शक्तिके अस्तित्वको भी नहीं जानते! इस आत्मशक्तिके विषयको जानना और उसको पहिचानना बहुत जरूरी है। इसी लिए प्रारंभमें इस शक्तिको पहिचाननेके विषयमें लिखा गया है।

दूसरा प्रकरण।

संकल्प।

धर्मको प्राणतुल्य माननेवाले हिन्दुओंके देशमें संकल्पका विवेचन करते समय संयम (इन्द्रिय-निग्रह करने, नियम लेने) की बात याद आ जाती है। लोग साधारण व्रत करनेके प्रथम नियम लेते हैं। व्रतके अगले दिन संध्या-समय हविष्यान्न खाकर जितेन्द्रिय रहनेका प्रयास करते हैं; लोग डरते हैं कि व्रतके पहले दिन स्वच्छन्दताके वर्ताव और अजितेन्द्रिय रहनेसे व्रत खंडित हो जावेगा। इसलिए लोग मन, वचन और शरीरसे शुद्ध और जितेन्द्रिय होकर व्रतका संकल्प और अनुष्ठान करते हैं। व्रत और कर्त्तव्य ये दोनों एक समान हैं। जैसे देवकार्यका अनुष्ठान करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको शुद्ध और जितेन्द्रिय होनेकी आवश्यकता है, उसी तरह कर्त्तव्य बजानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको भी शुद्ध और जितेन्द्रिय होनेकी आवश्यकता है; अन्यथा उसके कार्यमें नाना तरहके विघ्नोंके आ जानेकी संभावना है। जो कीर्तिरूपी मन्दिरमें कर्त्तव्य-पालनके हेतु संकल्प करनेकी इच्छा रखता हो उसे पहले शरीर, मन और वाणीसे पवित्र तथा जितेन्द्रिय बनना चाहिए। आत्माको संयममें-नियममें रखनेसे उसकी शक्तिका संचय होता है। जितेन्द्रिय पुरुष बलवान् होता है। " कामक्रोधौ वशे यस्य, तेन लोकत्रयं जितम् " अर्थात् जिसने काम क्रोधको जीत लिया हो, वह तीनों लोकोंको जीत सकता है; ऐसे पुरुष ही सफलता प्राप्त करते हैं। जितेन्द्रिय पुरुषोंको वर्त्तमानकी भाषामें सदाचरणी कहते हैं।

सदाचरणी पुरुषका संकल्प उत्तम होता है और जिसका संकल्प उत्तम होता है, उसकी सहायता ईश्वर करता है। जब पुरुषार्थ और दैव इकट्ठे मिल जाते हैं, तब संकल्प दृढ़ होता है। संकल्प दृढ़ होनेसे साधना सहजमें सिद्ध होती है और सिद्धि पास आ जाती है। उक्त कथनसे जाना जाता है कि सदाचरणी होनेसे इच्छित विषयका फल मिलनेमें सुलभता होती है और अजितेन्द्रिय और दुराचरणी होनेसे भीतरी काम क्रोध आदि शत्रु प्रबल हो जाते हैं और बाहर भी कई प्रकारके विघ्न उठ खड़े होते हैं, अतएव जान-बूझकर कर्त्तव्यके मार्गमें विघ्नोंको बुला लेना उचित नहीं है। जो कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले तरुण पुरुष इस कीर्तिमन्दिरमें, इस श्रेष्ठ कर्मक्षेत्रमें और इस साधनभूमिमें साधनाकी सिद्धि पाना चाहते हों—इच्छित कार्यमें सफलता प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें कोई भी काम करनेका संकल्प करनेके पहले संयमी बनना चाहिए। संयमसे उन्हें बल मिलेगा और बल उनकी साधनामें सहायक होगा।

वासना और संकल्पमें बड़ा भेद है। वासना आलसी मनुष्यकी कल्पनामात्र है और वह बहुत करके आकाश-कुसुमके रूपमें बदल जाती है। परन्तु संकल्प ऐसा नहीं है। बुद्धिमान् मनुष्य युक्ति और विचारपूर्वक किसी भी सत्कर्म करनेके लिए संकल्प करते हैं। (कर्त्तव्यका निश्चय करनेके पश्चात् और साधनाके पहले मनमें जो प्रतिज्ञाका भाव उत्पन्न होता है, उसे संकल्प कहते हैं।) वासना बहुत करके तर्कके अधीन नहीं होना चाहती है। वह जाग्रत अवस्थाके स्वप्नके समान है। मनुष्य चौकोण गोलाको लेकर खेलनेकी वासना कर सकता है, परंतु उसकी प्राप्तिके लिए संकल्प नहीं कर सकता है; मनुष्य आकाश फलसे जीभको तृप्त करनेकी वासना कर सकता है, परंतु उसे पानेका संकल्प नहीं कर सकता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको पहले अपने कर्त्तव्यका निश्चय करके, विवेकपूर्वक उसकी साधनाके लिए संकल्प

करना चाहिए । जितेन्द्रिय होकर परमात्माके निकट उसकी कृपाके लिए प्रार्थना करके कर्त्तव्यकी साधनाके लिए संकल्प करना उचित है । एक ही समयमें एकसे अधिक कामोंके लिए संकल्प करना उचित नहीं है । इस तरह संकल्प करके कीर्तिरूपी-मंदिरके भीतर साधनाके लिए प्रवृत्त होना चाहिए । पश्चात् निश्चित कामको पूर्ण करना चाहिए और यदि उसके लिए देहका भी त्याग करना पड़े तो भी उससे पीछे नहीं हटना चाहिए ।

व्रत करनेके पहले जैसे संयमकी-इन्द्रियनिग्रह करनेकी व्यवस्था है, उसी तरह व्रतके मध्यमें कथा सुननेकी विधि है; क्योंकि देह तथा मनको आलस्यसे दूर रखनेकी जरूरत है, इसलिए जो पुरुष जिस मंत्रका साधक हो, उसे उस मंत्रके पहले साधकोंकी कथा सुनना चाहिए । पहलेके साधकोंने किस लिए संकल्प किया था, उनको साधनाके समय कितने विघ्नोंको लाँघना पड़ा था, उन्हें कौन कौनसी अड़चनें उपस्थित हुई थीं और उनको उन्होंने किस तरह दूर की थीं; कितनी मिहनतसे उन्हें सिद्धि मिली थी इत्यादि बातोंका विवरण उनकी पवित्र कथाओंसे विदित होता है । भाग्यहीन पारधीने किस तरह महादेवको अपने-अश्रुजलसे अभिषिक्त करके प्रसन्न किया था ? शूद्र सुषेण किस तरह किस उपायसे शिवमंदिरके भीतर जाकर व्रत धारण करके यमदंडसे बचा था । आज भी इन सब पुण्य-कथाओंको सुनकर श्रद्धावान् और व्रताचरण करनेवाले हिन्दू उपवास आदिके क्लेशको तुच्छ गिनते हैं और आशायुक्त हृदयसे अधिक प्रमाणमें व्रतोंको धारण करते हैं ।

इस विशाल कर्मक्षेत्रमें जीवनके नाना कठोर कर्त्तव्यरूप व्रतोंको पालन करते समय हमें महापुरुषोंकी कथा सुनना चाहिए । महा-

पुरुषोंके पवित्र जीवनचरितोंको सुननेसे हमारे मन और शरीरसे आलस्य जाता रहता है। समयरूपी रेतके मैदानमें महापुरुषोंके पद-चिह्नोंको देखकर हम कर्त्तव्य-मार्गमें अग्रेसर हो सकते हैं।

पुराणोंमें लिखे हुए पुरुषोंके जीवनचरितोंका सम्पूर्ण रीतिसे अनुकरण करना साम्प्रत हमारी शक्तिसे बाहरकी बात है; "ते हि नो दिवसा गताः" वे हमारे दिन गये। परंतु हमारे सौभाग्यकी बात है कि साम्प्रत अंगरेजी राज्यमें ऐसे कई एक महात्मा जन्मे हैं कि जिनका जीवन हमारे लिए आदर्शरूप हो गया है। इस ग्रंथमें हम उनमेंसे कुछ सुप्रसिद्ध पुरुषोंके जीवनके संकल्प, साधना और सिद्धिकी बातोंका विवेचन करेंगे। उस-परसे जाना जावेगा कि यदि हम उनके पदचिह्नोंका अनुसरण करके चलें तो हम मनुष्यजीवनके महान् उद्देश्यको बहुत अंशोंमें सिद्ध कर सकते हैं।

वर्त्तमान समयमें हिन्दू-संसार और हिन्दूधर्ममें अधिक फेरफार करनेवाले महापुरुष राजा राममोहन राय, प्रजारंजक और अनेक विद्याओंके जाननेवाले त्रावणकोरके महाराजा रामवर्मा, समस्त राजकीय कामोंके पारदर्शी विद्वान् सुमंत्री सर माधवराव और सर सालारजंग, दयाके समुद्र ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, शिक्षाका प्रसार करनेवाले सर सैयद अहमद, बृहस्पति सदृश विद्वान् तारानाथ तर्कवाचस्पति, स्वनामधन्य श्यामाचरण सरकार, सुप्रसिद्ध सर मधुस्वामी अय्यर, अलौकिक कवित्व-शक्तिसम्पन्न मधुसूदनदत्त, सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी अक्षयकुमारदत्त, कुवेरतुल्य धनवान् सर जमसेदजी तथा रामदुलाल सरकारके जीवनचरितोंसे प्रत्येक पुरुष अपने जीवनके लिए अनुकरण करने योग्य अनेक उत्तम गुण पा सकता है। धनवानोंके लड़के किस तरह अनेक तरहके लाल-

चोंको छोड़कर विद्वान् और स्वदेशप्रेमी हो सकते हैं, मध्यम श्रेणीके गृहस्थोंके लड़के किस तरह सुयोग पाकर अपनी विद्या और बुद्धिके बलसे बड़े बड़े राज्योंके सुधारक और व्यवस्थापक हो सकते हैं, दरिद्र पुरुषोंके लड़के किस तरह अनेक विघ्नोंको दूर करके जीवनपर्यंत विद्याकी चर्चा करनेमें समर्थ और सुखी रह सकते हैं, ये सब बातें उपरिलिखित महापुरुषोंके जीवनचरितोंसे सीखी जा सकती हैं। जो साहित्य-सेवा करके मातृभाषाकी पुष्टि करना चाहते हों, जो भाषाको नया स्वरूप देना चाहते हों- उन्नत देखना चाहते हों, वे भी इनमेंसे अपने इच्छानुरूप आदर्श पुरुषको पा सकते हैं। जो लोग नौकरी छोड़कर कलाकौशल्य और व्यापारकी सहायतासे धन पैदा करना चाहते हों वे भी अपने इन्हीं आदर्शपुरुषोंके चरितोंसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

शक्ति झिरनेके जलके समान स्वाद रहित है; देश भेदसे उस झिरनेका पानी किसी जगह मीठा और किसी जगह खारा हो जाता है; उसी तरह मनुष्यकी शक्ति संकल्पके भेदसे किसी जगह हितकर और किसी जगह अहितकर हो जाती है। चरित्रबलके सदृश धनबल भी बहुत बड़ा है। मनुष्य धन-बलसे बलवान् होकर कई एक काम कर सकता है। जिस जगह चरित्रबल और धनबल एकत्र मिल जावे और उस पवित्र संगममें जो उत्तम संकल्प भी आ मिले, तो वह दृश्य कितना सुंदर दिखाई दे! इस पवित्र त्रिवेणीके संगमकी धारा जिस जिस देशमें से होकर जाय, वे देश पवित्र हो जायँ और जो लोग इस त्रिवेणीके संगमका स्पर्श करें, वे भाग्यशाली बन जायँ। राजा राममोहनराय और महाराजा रामवर्माके चरितमें उक्त त्रिवेणीका संगम दिखाई देता है। राजा राममोहनरायके समयसे साम्प्रत भारतवर्षमें एक नये ही युगकी प्रवृत्ति हुई है। वे भारतखंडके अंगरेजी राज्यमें उदय होनेवाले सूर्यके समान हैं। सबसे पहले उन्हींके पवित्र चरितका वर्णन करते हैं।

महात्मा राममोहनरायका जन्म एक उत्तम कुलमें हुआ था। परमात्माकी कृपासे उनको सब तरहका सुख प्राप्त था, तो भी वे मनुष्यजीवनके महान् उद्देश्यको न भूले थे। वे कर्त्तव्यपालनके लिए मन, वचन और शरीरसे सदैव प्रयत्नशील रहा करते थे। वे अपनी उपस्थितिमें अपने किये हुए समस्त प्रयत्नोंका फल देख नहीं सके। संसारमें बहुत कम महापुरुष अपने प्रवर्तित सत्कर्मोंका फलाफल देखनेका सौभाग्य पाते हैं। ये सब महापुरुष देश कालसे दूर रहनेपर भी कीर्तिरूपसे अब भी जीते हैं। हमारे देशके गौरवस्वरूप महात्मा राजा राममोहनराय इसी श्रेणीके महापुरुष और विश्वहितैषी थे। उन्होंने जिस समय जन्म लिया था, उस समय बंगालकी अवस्था बहुत शोचनीय थी। राजनीतिसंबंधी, समाजसंबंधी या शिक्षासंबंधी कोई भी अवस्था अच्छी नहीं थी। देशमें सब जगह सब बातोंमें अप्रबंध और उच्छृंखलता दिखाई देती थी। एक ओर मुसलमानी राज्यकी गिरती और दूसरी ओर अंगरेजी राज्यकी बढ़ती हो रही थी। इन दो राजशक्तियोंके संधिकालमें सब उलट-पुलट होता दिखाई देता था। भरतखंडके भाग्याकाशमें एक ओर मुसलमान राज्यकी अंधकारमय रात्रिका अंत होने लगा था, और दूसरी ओर पूर्वाकाशमें अंगरेजोंकी नई राजशक्तिका तेजोमय प्रकाश फैलने लगा था। इन्हीं दो राजशक्तियोंके संधिकालमें महात्मा राममोहनरायका जन्म हुआ था।

राजा राममोहनरायका संकल्प।

उस समय इस देशमें बालकोंको गंगा नदीमें फेंक देने और सती होनेकी प्रथा प्रचलित थी। सर्वसाधारणमें शिक्षाप्रचारका कोई साधन नहीं था। गाँवमें गुरूजीकी पाठशाला या मौलवी साहबके मकतबमें अथवा किसी पंडितके घर जाकर पढ़ना लिखना सीखनेका रिवाज था। कहनेका तात्पर्य यह कि बालकोंकी शिक्षाका प्रारंभ और अंत मास्टर

साहबकी पाठशाला या मौलवी साहबके मकतबमें ही हो जाता था। उच्च-शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छा होनेपर भी अनेक तरहकी कठिनाइयों और अड़चनोंके सबब सब लोग उसको प्राप्त कर सकनेका सौभाग्य नहीं पाते थे। उस समय जिनको उच्चशिक्षा प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा होती थी और जिनके कुटुम्बकी स्थिति भी वैसी ही अच्छी होती थी, वे लोग ही कुछ अंशमें उसे प्राप्त कर सकते थे। राजा राममोहनराय ऐसी ही सामाजिक स्थितिमें पहले मास्टर साहब और फिर मौलवी साहबके पास पढ़े थे। आगे राजदर-बारमें अधिकार और प्रतिष्ठा मिले ऐसी आशासे उनके पिताने उन्हें बारह वर्षकी अवस्थामें पटनामें अरबी और फारसी पढ़ानेके लिए भेजा था। उस समय अरबी और फारसीकी शिक्षाके लिए पटना प्रसिद्ध था। बालक राममोहनरायने थोड़े समयमें इन दोनों भाषाओंका अच्छा ज्ञान सम्पादन कर लिया। इसके बाद संस्कृत पढ़नेके लिए वे काशी गये। अरबी और संस्कृत शास्त्र पढ़नेके पश्चात् उनके धर्मसंबंधी विचा-रोंमें बड़ा हेरफेर हो गया। वे अद्वैतवादके पक्षपाती हुए और उसके प्रचारके लिए प्रयत्न करने लगे। बहुत समयसे चले आनेवाले सतीके रिवाजको बंद करवानेके लिए उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी। देशमें पाश्चात्य-विद्या और ज्ञानका प्रचार करनेके लिए उन्होंने कमर कस ली थी। उनकी प्रतिज्ञा अचल और दृढ़ थी, उनका संकल्प अच्छा था। साम्प्रत बंगालके प्रत्येक उन्नतिके कामोंकी मूलमें राजा राममोहनरायके उत्तम संक-ल्पोंके चिन्ह दिखाई देते हैं। जब हम उनकी उत्कट साधनाके विषयमें विचार करते हैं, तब हमें जान पड़ता है कि उनकी प्रतिज्ञा और उनके संकल्प कैसे स्थिर और दृढ़ थे।

राजा राममोहनरायके चरितसे यह बात अच्छी तरह जानी जाती है कि उच्छृंखलता, सुख भोगोंकी लालसा और सामाजिक अड़चनें

सद्इच्छा रखनेवाले तरुण पुरुषके संकल्पके सामने टिक नहीं सकती हैं।

परमात्माने जिनको धन और नौकर-चाकर आदि दिये हैं, जो सुख और ऐश्वर्यसे भरे-पूरे हैं और जो विषय-वैभवोंमें निरंतर लगे रहते हैं, उनमेंसे भी अनेक व्यक्ति ज्ञानी और जनहितैषी होकर कीर्तिमंदिरमें उच्चस्थान पानेके अधिकारी होते हैं (दरिद्रताकी उपेक्षा करके अपने निश्चित मार्गपर आरूढ़ रहनेके लिए अलौकिक शक्तिकी आवश्यकता है। इसी तरह सुख और ऐश्वर्य्यके मोहरूपी आवरणको भेदकर कर्त्तव्यका निश्चय करने और उसका अनुसरण करनेके लिए भी वैसी ही शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है।) भूखे अथवा आधे पेट रहकर, नग्न शरीरसे अथवा चींथरा पहिनकर, जड़कालेकी शीतमें, ग्रीष्मकालकी धूपमें और बरसातकी बरसामें दुःखोंको सहन करके अपने निश्चित स्थानको जाना—अपनी प्रतिज्ञाको पूरा करना कोई सहज काम नहीं है। गरीब लोगोंके अच्छे संकल्पों और उनकी साधनामें ऐसी कई बाधायें आती हैं, पर धनवानोंके उत्तम संकल्पोंकी साधनामें भी कुछ कम विघ्न नहीं हैं वे हमेशा ऐसी सोहबतोंसे घिरे रहते हैं कि उनके हृदयमें अच्छे संकल्पोंके उदय होनेको अवकाश ही नहीं मिलता है। बाल्यावस्थामें उनके सुखी माँ-बाप उनको किसी तरहके दुखमें नहीं पड़ने देते हैं और भविष्यमें भी किसी प्रकारका दुख—कष्ट न हो, इसके लिए वे सदैव चिंतातुर रहते हैं। इसी लिए परिश्रम करके विद्याभ्यास करना और स्वतः कष्ट उठाकर दूसरोंको दुःखसे छुटाना वे पसंद नहीं करते हैं। दूसरोंके दुःख देखकर अपने आँखोंके तारे और प्राणोंसे प्यारे बालकोंके हृदयमें दुख होगा, इसी लिए वे अपने आनंद-भुवनमें गरीब, दुःखी, रोगी अथवा शोकार्त मनुष्योंको घुसने नहीं देते हैं। ऐसे कुटुम्बकी संतानोंके हृदयमें अच्छी इच्छाओंका पैदा होना बहुत ही कम पाया जाता है। यदि उनके

मनमें उत्तम इच्छायें भी पैदा हों तो उनके पूर्ण होनेमें बहुत अंतराय आते हैं। धनवानोंके लड़के युवावस्थामें हमेशा ऐश-आराममें प्रमत्त रहते हैं, उनके नौकर- चाकरों और साथियोंकी आंतरिक इच्छा यही रहती है कि वे दुर्जय शत्रु—कामसेवनसे सुखी रहें। ऐसे समयमें युवावस्थाकी शक्ति, उत्साह और कर्त्तव्य-ज्ञान, धर्म और परोपकारमें प्रवृत्ति हो ऐसा कब संभव हो सकता है ? मनुष्यमें यदि सद्विचार और उत्तम इच्छायें न हों तथा अच्छे संकल्प करनेका अवसर उसे न मिले, तो साधनाके क्षेत्रमें दरिद्रता और ऐश्वर्य्य दोनों अंतरायरूप हो जाते हैं। दरिद्रता आलस्य उत्पन्न करती है और ऐश्वर्य्य उन्मत्तता पैदा करता है। जब दरिद्रता और ऐश्वर्य्य दोनों कर्त्तव्यके मार्गमें बाधा पहुँचाते हैं तब दोनोंको अंतराय गिनना चाहिए। अंतरायको दूर करनेके लिए धनवान् और दरिद्र दोनोंको सदाचरणके बलकी आवश्यकता है। संकल्प दृढ़ होना चाहिए, नहीं तो सब व्यर्थ है।

जगतके कीर्तिमंदिरमें सुख और मोहरूपी पर्देको हटाकर तथा विषयसुखके मोहको परित्याग करके कई एक महात्मा धर्म और ज्ञानकी साधना कर गये हैं। ऐसे महापुरुषोंकी कीर्ति—कहानी जगतके कीर्तिमंदिरमें निरंतर सुनाई देती है। इनके पदचिन्होंका अनुसरण करके अनेक धनवान्, उत्तम संकल्पोंवाले और सत्कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुष भी अपने पश्चात् अपनी कीर्तिको छोड़ गये हैं।

पुण्यभूमि भारतवर्षके भीतर राजर्षियोंकी कथा कौन नहीं जानता ?

महाराजा रामवर्माका संकल्प।

ज्ञानके लिए, धर्मके लिए उन्होंने क्या नहीं किया ? सत्यके लिए, धर्मके लिए और प्रजाके हितके लिए उन्होंने कितनी कठिन साधनायें की हैं ? चारों ओर फैली हुई मायाकी मोहिनी मूर्ति, सुखका उज्ज्वल चित्र और भोगसुखकी कामना आदिको तुच्छ

गिनकर उन्होंने अपने संकल्पकी दृढ़ता प्रकट की है और वे दृढ़ पैरोंसे अपने लक्ष्यकी ओर आगे बढ़े हैं। राजर्षि विश्वामित्र और जनककी बात कौन नहीं जानता ? राजर्षि विश्वामित्रकी त्रैलोक्यको शंकित करनेवाली तपश्चर्य्याकी बात सुनकर अब भी शरीरमें रोमांच हो आता है—भय और भक्तिसे मन स्तब्ध हो जाता है। हमारे पुराणोंमें इस तरहकी बहुत कथायें हैं, इस जगह विस्तारके भयसे हम उनको यहाँ लिखनेमें असमर्थ हैं। चाहे जो हो, तो भी सौभाग्यकी बात यह है कि वर्त्तमान समयमें भी वैसे आदर्श राजाओंका अभाव नहीं है। त्रावणकोरके महाराजा राम-वर्माका चरित्र भी वैसा ही है। महाराजा रामवर्माकी आरोग्यता बचप-नसे अच्छी न थी; पर इससे क्या ? उनकी इच्छाशक्ति अनिवार्य्य थी। वे रोगी और दुर्बल होनेपर भी विद्याका अभ्यास, शास्त्रीय ज्ञान बढ़ा-नेकी इच्छा और प्रजाहितके कामोंमें कभी त्रुटि नहीं करते थे, प्रत्युत उनकी उमर बढ़नेके साथ-ही-साथ उनकी उक्त कामोंकी रुचि भी बढ़ती गई। नाना तरहकी विद्याओंमें श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके अपने राज्य-को सब तरहसे उन्नत और सुखी बनाना उनके जीवनका व्रत था और इस व्रतको भलीभाँति निवाहनेके लिए उन्होंने छुटपनसे कठोर साधना-यें की थीं।

सर माधवराव और सर सालारजंगका संकल्प।

सर माधवराव और सर सालारजंगके समान राजकार्य्यमें निपुण पुरुषोंके जीवनचरितोंसे अपनी उन्नतिकी इच्छा रखनेवाले युवक बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकते हैं। यदि उपयुक्त विद्या, बुद्धि, अवसर और क्षेत्र मिले तो आज भी भारतवर्षके युवकगण राजनीतिकुशल हो सकते हैं। राजभक्त रहकर किस तरह राजसेवा करना चाहिए, इसका सबक सीखनेके लिए उपरिलिखित दो महापुरुषोंका दृष्टान्त लेना चाहिए।

राजाके सुनामके लिए, राज्यके कल्याणके लिए और प्रजाके हितके लिए उन्होंने जो जो कृत्य किये हैं उनके चिन्ह त्रावणकोर, बड़ोदा और हैदराबादके राज्योंमें अबतक वर्तमान हैं। उक्त राज्योंको उन्होंने किस हालतमें अपने हाथमें लिया था और किस हालतमें उसे छोड़ा था, उसे पढ़कर उनके दृढ़ संकल्पोंका अनेक तरहसे आभास पाया जाता है। जो शिक्षित पुरुष राजभक्त रहकर राजसेवा करनेके लिए राजनीतिके क्षेत्रमें उतरना चाहते हों उनको सर माधवराव और सर सालारजंगके जीवन-चरितोंको एकाग्र चित्तसे मनन करना चाहिए। उनकी यशोवार्ता आगेके परिच्छेदोंमें विस्तारपूर्वक लिखी जावेगी।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और सर सैयद अहमदका संकल्प।

जनसमूहको उच्च शिक्षा दिलानेके लिए जिन स्वदेशी महात्माओंने शरीर और धनसे अपार परिश्रम किया है उनमेंसे बंगालप्रांतमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और वायव्य प्रान्तमें सर सैयद अहमदका नाम बहुत समयसे सुनाई देता है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागरको जुदी जुदी जातिके लोग सगुण ईश्वरके समान जुदे जुदे आदर्शरूपसे देखते हैं। वे एक साथ ही दयाके सागर, विद्याके सागर, समाज सुधारक और उत्तम शिक्षाका प्रसार करनेवाले थे; पर इस छोटीसी पुस्तकमें हम उनकी पूर्ण महिमा नहीं लिख सकते हैं; कारण कि, महासागरका प्रतिबिम्ब एक क्षुद्र बिन्दुमें कैसे पड़ सकता है? तथापि यदि उनके जीवनकी पुण्यकथा न कही जाय तो असंपूर्णताका दोष आता है, इसलिए उनके जीवनकी साधनाका विषय लेकर अर्थात् किस तरह उन्होंने उस विद्याको प्राप्त की थी और किस तरह उसे बंगालमें फैलाई थी, उनके इस संकल्पमात्रका यहाँ उल्लेख किया गया है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने बंगालमें विद्याका प्रचार करनेके लिए जिस तरह अपने संकल्पकी दृढ़ता प्रगट की थी, उसी तरह वायव्य-प्रान्तमें मुसलमानोंको

उच्च शिक्षा देनेके लिए सर सैयद् अहमदने भी वैसा ही दृढ़ संकल्प दिखाया था। सर सैयद अहमदने अपने जाति भाइयोंकी भलाईके लिए आजीवन परिश्रम किया था। उनको अपने जाति भाइयोंके कल्याणकी कितनी प्रबल इच्छा थी, यह बात उनके जीवनचरितसे भलीभाँति प्रकट होती है। विशेषकर उनकी नौकरी भी आजकलके युवकोंको शिक्षारूप हो सकती है। उन्होंने अपने संबंधियोंकी इच्छाके विरुद्ध अंगरेजोंके हाथके नीचे फौजदारी अदालतमें शिरस्तेदारीका काम किया था। उस समय उनकी उमर बीस वर्षकी थी। वे अंतमें सदर आलाका काम करके राजकार्यसे पृथक् हुए थे।

तारानाथ तर्कवाचस्पतिका संकल्प। वर्त्तमान समयमें जनसाधाणमें ऐसी धारणा हो गई है कि इस देशके लोग जो अंगरेजी शिक्षामें प्रवीण नहीं होते वे जीवनमें महत्ता प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हम हविष्यान्न खानेवाले, धोती और चादर ओढ़नेवाले, तथा तमाखू सूँघनेवाले पंडितोंकी विद्वत्ताको दिनपर दिन भूलते जाते हैं। आदर्शरूप ब्राह्मण पंडितोंके आडम्बरशून्य जीवन इस समय बहुत कम दिखाई देते हैं। उनका सादे भोजन और सादे कपड़ोंमें संतोष, उनके चित्तकी प्रसन्नता, उनके शरीरका आरोग्य और विचारोंकी उच्चता विलीन होती जाती है। दुर्भाग्यवश ऐसे आदर्श पुरुषोंको हम खो बैठे हैं और इसी सबबसे हमारी प्रबल विलासिता, हमेशा तंगीकी हालत और निरंतरका असंतोष दिनपर दिन बढ़ता जाता है; उसने हमारे मन और शरीरको सुस्त बना डाला है। चाहे जो हो, परंतु हमारे सौभाग्यकी बात है कि हम साम्प्रत गिरे जमानेमें भी एक दो आदर्श ब्राह्मण पंडितोंको पाते है। उनमेंसे व्यहस्पतिसमान विद्वान् तर्कवाचस्पति महाशयका नाम विशेष उल्लेख योग्य है। पढ़ना और पढ़ाना यह ब्राह्मण पंडितोंका मुख्य कर्त्तव्य है। इस विषयमें तारानाथका जीवन आदर्शरूप है। वर्त्तमान समयमें स्वार्थतत्परता अधिक दिखाई देती है, लोग बिना

पैसेके कोई भी काम करनेको तैयार नहीं होते हैं। इस समय विद्या एक व्यापारकी वस्तु हो गई है और इसी कारण साम्प्रत विद्यादानकी चर्चा बहुत कम सुनाई देती है। वर्त्तमान समयमें, प्रायः प्रत्येक शहरमें अनेक पाठशालायें दिखाई देती हैं, ये पाठशालायें ही विद्याकी दूकानें कही जा सकती हैं। विद्यादान देना या उत्तम शिक्षाका प्रचार करना यह उनका उद्देश्य नहीं है; पर उनका उद्देश्य केवल पैसा पैदा करना है। प्रायः बीस पच्चीस वर्ष पहले यह देखनेमें आता था कि यदि किसी गांवमें दो चार उच्च कक्षाके विद्यार्थी होते थे तो उनके पाससे बहुतसे नीची कक्षाके विद्यार्थी अपना सबक समझ लेते थे, परन्तु अब यह प्रथा उठ गई; इतना ही नहीं वरन छोटे छोटे गावोंमें भी 'खानगी-शिक्षक' नामके एक तरहके विद्याके व्यापारी दिखाई देते हैं। हमारे देशके दुर्भाग्यसे निश्शुल्क विद्यादानकी प्रथा दिनपर दिन घटती जाती है। तारानाथ इस विषयमें एक असाधारण पुरुष थे। एक बार जैनोंके प्रधान आचार्य विजयगच्छ कलकत्ते आये थे, उस समय वे अपने प्रधान शिष्यकी संस्कृत शिक्षाका बंदोबस्त करनेके लिए तारानाथजीसे मिले थे। उन्होंने शिक्षा देनेके बदलेमें उन्हें तीन सौ रुपया मासिक वेतनस्वरूप देनेकी इच्छा प्रदर्शित की थी। इसपर तारानाथजीने उन्हें जो प्रत्युत्तर दिया था वह यहाँपर लिखने योग्य है; क्योंकि उस परसे हम उनके जीवनके उद्देश्यको भलीभाँति समझ सकते हैं। उन्होंने विजयगच्छसे कहा था—"विद्यादान करना हमारे जीवनका संकल्प है, पर विद्याको बेंचना महान् पातक है। आपके जितने शिष्य हमारे पास विद्या सीखनेको आवेंगे उन्हें हम आनंदके साथ पढ़ावेंगे" विद्यादान उनके जीवनका मुख्य संकल्प था। इस जगह हमने उनके संकल्पके विषयमें लिखा है, आगे उनकी साधनाके विषयमें लिखेंगे।

सफलता प्राप्त करनेवाले—फतहमंद होनेवाले पुरुषोंके जीवनके प्रथम भागका अन्वेषण करनेसे उनके संकल्पकी दृढ़ताका प्रमाण अच्छी तरह दिखाई देता है। मद्रास हाईकोर्टके नामांकित जज सर मधुस्वामी अय्यर के. सी. एस्. आई और कलकत्ता हाईकोर्टके मुख्य दुभाषिया (इन्टर प्रेटर) और अनेक भाषा तथा व्यवहारशास्त्रके

सर मधुस्वामी अय्यर और श्यामाचरण सरकारका संकल्प ।

जाननेवाले श्यामाचरण सरकारका जीवनचरित पढ़नेसे मालूम पड़ता है कि उन्होंने विद्याभ्यास करके अपनी स्थिति सुधारनेके लिए कैसा दृढ़ संकल्प किया था ? उपरिलिखित दोनों सज्जनोंके जीवनका प्रथम भाग बहुत गरीबीमें व्यतीत हुआ था। दोनों ही छुटपनमें पितृहीन हो गये थे। एकको मातृभाषाका साधारण ज्ञान प्राप्त करनेके बाद १२ वर्षकी उम्रमें एक रुपया महीनापर नौकरी करनी पड़ी थी और दूसरेको गरीबीके कारण १३ वर्षकी उम्रतक एक अक्षर भी सीखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था । इसके बाद इनमेंसे एक मद्रास हाईकोर्टका जज हुआ और दूसरा कलकत्ता हाईकोर्टके मुख्य दुभाषियाके पदपर पहुँचा। भयंकर दुर्दशाको तैरकर इस तरह महत्ता प्राप्त करना बड़ा कठिन काम है। इच्छाशक्ति अत्यंत प्रबल न हो तो असाधारण रीतिसे अवस्थाका बदल जाना संभव नहीं है। मधुस्वामी और श्यामाचरणकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी, इसी लिए उनके संकल्पके सामने दरिद्रता विघ्न नहीं डाल सकी। इनमेंसे एक व्यक्तिने हिसाब-किताब लिखनेकी नौकरी करके समय मिलनेपर पासकी एक शालामें जाकर अंगरेजी अक्षर सीखे थे और दूसरेने २१ वर्षकी अवस्थामें अंगरेजी पढ़नेके विचारसे हिन्दूकॉलेजमें दाखिल होनेका प्रयत्न किया था, पर विद्यार्थियोंकी संख्या अधिक होनेके कारण वे दाखिल नहीं किये गये। जो दुर्बल चित्त और मिहनत करनेमें कायर होते हैं, वे सब संकल्पोंको छोड़कर निराश

होकर बैठ जाते हैं, परंतु धीरजचित्त पुरुषोंके चरित एक जुदे ही तरहके होते हैं; सर मधुस्वामी और श्यामाचरण सरकारने अपने अपने जीवनचरितोंसे इस बातको भलीभाँति सिद्ध कर दिया है। इन सब मनोहर चरितोंके विषयमें जितना जितना अन्वेषण करते जाओ, उतना उतना विदित होता जाता है कि कर्मकी मूलमें संकल्पके दृढ़ताकी बहुत आवश्यकता है। 'अचल हिमालय चाहे चलायमान हो जाय, चंद्र सूर्य चाहे अपनी गतिमें परिवर्तन कर दें, तो भी हम अपने जीवनके उद्देश्यको न छोड़ेंगे' ऐसा दृढ़ संकल्प करके कर्ममें प्रवृत्त होनेसे ही संसारमें सफलता मिलती है; अन्यथा हवाई किले बाँधनेसे पग पगपर निराश होना पड़ता है। पवनकी गतिके समान जिसके विचार चलायमान रहा करते हैं, नाना तरहके विघ्नोंसे जो घबरा जाते हैं, ऐश्वर्य्यके मदमें रँगकर जो अपनेको भूल जाते हैं और दरिद्रतासे जो सुस्त हो जाते हैं वे संसारमें क्या कर सकते हैं ?—अल्प धनवाला, अल्प बुद्धिवाला तथा दुर्बल देहवाला पुरुष अच्छा, परंतु दुर्बल चित्तवाला पुरुष कभी अच्छा नहीं हो सकता है! परमात्माकी कृपापर निरंतर आस्था रखकर आशापूर्ण हृदय और दृढ़ संकल्पसे जो मनुष्य कर्ममें प्रवृत्त होता है—वही पुरुष नामके योग्य है। मधुस्वामी और श्यामाचरणमें इसी तरहका पुरुषार्थ था और इसी लिए कर्मक्षेत्रमें वे हम सरीखे नवयुवकोंके लिए आदर्शरूप हैं।

जातीय उन्नतिके साथ साथ साहित्यकी उन्नति भी होती है।

अक्षयकुमार दत्तका संकल्प।

१९ वीं शताब्दिके प्रारंभमें बंगला भाषा जिस स्थितिमें थी, उससे वर्त्तमान समयमें उसने बहुत उन्नति कर ली है। बँगला—साहित्यकी हम किसी भी उन्नत भाषाके साहित्यसे तुलना कर सकते हैं, वह हीन होना जानता ही नहीं। जिन महात्माओंकी साधनासे बंग—साहित्यकी श्रीवृद्धि हुई है, उनमेंसे राजा राममोहनराय और ईश्वरचन्द्र

विद्यासागरके पश्चात् विशेषकर दो दत्तोंका नाम लिया जाता है। गद्यमें अक्षयकुमारदत्त और पद्यमें माइकेल मधुसूदनदत्तने बंग-साहित्यमें युगान्तर उपस्थित किया था। अपने जातीय-साहित्यकी उन्नतिके लिए उन्होंने किस दृढ़ संकल्पके साथ साधना की थी, वह हमारे देशके नवयुवकोंके जानने योग्य है। जो नवयुवक अपनी मातृभाषाके साहित्यको उन्नत अवस्थामें पहुँचाना चाहते हों, उन्हें इन दो साहित्य-साधकोंके जीवन-चरितोंको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए।

जो युवक धनसंबंधी और शरीरसंबंधी क्लेशको अपने संकल्पका विघ्न समझते हों और उससे निराश हो गये हों, उन्हें अक्षयकुमारदत्तकी साधनाकी ओर ध्यान देना चाहिए। अक्षयकुमार गरीब मा-बापके पुत्र थे, द्रव्य न होनेके कारण विद्यालयोंके द्वारा जैसा चाहिए वैसा ज्ञान उन्हें नहीं मिल सका। गरीबीके कारण छोटी उमरमें विद्यालय छोड़कर आजीविकाके लिए उन्हें नौकरी करनी पड़ी। उन्नीस वर्षकी उम्रमें तत्त्वबोधिनी पाठशालामें उन्हें ८) माहवारकी जगह मिली थी। उन्होंने बाल्यावस्थामें कुछ फारसी और ओरियंटल सेमीनरीमें कुछ अँगरेजीका अध्ययन किया था। शेरका बच्चा जिस प्रकार थोड़ेसे रक्तका स्वाद पाकर उत्तेजित हो जाता है और उसकी प्राप्तिके लिए किसी भी विघ्नको विघ्न नहीं गिनता, उसी तरह अक्षयकुमारको विद्याका जो थोड़ा बहुत स्वाद मिला था, उसके लोभको वे संवरण नहीं कर सके। उन्होंने कुटुम्बके पोषण और आजीविकाके लिए थोड़े वेतनमें शिक्षकका काम करके प्रबल यत्न और सच्चरित्रताके कारण समाजमें प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। शरीरको घोलकर ज्ञानकी सेवा, और बंगला-साहित्यकी शोभा बढ़ानेके लिए उन्होंने जो कठोर साधना की थी वह आश्चर्य्यजनक है। बाल्यावस्थाकी अपनी प्रबल इच्छाको वे अपने जीवनमें ही पूर्ण कर गये थे। बंगला-साहित्यमें उनकी अक्षय-कीर्ति मौजूद है।

माइकेल मधुसूदन-दत्तका संकल्प ।

लोगोंकी धारणा है कि कविकुल–गुरु कालिदास सरस्वतीके वरदान पाये हुए पुत्र थे । वे एक समय अत्यन्त मूर्ख थे; उनसे उष्ट्र शब्दका शुद्ध उच्चारण करते भी नहीं बना था । उनके जीवनका एक दिन वह था, और एक दिन वह आया, जिस समय उन्होंने रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत तथा शकुन्तला आदि ग्रन्थ लिखे थे । मूर्खता और पंडिताई इन दोनोंकी अवधि उनके जीवनमें दिखाई देती है और इसी लिए लोग उनको सरस्वतीका वरदान प्राप्त पुत्र कहते हैं; अर्थात् उन्होंने अपने दृढ़ संकल्प और कठोर साधनासे सरस्वती देवीको प्रसन्न करके वह वरदान पाया था । इसी तरह मधुसुदनदत्त भी सरस्वतीके वरदान पाये हुए पुत्र थे । एक दिन वे बंग-भाषासे इतने अपरिचित थे कि पृथ्वी और प्रथवी इन दो शब्दोंमें कौन शुद्ध है, इसे नहीं समझ सकते थे । उन्हीं मधुसूदनदत्तने जब बंगला-पद्य-साहित्यमें बड़ाभारी हेरफेर उपस्थित कर दिया तब सब लोग विस्मयसे उनकी ओर देखने लगे । यह परिवर्त्तन उनके असाधारण संकल्प और साधनाका फल था । एक दिन बंगला-भाषाको वे तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे देखते थे, ऐसे विलक्षण तिरस्कारको दूर करके उनका काशीरामदासके महाभारत और कृतवासीकी रामायण पढ़नेमें प्रवृत्त होना और पंडित रखकर उसके पास विद्यार्थीके समान संस्कृत भाषाका अभ्यास करना, उनके मानसिक बलको प्रकट करता है । इस जगह हम बंगला-भाषाकी उन्नति करनेके लिए उनके हृदयमें छुपी हुई संकल्पकी दृढ़ताका अनुभव कर रहे हैं, आगे चलकर उस संकल्पकी साधनाको उन्होंने किस तरह पूर्ण की थी, उसे देखेंगे । उनके इस अनायास प्राप्त हुए विद्याभ्यासको लोग दैवकृपा समझते और सरस्वतीदेवीने साक्षात् प्रकट होकर उनको वरदान दिया था, इस दंतकथापर विश्वास रखते हैं । मधुसूदनदत्तने

कैसी विलक्षण अवस्थामें पड़कर बंगला-साहित्यकी उन्नतिके संकल्पको नहीं छोड़ा था, इस जगह इसका हमें कुछ आभास मिलता है।

इस विशाल कर्मक्षेत्रमें सब श्रेणीके लोग अपने अपने आदर्शरूप पुरुषोंको पा सकते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों वर्गोंमेंसे कोई एक भी मिलनेके लिए जो साधना करता है, वह अपनेसे पहलेके किसी साधकको आदर्शरूपसे अपनी नजरके सामने रखता है। अभीतक हमने भिन्न भिन्न जातिके साधकोंके उदाहरण दिये हैं, अब हम लक्ष्मीकी उपासना करनेवालोंकी बात कहते हैं। "व्यापारे वसते लक्ष्मीः" अर्थात् व्यापारमें लक्ष्मी रहती है–इस मंत्रके वे उपासक होते हैं। व्यापारियोंमें श्रेष्ठ रामदुलाल सरकार और सर जमशेदजी जीजीभाई इसी मंत्रके उपासक थे।

रामदुलाल सरकार और सर जमशेदजी जीजीभाईका संकल्प।

रामदुलाल और जमशेदजी दोनोंका जन्म प्रतिष्ठित कुलोंमें हुआ था; परंतु दोनोंकी बाल्यावस्था दुःख और गरीबीमें व्यतीत हुई थी। रामदुलाल छुटपनसे मातृ-पितृहीन होनेके कारण उनका पोषण नाना और नानीका भिक्षावृत्तिसे होता था। जमशेदजीके मा-बाप भी छुटपनमें मर गये थे और उन्होंने अपना निर्वाह कुछ दिनोंतक अपनी सासकी कमाईपर किया था। रामदुलालको अच्छी तरह शिक्षा न मिली थी और उनको शिक्षा मिलनेका कोई साधन भी न था। कागजके बदले उनको केलेके पत्तोंपर लिखना पड़ता था। जमशेदजीकी शिक्षा कुछ उल्लेख योग्य नहीं हुई थी, तो भी वे गुजराती भाषा लिख-पढ़ सकते थे और थोड़ी बहुत सहज अँगरेजी भी समझते थे। रामदुलाल शुरूमें ५) माहवारी वेतनपर नौकरी करते थे और जमशेदजी कुछ दिनोंतक एक दूकानपर विना तनख्वाहके काम-काज सीखनेके लिए रहे थे। परंतु दोनोंका बचपनसे व्यापारकी ओर विशेष लक्ष्य था। इनमेंसे एकने अपनी साधारण

आमदनीमेंसे बड़ी कठिनाईसे १०० रुपया इकट्ठे करके लकड़ीके व्यापारमें लगाये और दूसरेने अपनी कुल पूंजी—जो १२० रुपयाके करीब थी,—लेकर व्यापारके लिए परदेशको प्रस्थान किया । ऊपर लिखे हुए ये दोनों उदाहरण बिलकुल साधारण दिखाई देते हैं, परन्तु जब हम इन दोनों प्रसिद्ध व्यापारियोंके अंतिम जीवनका अवलोकन करते हैं, तब हमें इन दो सामान्य विषयोंमें उनके संकल्पके अविनाशी अंकुर दिखाई देते हैं। असाधारण धैर्य्यके साथ अपने संकल्पकी कठोर साधना करके उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी। दरिद्र भारतवर्षमें आज इन दो सिद्ध पुरुषोंकी पुण्यकथाको प्रकट करनेकी बड़ी आवश्यकता है। दासत्व-पंकसे फँसे हुए देशमें किन किन उपायोंसे स्वतंत्र आजीविका प्राप्त कर सकते हैं—यह सीखनेके लिए इन दो सफलता प्राप्त पुरुषोंके जीवन-चरितोंके पढ़नेकी आवश्यकता है।

हम क्रम क्रमसे कई एक प्रातःस्मरणीय महापुरुषोंके जीवनके संकल्पोंकी बात संक्षेपमें कह चुके हैं। संकल्पकी बात थोड़े ही में कहना चाहिए। जिस विशाल और विस्तृत बड़के झाड़को, जिसका विस्तार देखकर इस समय हम विस्मय करते हैं, वह कुछ समय पहले एक छोटे बीजरूपसे प्रकृतिके संकल्परूपमें छुपा हुआ था । संसारमें महापुरुषोंकी बड़ी कीर्ति जो हम देखते हैं वह भी एक दिन महापुरुषोंके हृदयके भीतर संकल्परूपसे छिपी हुई थी । संकल्पके संबंधकी बहुत करके सब बातें संक्षेपसे कही जा चुकी हैं, अब संकल्पके संबंधमें एक बात और कहना है और वह संकल्पको गुप्त रखना है। मनुष्य-चरित्रके जाननेवाले प्रसिद्ध पंडित चाणक्यका कथन है—"मनसा चिन्तितं कर्म वचसा न प्रकाशयेत्" अर्थात् मनमें सोचे हुए कामको मुँहसे न कहना चाहिए; इतना ही नहीं, किंतु संकल्पको—"प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् तस्माद्यत्नेन गोपयेत्"—प्रकट करनेसे सिद्धिमें हानि पहुँचती है, इसलिए यत्नपूर्वक उसे गुप्त रखना चाहिए।

तीसरा प्रकरण ।

साधना ।

सब सिद्धियोंके देनेवाले परमात्माके मंगलमय नामका स्मरण करके और उसकी कृपाके भरोसे साधनाके काममें प्रवृत्त होना चाहिए । जिस वस्तुको प्राप्त करना हो उसे ध्रुवताराके सदृश सदैव सन्मुख रखकर कार्य करनेमें प्रवृत्त होना उचित है। क्योंकि यदि वह लक्ष्यसे भ्रष्ट हो जाय और मार्ग छूट जाय तो संकटमें पड़ जानेकी संभावना रहती है ।

कर्मक्षेत्रमें उद्योग मुख्य सहायक और आश्रयरूप होनेपर भी दैवका अनुग्रह उपेक्षा करने योग्य नहीं है । साधनामें उद्योग और प्रारब्ध इन दोनोंके मिलनेसे अपूर्व शक्ति आती है, इसी लिए कर्मशील पुरुषोंको ईश्वर-भक्त होना बहुत आवश्यक है। जैसे आत्मशक्ति और संकल्पकी दृढ़ताके बिना साधनामें प्रवृत्त होना विडम्बना है, उसी तरह परमात्माकी मंगल-मय इच्छा और कृपाका दृढ़ विश्वास हुए बिना मनुष्यका कर्मक्षेत्रमें अग्र-सर होनेका प्रयास भी एक विडम्बनामात्र है । उनको पग पगपर विघ्नोंका सामना करना पड़ता है,उनकी आशायें विफल होती हैं और अंतमें साधना व्यर्थ जाती है । नास्तिकका जीवन नैराश्यमय होता है, इस लोक या पर-लोकमें किसी जगह उसे आशा नहीं रहती । उसका सुख दुःख उसके शरीरके साथ होनेके कारण उसके शरीरके साथ ही सर्वस्व नाश हो जाता है । सिद्धिके होनेमें संदेहयुक्त होनेके कारण वे साधनाको छोड़

देते हैं। अतएव इससे सिद्ध होता है कि नास्तिक और भगवानकी कृपापर आस्था न रखनेवाले व्यक्तिकी साधना विडम्बनामात्र है।

दूसरी ओर आस्तिक और भगवद्भक्त व्यक्तिके लिए भी साधना बिलकुल सहज नहीं है; पर तो भी दोनोंमें इतना अंतर है कि एक मनुष्य निराश हृदयसे और यह विश्वास रखकर कि मैं स्वतःही सब करनेवाला हूँ काम करता है, और दूसरा मनुष्य आशाके उज्ज्वल प्रकाशमें अपने लक्ष्यको सन्मुख रखकर, आत्मशक्ति और उद्योगपर विश्वास रखकर भगवानकी कृपाके पीछे पीछे, सिद्धि-असिद्धि, जय-पराजय आदिकी चिन्ताको छोड़कर और अपना कर्त्तव्य समझकर काम करता है। एक मनुष्य कर्मके फल और कर्त्तापनका आरोप अपने आपमें करता है, और दूसरा अपनी की हुई साधनाके फलको परमात्माको अर्पण करता है। वह कर्त्तव्य समझकर सब काम करता है, उसकी धारणा रहती है कि कर्ममें ही मेरा अधिकार है, कर्मका फल परमात्माके हाथमें है। जो मनमें इस तरहकी प्रतिज्ञाके बल, माथेपर ईश्वरके आशीर्वाद, हृदयमें भक्ति और भुजाओंकी शक्तिसे कर्म करते हैं—वे ही साधक कर्मक्षेत्रमें सफलता प्राप्त करके उज्ज्वल कीर्ति लाभ करते हैं!

साधनामें बहुत विघ्न हैं; ऐश्वर्य्यका उल्लास और गरीबीका आलस्य दोनों विघ्नरूप हैं। सुख और ऐश्वर्य्यमें अपने मानको भूलकर केवल भोगविलास और बुरी वासनाओंमें मग्न रहनेसे साधना टूट जाती है और गरीबीमें साधनोंकी कमीसे भय, लोभ, ईर्ष्या आदिकी वृद्धि होकर चित्तकी स्थिरता नष्ट हो जाती है। इन सबको वशमें रखनेके लिए जितेन्द्रिय होनेका अभ्यास करना चाहिए। हमारे देशमें जीवनको लोग व्रतरूप समझते हैं और इसी लिए हमारे सभी काम धर्ममिश्रित होते हैं। खाने पीने, उठने-बैठने, सोने-जागने, रात्रि दिनके सभी कामोंमें भगवानका स्मरण करनेका रिवाज है; इसके सिवा यह भी देखनेमें

आता है कि जो नित्य नैमित्तिक आदि व्रतोंका अनुष्ठान करते हैं, वे पहलेसे ही स्वल्प आहार करके जितेन्द्रिय रहते हैं। इसलिए संयमकी बात किसीके लिए नई नहीं है। नित्य और नैमित्तिक जैसे अल्प समयके व्रतोंको लिए जब इस तरहकी व्यवस्था है, तब इस लोक और परलोकसे संबंध रखनेवाले जीवनरूपी महान् व्रतके उद्यापनके लिए कितने प्रमाणमें जितेन्द्रिय होनेकी आवश्यकता है, इसका सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, इन छह शत्रुओंमेंसे किसी एकके भी प्रबल होनेसे साधनामें विघ्न आ जाता है, इसलिए सब कामोंमें इन शत्रुओंको वशमें रखनेका प्रयत्न करना चाहिए; अन्यथा भलाई नहीं। प्रवृत्तियोंके बताये हुए मार्गपर चलनेसे हमेशा कुराहपर जा पहुँचनेकी आशंका रहती है और उसमें बहुत करके आपत्तिमें फँसना पड़ता है। प्रवृत्तिके इंगित मार्गका अनुसरण करनेसे मनुष्य अपना निजत्व खो बैठता है और उसका विवेक तथा कर्त्तव्य-बुद्धि क्षीण पड़ जाती है। जो मनुष्य काम क्रोधादिक शत्रुओंके वशमें होता है, वह गुलामसे भी गया बीता है। गुलामको केवल अपने शरीरकी स्वाधीनता नहीं रहती है, परंतु जो मनुष्य काम क्रोधादिका गुलाम है, उसके अधीन न तो उसका शरीर होता है और न मन। जिसका मन हमेशा पाप मार्गपर जाता है, उसका शरीर कैसे दूसरे रास्तेपर जा सकता है? अतएव काम क्रोधादि शत्रुओंके वशीभूत हुए विना मनुष्यसे किसी भी अच्छे कामकी आशा नहीं की जा सकती है। उससे जीवनके कठोर कर्त्तव्यका साधन किस तरह हो सकता है? अपने जीवनको जो उन्नत करना हो, जीवनको महान् बनाना हो तो काम क्रोधादि शत्रुओंको वशमें करना चाहिए। जब मनुष्य शत्रुओंको जीत लेता है—अपने वशमें कर लेता है, तब वे नौकरके समान उसकी साधनामें सहायक हो जाते हैं।

काम क्रोधादि शत्रुओंको वशमें रखनेसे सदाचार सम्पादन करनेमें सहायता मिलती है। सदाचारी मनुष्यका सर्वत्र सन्मान होता है और सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। वे अपने सदाचारीपन और भलमनसईके लिए अपने मनमें एक अव्यक्त शक्तिका अनुभव करते हैं। उसी तरह अन्य साधारण लोग भी उनके सदाचारकी शक्तिको जानते हैं, लोग उनके मार्गमें बाधा पहुँचानेकी हिम्मत नहीं कर सकते हैं। चरित्रवान् पुरुष दीपकके समान हैं--स्वयंप्रकाशक हैं। वे जहाँ जाते हैं वहाँसे दुर्जन अंधकारके समान उनसे दूर भाग जाते हैं। चरित्रकी--सदाचारकी ऐसी ही महिमा है। इसपरसे जाना जाता है कि अधिक विघ्नोंवाले साधन-क्षेत्रको सदाचारके प्रभावसे ही निर्विघ्न बना सकते हैं। क्या इस समय बुद्धिमान् और काम करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुष आत्मसंयम वगैरहसे सदाचार सम्पादन करनेका प्रयत्न नहीं करते? किसी भी निष्काम धर्माचरणके लिए अथवा किसी भी सकाम सांसारिक कर्मके लिए सदाचारकी बड़ी आवश्यकता है।

इन्द्रियोंको नियमित रखना और सदाचारका सम्पादन करना ये दोनों कार्य जीवनभर करनेके हैं। मैं आत्मसंयम कर चुका हूँ, मैं सदाचार सम्पादन कर चुका हूँ, कोई भी पुरुष अपने जीवनमें ऐसा नहीं कह सकता है। किसी देशको जीतकर और शत्रुसैन्यको पराजित करके किसी दिन निश्चिन्त हो सकते हैं, परन्तु मनुष्यका काम क्रोधादि शत्रुओंको वशमें करके निश्चिन्त रहना असंभवित है; इसलिए बुद्धिमान् पुरुष अपने शत्रुओं और चरित्रके विषयमें सदैव सावधान रहते हैं। अभ्यासके कारण कुछ दिनोंमें वे शत्रुओंको वशमें करके बहुत कुछ शान्तिभाव धारण कर सकते हैं। जब इस तरहसे आत्मसंयमकी आदत पड़ जाती है और सदाचार प्राप्त हो जाता है, तब भीतरकी चंचलता चली जाती है, और जब बुरी वासनायें चित्तमें चंचलता उत्पन्न नहीं

कर पाती हैं, तब ही निश्चयात्मक बुद्धि उत्पन्न होती है। (आशा और निश्चयबुद्धि ये साधनाके प्राण हैं।) यदि ये न हों तो साधना हो ही नहीं सकती। दीपककी ज्योति हवा न लगनेके कारण अकम्पित रहनेपर भी बिना तेलके बुझ जाती है, इसी तरह चित्त वशमें रहनेपर भी आशा और निश्चयबुद्धिके बिना साधना स्थिर नहीं रह सकती है। अतएव आशा और निश्चयबुद्धि भी बहुत आवश्यक है।

आनंदरहित होकर साधना करना बहुत कठिन काम है। आशापूर्ण हृदयसे आनंदमें मग्न रहकर निश्चयपूर्वक साधनामें लगे रहना चाहिए। ऐसा करनेसे धीरे धीरे साधना प्रिय मालूम पड़ने लगती है। पहले लिखा जा चुका है कि युवकोंको ईश्वरपर विश्वास रखना चाहिए। भक्त-लोग कहते हैं कि—"ईश्वर आनन्दस्वरूप है।"

भगवानके मंगलमय कामोंमें आस्था रखकर आनंदरहित रहना अच्छा नहीं मालूम पड़ता। जो ऐसा करते हैं उनके कार्य और वचनमें समानता नहीं रहती है—एक दूसरेसे विरूद्धता पड़ती है। आनंद जगतका स्वभाव है और दुःख उसका विकार है, अथवा आनंदका अच्छी तरह अनुभव होनेके लिए ही दुःखकी सृष्टि हुई है। आनंद जीवनको बढ़ानेवाला और दुःख जीवनको क्षय करनेवाला है, अतएव मनको हर हालतमें प्रसन्न रखना चाहिए। समुद्रके धरातलपर अनेक प्रकाशग्रन्थियाँ तैरती हुई दिखाई देती हैं, नाविक लोग उनको देख अपने मार्गका निश्चय करते हैं। ये ग्रन्थियाँ बड़ी बड़ी लहरोंकी फटकारों और बड़े बड़े भयंकर तूफानोंसे नहीं डूबती हैं। निरंतर समस्त बाधा-विघ्नोंको तुच्छ गिनकर तैरती रहती हैं। वे लहरोंके साथ नाचती नाचती अपना काम करती हैं। इसी प्रकार हमको भी ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे हमारा हृदय भी आस्थारूपी—समुद्रपर सदैव तैरता हुआ दिखाई दे। हृदय और मनको इस प्रकार प्रसन्न रखनेके लिए आशाकी जरूरत है। आशाके

बिना आनंद स्थायी नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न समयमें जिन जिन महात्माओंने जन्म लिया है, वे आशामें ईश्वरीय आश्वासनवाणीको सुनकर—अनेक तरहकी प्रातिकूल अवस्था आ पड़नेपर भी—प्रसन्न चित्तसे अपना कर्त्तव्य कर गये हैं। इसके सिवा हम भी अपने रोजके कामोंमें क्या देखते हैं? आशा। आशाके प्रकाशमें भविष्यके अंधकारको भेदकर जो कुछ भी नहीं देख सकता वह किस लिए इतना उद्योग और परिश्रम करता है? अपने परिश्रममें, कमाईमें और संचयमें हम आशा ही देखते हैं। आशा रखकर ही लोग खेत जोतते हैं, बीज बोते हैं और पानी सींचते हैं। यदि आशा न हो तो ये कुछ भी दिखाई न दे। आशा कर्मका जीवन है--कर्म जितना आगे चलता है, आशा उतनी ही बढ़ती जाती है।

आशा निश्चयको स्थिर करती है। निश्चय साधनाका प्रधान अंग है। धीरज और निश्चय न हो तो सारी साधना व्यर्थ जाती है। धीरज और निश्चय ये दोनों दीपक और गरमीकी तरह अविच्छिन्न रीतिसे जुड़े हुए हैं। साधनक्षेत्रके सब अंतरायोंको दूर करनेके लिए निश्चयकी बड़ी आवश्यकता है। बारम्बार प्रयत्न निष्फल हो और विघ्न आवें तो भी साधना नहीं छोड़नी चाहिए; क्योंकि जो साधारण विघ्नोंसे डर जाता है, वह कुछ नहीं कर सकता—उसके सारे प्रयत्न अपूर्ण और निष्फल जाते हैं। लोग कहते हैं कि धर्ममय जगतके साधनक्षेत्रमें कामदेवका बड़ा प्रभाव है। वह नाना तरहके रूप धारण करके साधकके सामने खड़ा होता है, कभी सुख और भोगके मनोहर चित्रोंको सामने रखकर साधकसे कहता है—" तुम अपने इस सुन्दर शरीर और तपे हुए सोनेके समान मनोहर वर्णको किस लिए कठोर धर्मसाधनाओंसे मलिन करते हो! संसार चार दिनकी चांदनी है, उसके जानेके पश्चात् फिर क्या है? जब कुछ नहीं है, तो किस लिए इस तरह

मरते हो, संकल्प और साधनाओंको छोड़कर मेरी ओर देखो। तुम्हारे सन्मुख कितने मनुष्य इस पृथ्वीपर स्वर्गसुख भोग करते हैं, अपने जीवन और यौवनको सार्थक कर रहे हैं—कैसे भोगविलासमें दिन बिता रहे हैं। सद्य खिले हुए गुलाबके फूलकी शोभा अल्पकाल ही रहती है, यदि उसका उपभोग शीघ्र न किया जाय तो वह कालके कठोर नियमानुसार मुरझा जाता है। अतएव इस नाशवान् जीवन, क्षणस्थायी यौवन और क्षणभंगुर शरीरको जिस कर्मफलकी हमको कुछ भी खबर नहीं उसकी प्राप्तिके लिए—उस गुलाबके फूलके समान व्यर्थ क्यों खोते हो? एक बार जानेपर वह फिर मिलेगा या नहीं इसका क्या भरोसा? इसलिए जबतक वह है तबतक भोग और सुखमें जीवन और यौवनको सार्थक करो"। इस प्रकार अनेक प्रपंचोंसे कामदेव साधकके मनको चलायमान करनेका प्रयत्न करता है। उपरिलिखित प्रलोभनमें फँसकर अनेक पुरुष संकल्पको छोड़ देते हैं और साधनभूमिसे विचलित हो जाते हैं। जो लोग कामदेवके उक्त मोहरूपी चित्रसे मोहित नहीं होते हैं, उनको साधनासे भ्रष्ट करनेके लिए वह विशेष प्रयत्न करता है। उनको भय दिखाता है। जिस प्रकार श्मशानभूमिमें शवसाधनाकी प्रथमावस्थामें तान्त्रिक (मंत्रसाधना करनेवाला) नाना प्रकारकी भयंकर पिशाचमूर्तियोंको देखता है, उसी प्रकार संसाररूपी कर्मक्षेत्रमें कर्मशील कर्त्तव्यपरायण पुरुष अपने कर्त्तव्य-साधनके पथमें अनेक भय तथा विघ्नोंको खड़ा पाते हैं। कामदेव मनुष्यके कर्मक्षेत्रमें भी कल्पनाको साथ लेकर साधकके सामने खड़ा होता है और कल्पनाकी मददसे उसे नाना तरहके दुःखचित्रोंको दिखाता है; गई गुजरी बातोंका स्मरण कराकर मनमें दुःख पैदा करता है। और कई तरहके मानसिक दुःख, वियोग अथवा कुटुम्बसंबंधी दुर्घटनाओंका चित्र दिखलाकर उसे निरुत्साह और साधन-भ्रष्ट करनेका

प्रयास करता है। इससे भी जो कर्मक्षेत्रको नहीं छोड़ते हैं, उनके सामने वह मिथ्या युक्तियोंकी सहायतासे आरंभ किये हुए कर्मकी योग्यता आदिका प्रश्न खड़ा करता है। जब साधना करते करते शरीर और मन क्षणभरके लिए थक जाता है, उस समय कामदेव साधकके मनमें अविश्वास उत्पन्न करता है। युक्ति तथा तर्कनाकी जगह मिथ्या युक्ति और कुतर्कनाओंकी सहायतासे उसके मनमें भगवानपर अनास्था और आशामें निराशा उत्पन्न करनेका प्रयत्न करता है। इन सब संकटोंके समय निश्चयकी बड़ी आवश्यकता होती है। यदि निश्चय न हो तो शरीर तथा मन सुस्त पड़ जाता है और अपने कर्त्तव्यकी योग्यताके संबंधमें संदेह उत्पन्न होने लगता है; संकल्प शिथिल पड़ जाता है और साधना नष्ट होनेका अवसर आ जाता है। इन सब आपत्तियोंसे आत्मरक्षा करना चाहिए, परमेश्वरकी कृपापर दृढ़ विश्वास रखना चाहिए, उनसे सामर्थ्य माँगना चाहिए, हमेशा प्रसन्न रहना चाहिए और दृढ़ निश्चयके साथ शरीरपात तककी परवा न करके साधनामें लगे रहना चाहिए। यही साधनाकी उत्तम रीति है–यही सिद्धि प्राप्तिका सरल मार्ग है–इसके सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं है–"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"

राजा राममोहनरायकी साधना।

राजा राममोहनरायके संकल्पके विषयमें पहले लिख चुके हैं, अब इस समय उनकी साधनाका वर्णन करते हैं। जब राजा राममोहनराय अरबी तथा फारसी भाषा सीखनेके लिए पटना गये थे, उस समय देशमें आजकलके समान मार्ग सुगम न थे। रेल, ट्राम, तार आदिका कोई नाम भी न जानता था। उस समय परदेश जाना एक बहुत कठिन काम समझा जाता था। जमीनके रास्तेसे बाघ रीछ, जंगली सुअर आदिसे रक्षा कर लेनेपर भी ठग और लुटेरोंके हाथसे बचना बहुत ही कठिन काम था। ठग लोग नाना तरहके वेष रखकर

सर्वत्र फिरा करते थे। कभी साधु-संन्यासीके वेषमें कभी व्यापारीके वेषमें और कभी भले आदमियोंके वेषमें मुसाफिरोंके साथ रास्तों या मुसाफिरखानोंमें मिला करते थे। वे उनको भुलाकर जंगली मार्गोंमें ले जाते और पहले स्थिर किये हुए संकेतोंके अनुसार अपनी टोलीके अन्य ठगोंको एकत्रित करके मुसाफिरोंके प्राण लेकर उनका सर्वस्व हरण कर लेते थे। जलमार्गमें भी विघ्न कम न थे। तैराक लुटेरे मुसाफिरोंकी नावके पीछे पीछे लग जाते थे और अवसर पाकर नावको लूट लेते थे। उस समय पुलिसका ऐसा अच्छा प्रबन्ध न था। परदेश जाते समय मार्गकी कठिनाइयोंका स्मरण करके अनेक लोगोंका खून ठंडा पड़ जाता था—उत्साहभंग हो जाता था। धन और विद्योपार्जनकी लालसा मनकी मन ही में रह जाती थी। इस समय विदेश जानेवाले भारतवासी उस समयकी स्थितिका अनुमान नहीं कर सकते हैं। उस समय धन कमानेके लिए भी बहुत कम लोग परदेश जाया करते थे। उस समय परदेश न जाकर अपने घरपर ही रूखी सूखी खानेमें लोग अपनी भलाई समझते थे। मध्यम स्थितिके पुरुष अपनी जमीनकी पैदायशपर तथा सामान्य स्थितिके पुरुष अपनी माफी* देवोत्तर+ या ब्रह्मोत्तर÷ जमीनमें उत्पन्न हुए अनाजपर संतोषपूर्वक निर्वाह करते थे। मजदूर आदि लोग मजदूरी या अपना धंदा करके अपना निर्वाह चलाते थे और अपने देश ही में रहते थे। खास जरूरतके विना लोग परदेश जानेकी चिन्ताको मनमें स्थान न देते थे। जब हमारे देश और समाजकी ऐसी अवस्था थी उस समय विद्याभ्यासके लिए एक बारह वर्षके बंगाली

---

* इनाममें दी हुई जमीन। + देवस्थानका खर्च चलानेके लिए दानमें दी हुई जमीन। ÷ विद्वान् पंडितोंको आजीविका चलानेके लिए अर्पण की हुई जमीन। इन तीनों तरहकी जमीनके लिए बहुत करके कर नहीं भरना पड़ता था।

बालकका बिहार जैसे सीमा प्रान्तमें जाना, एक बहुत भारी साहसका काम था। विद्याभ्यासके लिए पटनेमें आना, यही राजा राममोहनरायकी साधनाका प्रारंभ था। पटनामें अभ्यास करते समय मुसलमानी शास्त्रोंके अद्वैतवादकी ओर उनका मन आकर्षित हुआ और उसके साथ ही साथ प्रचलित मूर्तिपूजापर उनके मनमें संदेह होने लगा। यह संदेह उनकी उमरके साथ साथ बढ़ता ही गया। पटनामें अरबी तथा फारसी भाषाका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर चुकनेपर संस्कृतका अभ्यास करनेके लिए वे काशी आये। भारतवर्षमें नवद्वीप, काशी और पूना ये स्थान संस्कृत अध्ययनके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इन तीनों स्थानोंमें वेद, वेदांग आदि शास्त्रोंकी चर्चा भी अच्छी होती है। जो उत्तम साधक होते हैं, वे साधनाके लिए हमेशा उत्तम स्थान ही पसंद करते हैं। उस समय पटना अरबी और फारसीकी शिक्षाके लिए प्रसिद्ध था, इसलिए इन दोनों भाषाओंकी शिक्षा उन्होंने उसी जगह प्राप्त की थी, और काशीमें वेद-शास्त्र आदिकी शिक्षा अच्छी दी जाती है, इसलिए उन्होंने काशी रहकर शास्त्रोंका अभ्यास करनेका निश्चय किया था। पटनामें मुसलमानी शास्त्रोंमें अद्वैतवादकी युक्तियोंको पढ़कर वे मुग्ध हुए थे, इसके पश्चात् जब उन्होंने काशीमें उपनिषद् आदि ग्रन्थ पढ़े और उनमें भी अद्वैतवादकी युक्तियाँ और प्रशंसाको देखा तब उनके हर्षका ठिकाना न रहा। इतने दिनोंके पश्चात् उनका संदेह दूर हुआ। मूर्तिपूजा विषयक उनका अविश्वास दृढ़ हो गया, उन्होंने मूर्तिपूजाका भ्रम दिखानेके लिए उस समय एक पुस्तक लिखी थी। पुस्तक प्रकाशित होनेके समय उनकी उमर केवल सोलह वर्षकी थी। चिरप्रचलित मूर्तिपूजापर इस प्रकार आक्षेप होते देखकर हिन्दू-प्रजा एकदम क्रोधित हो उठी। चारों ओर लोग उनकी निन्दा करने लगे। अवसर मिलनेपर वे निन्दक लोग उनको तंग भी करते थे। बाहरके लोगोंका

तो उनपर ऐसा भाव था ही, किन्तु घरपर उनके पिता रामकान्त भी पुत्रका ऐसा धर्मसंबंधी मतभेद देखकर मनमें दुखित रहते थे, और उनपर क्रोध भी रखते थे। उनका यह क्रोध यहाँतक बढ़ गया कि अंतको राजा राममोहनरायको पिताका घर छोड़ देना पड़ा। जिस समय भारतीय बालक सोलह वर्षकी उमरमें खेलकूद आदिमें हँसी खुशीमें दिन बिताते हैं और कोई उनकी निन्दा नहीं करता है, उस समय ऐसी छोटी उमरमें उन्होंने धर्म विषयक विचारके लिए, जो स्वयं उनको सत्य प्रतीत हुआ था उसकी साधनाके लिए समाजकी निन्दा, पिताका क्रोध और गृह-त्याग सहन किया, ये सब बातें उनकी साधनाके प्रति अत्यंत दृढ़ता प्रदर्शित करती हैं! इन सब आपत्तियोंमें वे एक दिनके लिए भी साधनक्षेत्रसे विचलित नहीं हुए!

समुद्रके किनारे खड़े होकर उसकी लहरें देखनेसे डर लगता है, परन्तु जब समुद्रके भीतर गिरते हैं तब उसकी वे बड़ी बड़ी तरंगें हमको डूबने नहीं देती हैं और कई बार बहाकर किनारे पर लगा देती हैं; उस समय वे हमको भयको बदले भरोसा देती हैं। जीवनके घटना-प्रवाहोंमें भी ऐसे अनेक अवसर आते हैं। साधारण रीतिसे देखनेपर जो काम कठिनाइयोंसे भरा हुआ दिखाई देता है वही फिर सारी सुविधा-ओंके रूपमें बदल जाता है। महात्मा राममोहनरायका घर छोड़ना साधारण रीतिसे अमङ्गलरूप था, परंतु वह भी उनको मंगलरूप हो गया। घर छोड़नेके पश्चात् उन्होंने भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें यात्राकी और अंतमें बौद्ध धर्मकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए वे तिब्बत गये। उस जगह भी उनका जीवन आपत्तिशून्य नहीं रहा। जिस स्वतंत्र मतको प्रकट करनेके कारण उनको घर छोड़ना पड़ा था, वही स्वतंत्र मत उस जगह प्रकट करनेपर वहाँ भी उनपर आपत्ति आई, लामाओंने उनके लिए हथियार उठाये। उन्होंने अपने जीवनको संकटमें

फँसा लिया था, परंतु इतनी विपत्ति आनेपर भी वे अपने धर्मसंबंधी मत प्रकट करनेसे पीछे नहीं हटे। उन्होंने अपने संकल्पको दृढ़ कर लिया था और उसकी साधनाके लिए उन्होंने कभी प्राणोंकी भी परवा नहीं की। इसीमें बड़ोंकी बड़ाई है। इस तरह उनको गृहत्याग किये चार वर्ष बीत गईं। वे धीरे धीरे देश विदेशमें भ्रमण करते हुए स्वदेशकी ओर लौटे।

राममोहनरायने स्वदेशमें रहकर मुसलमान तथा हिन्दू शास्त्रोंका अध्ययन करके उनके तत्त्व भलीभाँति समझ लिये थे, परंतु अभी उनकी धर्म जिज्ञासा तृप्त नहीं हुई थी। इसलिए वे बौद्ध धर्मशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये गये। वहाँ बौद्ध धर्मगुरुओंके पास बौद्ध धर्मशास्त्रका तत्त्व जाननेके पश्चात् वे स्वदेश लौट आये, परंतु अब भी उनकी धर्मज्ञानकी तृष्णा मिटी नहीं थी। क्रिश्चियनोंके धर्मशास्त्रका मूल तत्त्व जाननेके लिए उनका मन व्याकुल हो रहा था। इस समय उनकी उमर २२ वर्षकी थी। अनेक युवक इस समय पढ़ना लिखना समाप्त करके संसारमें पड़कर सांसारिक सुख-दुःखोंका अनुभव करते हैं और बाल्यावस्थाके साथ-ही-साथ विद्याचर्चाको भी भूतकालका विषय समझने लगते हैं। अनेक पुरुष इस उमरमें विद्याभ्यास करना असंभवित समझते हैं। परंतु राजा राममोहनराय इस प्रकृतिके पुरुष नहीं थे, वे जब जिस विषयका संकल्प करते थे उसे प्राणपनसे पूरा करनेमें लग जाते थे, कभी पीछा पैर नहीं देते थे। इसी लिए हम उनको २२ वर्षकी उमरमें पाठशालामें पढ़नेवाले विद्यार्थीकी नाईं अँगरेजी सीखते देखते हैं। इतनी बड़ी उमरमें अँगरेजी पढ़ना प्रारंभ करके और उस समय उत्तम शिक्षा पाठ्य पुस्तकोंका अभाव होनेपर भी—उन्होंने उस भाषाका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उस समयके अँगरेज उनकी अँगरेजी लिखनेकी शैलीकी बहुत प्रशंसा किया करते थे। इस समय भी जिन्होंने

उनके लेख पढ़े हैं, वे उनकी अँगरेजी लिखनेकी कुशलताके विषयमें बहुत प्रशंसा करते हैं। अँगरेजी पढ़कर उन्होंने ख्रीष्ट धर्मशास्त्रोंको पढ़ा, तो भी उनके मनको शान्ति नहीं हुई। जिस भाषामें पहले पहल बाइबल लिखी गई थी, उसी बाइबलको पढ़नेकी उनको प्रबल इच्छा हुई। उन्होंने हिब्रूभाषा सीखी और उसमें बाइबल पढ़ी। उन्होंने लैटिन और ग्रीक भाषा भी सीख ली थी। राजा राममोहनरायके अन्य सब कामोंको छोड़कर केवल उनके बहुभाषा–ज्ञानका ही विचार किया जाय, तो उससे उनका असाधारण निश्चय और परिश्रमकी पराकाष्ठा विदित होती है। यदि उनमें इस तरह साधना करनेकी शक्ति न होती, तो वे जगत्के महा पुरुषोंमें कैसे गिने जाते? राजा राममोहनरायने संसारके भीतर एक सार्वभौमधर्मका प्रचार करनेका प्रयास किया था। इतना ही नहीं, किन्तु उन्होंने अपने देश, समाज और शिक्षा सुधारके लिए भी व्रत ग्रहण किया था और उसके लिए कठोर साधना की थी। वे संसारके भीतर किसी भी विषयको एक ही सी स्थितिमें रखना पसंद [illegible] करते थे; उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रत्येक विषय क्रम-क्रमसे उन्नति पाता जाता है। इसी कारण राजकीय सुधार, सामाजिक सुधार और शिक्षा सुधार आदि उस समयके सभी हितकर कार्य्योंमें उनका हाथ था और इसी लिए उनको देश तथा समाजके रक्षकोंके साथ हमेशा वादानुवाद करना पड़ता था। वे केवल वादानुवाद ही में न लगे रहते थे, वरन उन्नतिके मार्गमें सदैव आगे बढ़नेका प्रयास करते थे।

राममोहनराय इतने समय तक एकांत मनसे अनेक भाषाओं तथा शास्त्रोंका अभ्यास करते रहे। पिताके साथ मतभेद होनेपर भी वे इतने समय तक पिताकी छायामें ही थे, संसार चलानेका भार, कुटुम्बके भरण-पोषणका भार, और लोगोंमें अपनी मान-मर्य्यादा बनाये रखनेका भार उनके पितापर ही था, इस कारण अभीतक उनको संसारकी खटपट–

का विचार भी नहीं करना पड़ा था। परन्तु अब उनको यह सुभीता नहीं रहा। सन् १८०३ ई० में उनके पिताका स्वर्गवास हो गया और तबसे घर-गृहस्थीका बोझा इन्हींके सिरपर आ पड़ा। वे रंगपुरके कलेक्टरी खातेमें दीवानका काम करने लगे। उस समय डिग्बी साहब वहाँके कलेक्टर थे। वे एक गुणी और गुणग्राही पुरुष थे। राममोहनराय और उनके मध्यमें अफसर-मातहतीका संबंध था, परन्तु उनका व्यवहार वैसा नहीं था। राममोहनरायके विशेष गुणोंका परिचय मिलनेपर डिग्बी साहबकी सहानुभूति उनके प्रति बहुत बढ़ गई और वे उन्हें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे। राममोहनराय भी अपने आफीसरको गुणी और गुणग्राही समझकर उनपर अधिक श्रद्धा रखते थे। श्रद्धा और प्रेम मित्रताकी जड़ है। डिग्बी और राममोहनरायमें ये दोनों गुण थे; धीरे धीरे दोनोंमें मित्रताका बंधन दृढ़ हो गया। रंगपुरमें नौकरी करते समय उनके दो भाइयोंका स्वर्गवास हो गया। वे संतानहीन थे, अतएव उनकी मिलकियत राममोहनरायको मिली। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी द्रव्यसंबंधी स्थिति देखकर नौकरी छोड़ दी, और फिर निश्चिन्त मनसे अपने अभीष्ट साधनमें लग गये। उन्होंने देखा कि पिताका क्रोध, पैसासंबंधी कठिनाई, परदेश भ्रमणका दुःख और नाना तरहकी आपत्तियाँ आदि कुछ भी उनके संकल्पको विचलित नहीं कर सकीं। और अब हम देखते हैं कि सांसारिक सुख, पैसेकी बहुलता और ऐसे ही दूसरे अनेक प्रकारके ऐश्वर्य्य तथा सुख उनको साधनक्षेत्रसे दूर नहीं ले जा सके। उत्तम साधक सब अवस्थाओंमें इसी तरह अचल रहता है। कमजोर मनके पुरुष दुःखमें मुरझा जाते हैं और सुखमें उन्मत्त हो जाते हैं। राजा राममोहनराय निर्बल प्रकृतिके मनुष्य नहीं थे। जब वे घर छोड़नेके पश्चात् अनेक दुःखोंमें पड़े तब भी उनको शारीरिक या मानसिक किसी तरहका दुःख, कर्त्तव्य-पथसे नहीं हटा सका। इसी तरह सुखके दिनोंमें वे आनंदसे पुलकित होकर अपने जीवनके लक्ष्यसे भ्रष्ट

नहीं हुए । अनुकूल या प्रतिकूल चाहे जैसी वायु बहती हो, पर जिसे अपने मार्गपर जाना है, वह कभी अपना मार्ग छोड़ सकता है ? वह हृदयके भीतरके संकल्पको ध्रुव ताराके समान सोते-बैठते नजरके सामने रखता है । यही साधकका लक्षण है । अपने दोनों भाइयोंके मरणके पश्चात् पिताकी सारी जायदादके मालिक होनेपर आमदनी अच्छी होने लगी, इससे उन्होंने नौकरी छोड़ दी । दूसरे किसी काममें मन न लगाकर उन्होंने धर्म, समाज, शिक्षा और राजनीति आदि देशहितकारी विषयोंमें भाग लेना शुरू कर दिया और इन्हीं कामोंमें जीवन विता दिया । कोई ऐसा न समझे कि वे उस समय अपने निश्चित कामोंको निर्विघ्न या निर्विवाद रीतिसे कर सके थे । प्राचीन रीत-रिवाजोंसे प्रीति रखनेवाले हिन्दू लोगोंने ' धर्म-सभा ' नामकी अनेक सभायें स्थापित करके राम-मोहनरायकी अनेक बहानोंसे निन्दा और तिरस्कार करना प्रारंभ किया था । उनका जुल्म यहाँतक बढ़ गया था कि उनको अपनी रक्षाके लिए सदैव हथियार साथ रखना पड़ते थे । इतनी निन्दा, तिरस्कार तथा आपत्ति आनेपर भी वे अपने कर्त्तव्य-पालनसे पराङ्मुख नहीं हुए । उन्होंने साधन-भूमिमें इन सब विघ्नोंको मुँह बाये खड़ा देखकर भी साधनाका त्याग नहीं किया । उनकी साधनाका फल उनके पश्चात् आज उनके वंशज भोग रहे हैं, और भविष्यमें इससे भी अधिक भोगेंगे ।

राजा रामवर्माकी साधना ।

प्रजाका रंजन और राज्यकी उन्नति करना राजाका मुख्य धर्म है । परंतु इस राजधर्मका पालन करनेके लिए उन्हें स्वतः योग्य होना चाहिए । स्वतः योग्य हुए विना दूसरेकी योग्यता कैसे बढ़ा सकते हैं ? महाराजा रामवर्मा इस विषयको खूब जानते थे, और इसी करण वे प्रारंभसे ही उस कार्यके लिए अपनी योग्यता

बढ़ानेका प्रयत्न करने लगे थे। राजा राज्यके प्रत्येक विषयमें आदर्श-रूप होना चाहिए। त्रावणकोरके महाराजा रामवर्मा अपने राज्यमें एक आदर्शस्वरूप थे। समग्र ऐश्वर्यके स्वामी होनेपर भी उन्होंने अपना सारा जीवन विद्याचर्चामें ही विताया था। नये ज्ञान और सत्य संपादन करनेके लिए वे सदैव आतुर रहा करते थे। उन्हें ज्ञानचर्चा-में विशेष आनंद मिलता था। उन्होंने पदार्थविद्या, रसायनशास्त्र और वनस्पतिशास्त्रका विशेष ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था और उन्होंने इन्हीं सब विद्याओंकी सहायतासे प्रजाका बड़ा हित साधन किया था।

महाराजा रामवर्माके जीवनकी अन्य बातें लिखनेके पहले उनकी दिनचर्याके विषयमें लिखते हैं। वे निरंतर बड़े सबेरे उठा करते थे। सूर्योदयके पहलेसे रातके १२ बजेतक वे परिश्रम किया करते थे। प्रातःकाल होते ही वे दीवानके पाससे राजकार्यसंबंधी समस्त कागजपत्र मँगाते थे। उन सबको वे भलीभाँति देखभालकर और उनमें उचित हेरफेर बतलाकर सात बजनेके पहले ही दीवानके पास लौटा देते थे। तत्पश्चात् वे टहलनेके लिए जाते और बहुत करके इस वक्तको वे वनस्पतिविद्याकी आलोचनामें व्यतीत किया करते थे। लौटते समय वे कई जातकी बेलें, पत्र तथा फूलोंके गुच्छे इकट्ठे किया करते थे। उनको अपने धर्मपर दृढ़ विश्वास था। वे एक पक्के हिन्दू थे। वे नहानेके पश्चात् निरंतर पूजा-पाठ समाप्त करके सबेरेके ग्यारह बजेसे दो बजेतक राजकार्य करते थे। तत्पश्चात् सायंकाल तक आगत पुरु-षोंसे मुलाकात लेने और संरकारी कामोंपर विचार करनेका काम किया करते थे। इसके बाद आधी रातमें अपने निजी वाचनालयमें बैठकर नाना शास्त्रोंकी आलोचना किया करते थे। संक्षेपमें यही उनका नित्यकार्य-क्रम था। इसके सिवा नैमित्तिक कामोंके लिए उनको कभी कभी अपने विश्रामका समय भी खर्च करना पड़ता था। जो लोग ऐसा समझते हों

कि अतुल ऐश्वर्य, अपार द्रव्य और लोगोंपर सत्ता मिलनेपर अखंड भोग-विलासमें दिन बिताना ही जीवनका सर्वोत्तम तथा सुखकर कार्य्य है, उनको महाराजा रामवर्माके जीवनचरितको पढ़ना चाहिए; इससे उनका भ्रममूलक विश्वास दूर हो जायगा।

महाराजा रामवर्माके हाथमें राजसूत्र आते ही उन्होंने सबसे पहले राज्यमें पैदावार बढ़ाने और प्रबंध सुधारनेकी व्यवस्था की। राज्य और राज्यकी पैदावारी जाननेकी सबसे पहले आवश्यकता है। जिस समय उनके हाथमें राजसूत्र आया था, उस समय राज्यकी पैदावारी बहुत शोचनीय स्थितिमें थी, परंतु उनके राजत्वकालमें उनके उत्तम गुणोंके कारण वह बहुत अच्छी स्थितिको पहुँच गई थी। महाराजाने प्रजाके हितके लिए खेती और कलाकुशलता बढ़ानेका उत्तम प्रबंध किया था। उन्होंने अपने राज्यमें खेती और कलाकुशलताकी उन्नतिके लिए जो प्रयास किया था, वह हमारे देशके जमींदारोंके लिए अनुकरणीय है। साधारणतः किसान और कारीगर लोग प्राचीन रीत-रिवाजोंके भक्त होते हैं। उनके बाप-दादे जिस प्रकार खेती तथा उद्योग करते आये हैं—उसमें अनेक असुविधायें होनेपर, भी—वे उसीका अनुकरण करते जाते हैं; सहजमें नये मार्गपर पैर नहीं रखते। प्रजा सुशिक्षित हो, तो राजा बहुत थोड़े प्रयाससे ही अपने राज्यमें वैज्ञानिक ढँगसे खेती तथा कलाकुशलताका प्रचार कर सकता है; नये नये उद्यम और नये नये धान्योंकी पैदावारी करा सकता है। इनके द्वारा आमदनीका एक नया मार्ग खुल जाता है। महाराजा रामवर्माने अपने राज्यमें चा और काफीकी खेतीका उत्तम प्रबंध करके प्रजाकी आजीविकाका नया मार्ग खोल दिया था। त्रावणकोरकी जमीन ऐसी है कि उसमें थोड़ी बरसात या बिना बरसातके ही चाकी पैदावारी बहुत होती है। इसी लिए अनेक लोग कहा करते हैं कि चाकी खेतीका प्रचार करके राजा रामवर्मा अपने राज्यको दुष्कालसे हमेशाके लिए बचा गये हैं।

कलाकुशलताके विषयमें उन्होंने अपनी उदार नीति प्रकट की थी। वे भलीभाँति जानते थे निरन्तर नये नये हेरफेरोंका होना राजा, प्रजा और नगरके अन्य धनवान् तथा विलासी लोगोंपर निर्भर है। इसलिए वे अपने राज्यके कारीगरोंके बनाये हुए पदार्थोंका बहुलताके साथ उपयोग करते थे, और अन्य कई उपायोंसे भी उन्हें उत्साहित किया करते थे। उनके आदर्शको लेकर उनके राज्यके धनवान् और विलासी पुरुष भी उनका अनुकरण करते थे। इस कारण त्रावणकोर राज्यमें देशी कारीगरीकी खूब उन्नति हुई। वास्तवमें जो लोग अपनेको देशभक्त प्रसिद्ध करना चाहते हों—जो अपने हृदयमें देशहित साधनकी प्रबल इच्छा रखते हों—*उन्हें महाराजा रामवर्माका अनुकरण करना चाहिए।* अपनी और अपने देशकी उन्नति करना हो, तो अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुओं और देशी कारीगरीका आदर करना सीखना चाहिए। देशमें स्वदेशी चीजों और कारीगरीका प्रचार होनेसे प्रजाकी अवस्था सुधरती है और देशकी धनवृद्धि होती है—इससे राजा और प्रजा दोनोंका कल्याण होता है। महाराजा रामवर्मा अर्थनीतिके इस गूढ़ तत्त्वको अच्छी तरह जानते थे और उसे सिद्ध करनेके लिए साधना भी करते थे।

महाराजा सब तरहसे प्रजाका हित चाहते थे। साधारण प्रजाके लाभके लिए और भिन्न भिन्न जातिके साहित्यकी पुष्टिके लिए उन्होंने बहुत प्रयास किया था। महाराजा स्वतः एक अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने जीवनभर विद्याभ्यास किया था। उन्होंने कई विषयोंका अँगरेजीसे मलय-भाषामें अनुवाद कराकर मलय-भाषाकी श्रीवृद्धि की थी।

महाराजा रामवर्मा दृढ़ हिन्दू थे। वे बहुधा कठिन व्रतोंका अनुष्ठान किया करते थे। वे विशाल राज्यके स्वामी और अतुल ऐश्वर्यके अधिपति होनेपर भी जिस प्रकार राज्य और प्रजाका हित साधन कर गये हैं,

उसे देखकर विस्मित होना पड़ता है । महाराजकी कठोर साधनाको देखकर महाकवि कालिदासका यह कथन याद आता है कि—

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने।
तोये कांचनपद्मरेणुकपिशे पुण्याभिषेकक्रिया ॥
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो
यत्कांक्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥

" जिस जगह कल्पवृक्ष रहता है, उस वनस्थलमें ऐसे महापुरुष वायु भक्षण करके जीवन धारण करते हैं; पीत कमलके परागसे पीत वर्ण हुए जलमें नित्य स्नान करते हैं और मणिमय शिलापृष्ठपर अप्सराओंके समीप ध्यान करते हैं। इस तरह दूसरे मुनि जो ऐसे स्थानकी प्राप्तिके लिए तपश्चर्य्या करते हैं, उसी स्थानमें रहकर ऐसे महापुरुष तपश्चर्य्या करते हैं "।

सर माधवरावकी साधना।

अनुक्रमानुसार अब लोकप्रसिद्ध दीवान सर माधवराव और सर सालारजंगके जीवनकी साधनाका वर्णन लिखते हैं। राजनैतिक क्षेत्रमें इन दोनों सज्जनोंकी साधनाका प्रसंग बहुत शिक्षाप्रद है। असाधारण चरित्रबल और अनिवार्य इच्छाके बिना राज्यशासन और राजकीय सुधार करना बहुत कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव है। शासन और सुधार करना बहुत कठिन और उत्तरदायित्वका काम है। लोगोंका तीव्र अपवाद, भयंकर विघ्न और दुर्जय शत्रुशक्तिका संहार किये बिना कोई भी व्यक्ति शासन और सुधार करनेमें सफल नहीं हो सकता। सर माधवराव और सर सालारजंग इन दोनोंमें असाधारण चरित्रबल और अनिवार्य्य इच्छाशक्ति थी; इसी लिए वे कर्मक्षेत्रमें पग-पगपर विघ्नोंके आनेपर भी निराश नहीं हुए थे। इन राजनीति जाननेवाले दोनों महापुरुषोंको कैसे कैसे विघ्नोंका सामना करना पड़ा था, इसका

आभास उनके शासन तथा सुधार किये हुए राज्योंकी तत्कालीन अवस्था देखनेसे मिलता है। पहले हम सर माधवरावका प्रसंग लेते हैं। जब सर माधवराव त्रावणकोर राज्यके दीवान नियुक्त हुए थे, उस समय उस राज्यकी आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। नौकरोंको समयपर तनख्वाह नहीं मिलती थी। राज्यके नित्य और नैमित्तिक खर्चके लिए हमेशा तंगी बनी रहती थी। विवश होकर आवश्यक खर्च चलानेके लिए बहुधा ऋण लेना पड़ता था। आर्थिक हीनावस्थाके लिए केवल इतना ही कहना बस है कि अनेक बार भारत सरकारका कर भी नहीं चुकता था। संसारमें द्रव्यबलके समान दूसरा बल नहीं है। द्रव्यबल घट जानेसे बाहुबल भी घट जाता है। त्रावणकोर राज्यके लिए यह नियम पूर्णरीतिसे घटित हुआ था। जो कर्मचारी थे वे समयपर वेतन न मिलनेके कारण असंतुष्ट रहते थे और राजकार्यके प्रति उदासीनता प्रकट करते थे। जिनसे बन सकता था वे लाँच लेनेसे भी हाथ न सकोड़ते थे। इस कारण राजा अपने कर्मचारियोंसे योग्य रीतिसे काम नहीं ले सकता था। धीरे धीरे उनके नौकर ही शत्रु होने लगे और दूसरी ओर बाहरी शत्रु भी प्रबल हो उठे। परिणाम यह हुआ कि राज्यकी सीमापर बलवा मच गया। राज्यके भीतर भी प्रजाके जान मालकी रक्षा होना कठिन हो गया। चोर और डाँकुओंकी खबर हमेशा सुनाई देती थी।

खेती और व्यापारसे राज्यमें धनकी वृद्धि होती है। त्रावणकोरकी जमीन खेतीके लिए अनुकूल होनेपर भी उस समय खेतीबारीका काम अच्छा नहीं चलता था। रास्ता और सड़कें अच्छीं न होनेके कारण व्यापारी मालका आवागमन भी बहुत कम होता था; जो कुछ होता था—सरकारी खजानेमें पैसेकी तंगी होनेके कारण—उसपर जकात अधिक ली जाती था। ऐसे कारणोंसे देशके भीतरी तथा परदेशी व्यापारकी हालत अच्छी नहीं थी। अन्य विषयोंमें भी राज्यकी हालत ऐसी

ही थी । राज्यकी इस दुर्दशाकी खबर तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डेलहौसीके कानों तक पहुँची । वे त्रावणकोर राज्यको अँगरेजी राज्यमें मिला लेनेके उद्देशसे उटकमंड तक आ पहुँचे थे । इस समय सर माधव-रावने वीचमें पड़कर मद्रास सरकारकी सहायतासे राज्यके सुधारके लिए सात वर्षकी म्याद माँगी । सौभाग्यवश दीवान माधवरावकी प्रार्थना मंजूर हो गई ।

इसी समयसे माधवरावकी साधना प्रारंभ हुई । पुराने नौकर-चाकर बहुधा प्रचलित रीति-रिवाजोंके भक्त होते हैं, वे बहुत करके सब तरहके सुधारोंका विरोध करते हैं । सर माधवराव जिस तरह एक ओर राज्यके कल्याणके लिए सब बातोंके सुधारका प्रयास करते थे, उसी प्रकार अन्य ओर पुराने कर्मचारी उनके विरोधी होते जाते थे । उनके प्रत्येक कामोंमें अड़चनें आने लगीं । उनका चरित्रबल बहुत असाधारण था, नहीं तो ऐसी अड़चनोंके समय अपने कर्त्तव्यपर दृढ़ रहना दूसरोंके लिए एक तरहसे असंभव है । राज्यके भीतरी सुधारोंमें तो इस तरहके विघ्न थे ही, परन्तु दूसरी ओर भी कुछ कम अड़चनें न थीं । प्राचीन समयसे कई एक कृपापात्र मनुष्य अनेक खास खास चीजोंका ठेका लिये थे, इस समय जब एक एक करके उनके पाससे ठेका निकाले गये तब वे चारों ओरसे नये दीवानकी निन्दा करने लगे । पुराने नौकर भी पहलेके समान अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर पाते थे, उनके अनेक अयोग्य आमद-नीके मार्ग बंद हो गये, इससे वे भी सर माधवरावके विरुद्ध हो गये और उनपर स्वार्थीपन या और ऐसे ही अनेक झूठे आरोप लगाने लगे ।

सर माधवराव अपने विचारोंके अनुसार निष्कलंक और राजभक्त थे, इस कारण दूसरोंकी निन्दा अथवा स्तुति उनको अपने कर्त्तव्य-मार्गसे विचलित नहीं कर सकी । इसी कारण कर्मक्षेत्रमें—साधनभूमिमें उनका चरित्र आदर्शरूप है । इतने दिनों तक शत्रु लोग जब उनके कामोंमें

विघ्न डालकर सफल मनोरथ नहीं हुए, तब वे दूसरे उपायोंसे उनको अपने कपटजालमें फँसानेकी चेष्टा करने लगे। इस समय उन्होंने भेदनीतिका आश्रय लिया और उन्होंने महाराजा और मंत्रीके बीचमें वैमनस्य उत्पन्न करा दिया। ऐसी स्थितिमें सर माधवरावने महाराजाका काम करना योग्य न समझकर और एक हजार रुपया मासिक पेंसन लेकर दीवान-गिरीका काम छोड़ दिया।

इसके पश्चात् सर माधवरावकी इच्छा अपने शेष जीवनको साहित्य और धर्मचर्चामें व्यतीत करनेकी थी, परंतु गवर्नमेण्टकी शिफारिससे उन्हें होल्कर राज्यमें दीवान बनकर जाना पड़ा। इस कामको उन्होंने दो वर्षतक चलाया।

होल्कर राज्यसे संबंध छोड़नेके पश्चात् भारत सरकारकी आज्ञासे वे सन् १८७५ ई० में बड़ोदा राज्यके दीवान बनाये गये।

बड़ोदामें उनका काम बहुत जोखिम और विघ्नोंसे परिपूर्ण था। उस समय मल्हारराव पदभ्रष्ट हुए थे। राज्यमें सर्वत्र भय और अविश्वास फैला हुआ था। लोग सहजमें किसीपर विश्वास नहीं करते थे। लोगोंने दस दस, बीस बीस मनुष्योंकी छोटी छोटी टोलियाँ बनाई थीं। एक दूस-रेसे विवाद, बलवा, लूटमार और राजसत्ताकी उपेक्षा करना ही इन टोलियोंका काम था। साधारण प्रजाकी ऐसी ही स्थिति थी। प्रजाके कल्याणमें ही राजाका कल्याण गर्भित रहता है। जब प्रजाकी दशा ऐसी शोचनीय थी, तब राजाकी दशा उससे भी अधिक शोचनीय हो, तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? खाली खजाना और बलवाई तथा अवि-श्वासी प्रजाको लेकर राज्यका उत्तम प्रबंध रखना असंभव है। राज्यके सुप्रबंध तथा सुधारके लिए पहले द्रव्यकी आवश्यकता पड़ती हैं। द्रव्यके बिना प्रबंध तथा सुधार करना दोनों असंभव है। एक उदाहरणके द्वारा हम इस बातको समझानेका प्रयत्न करते हैं। नौकरोंको वेतन बहुत कम

मिलता था, सो वह भी उन्हें ठीक समयपर नहीं दिया जाता था; इससे वे घूँस खाते और प्रजापर जुल्म करते थे। इसका सुधार करनेके लिए पहले दुश्चरित्र तथा घूँसखोर नौकरोंको उनका शेष वेतन देकर जुदा करने, और फिर घूँस आदि कुरीतियोंको बंद करके अच्छे और सदाचारी नौकर योग्य वेतनपर नियत करनेकी आवश्यकता होती है। यह बढ़ाया हुआ वेतन भी उनको ठीक समयपर मिलना चाहिए। इन सब कामोंके लिए पहले पैसेकी जरूरत है। परंतु खजानेमें पैसा नहीं था। उस समय जो आमदनी थी उससे राज्यका नित्य तथा नैमित्तिक खर्च ही कठिनाईसे चलता था। परंतु राज्यके कल्याणके लिए सुधारकी बड़ी आवश्यकता थी और सुधारके लिए पैसेकी आवश्यकता थी। परंतु यह पैसा कहाँसे आवे? राज्यका सारा कामकाज, सुधार और राज्यके धनकी वृद्धि, इन प्रश्नोंने माधवरावको पहले ही से अतिशय चिन्तामें डाल रक्खा था। राजके सभी कामकाज और सुधार राज्यके धनपर अवलम्बित रहते हैं, इसलिए उस समय कैसे कैसे सरस उपायोंसे राज्यकी आमदनी बढ़े, यही उनकी चिन्ताका मुख्य विषय हो गया था। गायकवाड़ सरकारका जमा वसूलीका मुहकमा बहुत अस्तव्यस्त था; इसलिए नये दीवान साहबको उसके सुधारके लिए बहुत परिश्रम करना पड़ा था। राज्यकी धनवृद्धिके लिए माधवरावको कैसा कठोर परिश्रम करना पड़ा इसे समझानेके लिए जमा वसूली खातेकी दो चार बातें लिखते हैं। बड़ौदाके सरदार उपाधिधारी कईएक खानदानी पुरुषोंके हाथमें जमा वसूलीका काम था। वे सरकारके पाससे कुछ वर्षोंके लिए अमुक रकम देनेकी शर्तपर जमीदारीका ठेका लेते थे; और वे ही जमीदार तथा साहूकार लोगोंको पट्टा देते थे। ये लोग सरदारोंके पास रकम जमा कर दिया करते थे। जमीदार और साहूकार लोग प्रजाको दुःख देनेमें कुछ उठा नहीं रखते थे। थोड़ेमें

इतना ही कहना बस है कि ठेकेदारीके प्रबंधमें कोई किसीका भाव नहीं पूछता था। प्रत्येक आदमी अपने अपने लेनेदेनमें उलझा रहता था। राजा अपने सरदारों, साहूकारों और प्रजाके लोगोंकी अड़चनें या सुविधाओंकी ओर ध्यान नहीं देता था। वह सरदारोंके पाससे अपनी जमा पाकर ही निश्चिन्त हो जाता था। सरदार भी उसी तरह साहूकारों या जमीदारोंके पाससे अपना लेना वसूल कर लिया करते थे। राजा अथवा सरदारोंका—किसीका भी—प्रजाके साथ प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहता था, इस कारण वे प्रजाके सुख-दुःखके विषयमें उदासीन रहा करते थे। सुकाल अथवा दुष्कालसे प्रजाको जो लाभ अथवा हानि होती थी, उसे वे जानना नहीं चाहते थे। वे तो अपना पैसा वसूल करना चाहते थे। साहूकारों या जमीदारोंको वह पैसा प्रजाके पाससे एक एक करके वसूल करना पड़ता था। वे लोग इस वसूलीकी रकममेंसे अपना कमीशन बचाकर शेष सब रुपया सरदारोंके पास जमा कर देते थे। उचित उपायोंके द्वारा पैसा वसूल करनेकी बातको दूर रखकर वे लोग ऐसा सोचते थे कि कौन जाने, आगे ठेका मिला या न मिला, इसलिए वे अपने ठेकेकी वर्षोंके भीतर जो कुछ पैदा हुआ वही सही, ऐसा सोचकर प्रजाके पाससे उचित या अनुचित उपायोंके द्वारा जिस तरह हो सकता था-पैसा चूसते थे। इससे प्रजा बहुत दुखी रहा करती थी, इतना ही नहीं किन्तु इससे अधिकांश लोग बरबाद भी हो जाते थे। इस अवस्थामें प्रजाके दुःखका कभी अंत ही न आता था। जिस प्रकार राजाकी भलाईमें प्रजाकी भलाई शामिल है, उसी तरह प्रजाकी भलाईमें राजाकी भलाई शामिल है। अतएव जिस राज्यमें प्रजा दुखमें दिन बिताती हो, उस राज्यका श्रेय किस तरह हो सकता है? सर माधवरावने सब विषयोंका अच्छी तरह शोध करके राज्यकी वास्तविक स्थितिका ज्ञान प्राप्त किया। जिस प्रकार एक चतुर चिकित्सक पीड़ित मनुष्यके

अंग प्रत्यंगकी परीक्षा करके यह जान लेता है कि असली चोट किस जगह है और कहाँ नस्तर लगाना चाहिए, उसी प्रकार माधवरावने भी राज्यके अंदर खराबीका कारण क्या और कहाँ है और कहाँपर तीक्ष्ण नस्तरका प्रयोग करना चाहिए, इन बातोंका पता लगा लिया। यह बात उन्होंने अच्छी तरह जान ली थी कि जबतक सरदारोंके पाससे जमा वसूलीके ठेके निकाल न लिये जायँगे, तबतक राज्यकी स्थिति सुधरने-की कुछ भी आशा नहीं है। परंतु सरदारोंके पाससे ठेका छीन लेनेका काम बहुत कठिन था। वे राजद्वारा सन्मानित थे, उनकी सत्ता और प्रभाव भी कुछ कम नहीं था। इसपर साहूकार तथा जमींदार लोग उनके सहायक थे। जब उन लोगोंको यह बात विदित हुई कि दीवान साहब हम लोगोंके हाथसे राजकर वसूल करनेका काम छीनकर हमारी आमद-नीका मार्ग बंद कर देना चाहते हैं, तब चारों ओरसे कोलाहल मच गया। सरदार लोग अनेक तरहकी कानूनी तकरीरें खड़ी करने लगे। सर माधवराव वकालतद्वारा आजीविका चलानेवाले व्यक्ति नहीं थे, तो भी वे कानूनके शास्त्रोंका कूट तत्त्व भलीभाँति जानते थे। उन्होंने अपनी स्वाभाविक तीक्ष्ण बुद्धिकी सहायतासे धीरे धीरे एक कंटकके पश्चात् दूसरे कंटकको उखाड़ डालनेका प्रयत्न किया। सरदार लोग जिन दली-लोंके आधारपर अपना हक साबित करनेको खड़े हुए थे, उन्हीं सब दली-लोंकी शर्तें पूरी न करनेके कारण वे अपने जालमें आप ही फँस गये। उनको निश्चित समयके लिए जो गाँव ठेकेसे दिये जाते थे उनकी मुख्य शर्त यह थी कि वे प्रतिवर्ष नियत समयपर अपनी अपनी जमा खजानेमें दाखिल किया करें। परन्तु जब सर माधवरावने खोज की, तो मालूम हुआ कि अनेक सरदारोंपर बहुत कुछ जमा बाकी है। यह बकायाकी रकम जब जोड़ी गई तो बहुत अधिक निकली। यह सब देखकर सर माधवरावने आज्ञा प्रचारित की कि जिन सरदारोंपर सरकारी जमा बाकी

है, यदि वे नियत समयके अंदर उसे भर न देंगे, तो उनका हक्क रद्द कर दिया जायगा और फिर वे ठेका न पा सकेंगे । अभी तक सरदार लोग खूब सुखसे दिन व्यतीत किया करते थे—उनके खर्चकी कोई सीमा न थी । सरकारी जमा तक वे खर्च कर डालते थे । ऐसी फिजूलखर्चीके कारण उनके पास पैसा जमा नहीं होता था । इस कारण वे नये दीवानकी इस आज्ञाको सुनकर घवरा गये । अधिकांश लोग नियत समयके भीतर पैसा नहीं भर सके । सर माधवरावने जैसी आशा की थी, वैसा ही हुआ । अंतमें सरदारोंकी हार हुई और साहूकार लोग भी धीरे धीरे निर्बल पड़ गये । सरदारों और साहूकारोंमें कुछ ऐसे लोग भी थे, जो सहसा कावूमें न आते थे और वहुत उपद्रव किया करते थे । माधवरावने उनको काशी आदि स्थानोंमें निर्वासित कराकर देशमें शान्ति स्थापित की । फिर वे अपनी इच्छानुसार सुधार करनेमें प्रवृत्त हुए । न्याय और जमा वसूली इन दोनों विभागोंमें उन्होंने वहुत लाभकारी परिवर्त्तन किया । सरदारों और साहूकारोंके हाथसे जमा वसूलीका काम निकल जाने और उसका योग्य प्रवंध हो जानेपर प्रजामें वहुत कुछ अमनचैन छा गया । इस नये प्रवंधसे सरकारी आमदनी भी वढ़ गई । आमदनी वढ़ानेके लिए आयकी वृद्धि और व्ययका संकोच, इन दोनों उपायोंसे काम लेना चाहिए । केवल आय वढ़ानेकी ओर ध्यान रखनेसे करका वोझा वढ़ जाने या और किसी तरहसे प्रजाको पीड़ा पहुँचनेकी आशंका रहती है । इस लिए सर माधवरावने खर्च घटानेकी व्यवस्था की और जिस जिस जगह उनको गुंजाइश दिखाई दी, वहाँ वहाँ उन्होंने खर्च कम कर दिया ।

सर माधवरावने राज्यकी उन्नति करनेके लिए जिस राज्यका कामकाज अपने हाथमें लिया था । उन्होंने अपने अविश्रान्त परिश्रम, बुद्धिबल और ईश्वरकृपासे उस काममें सफलता प्राप्त की । उन्होंने जिन जिन कामोंके लिए साधना प्रारंभ की, क्रम क्रमसे उन सवमें विजय पाई । सर

माधवरावके कर्मशील जीवनकी राजनीतिक्षेत्रकी साधना इस तरह समाप्त हुई ।

सर सालारजंगकी साधना ।

सर सालारजंग चौवीस वर्षकी उमरमें निजामके मुख्य मंत्रीके पद-पर नियुक्त हुए थे । पाश्चात्य ज्ञान प्राप्त कर-नेमें वे हिन्दू दीवान सर माधवरावके समान भाग्यशाली नहीं निकले; परंतु स्वाभाविक रीतिसे वे बहुत बुद्धिमान् थे । उन्होंने छोटी उमरमें ही राजकीय कामोंमें निपुणता प्राप्त कर ली थी, इस कारण उन्हें पाश्चात्य विद्याके पाण्डित्यकी कमीके कारण कभी किसी तरहकी असु-विधा नहीं उठानी पड़ी । वे ईश्वरदत्त तीक्ष्ण बुद्धि, चिरआरोग्य और दृढ़ताको लेकर राजकार्य्य करनेमें प्रवृत्त हुए थे ।

सर सालारजंगने दीवानगिरीका काम हाथमें लेनेके थोड़े ही दिनोंके पश्चात् देखा कि राज्यमें बहुत गोलमाल है और खजाना भी खाली है । निजामके बहुमूल्य जवाहरात ऋणके कारण विलायतमें गिरवी रक्खे थे । उस समय निजामपर तीन करोड़ रुपयाका कर्ज था । फौजी खातेके नौकरोंकी शेष तनख्वाहकी अदाईके लिए अनेक गाँवोंका महसूल उन लोगोंके हाथमें था । इधर राज्यकी जो आमदनी थी उससे खर्च पूरा नहीं होता था । खर्च भी निश्चित और परिमित नहीं था । निजामके कई निकम्मे वेतनभोगी लोग भी थे, जिनका बकरेके गल-स्तनके समान व्यर्थ ही बोझा उठाना पड़ता था ।

सालारजंग राज्यकी स्थितिको खूब ध्यानपूर्वक देखने लगे । पहले उन्होंने व्यर्थ खर्च बंद करनेके लिए कमर कसी । उन्होंने देखा कि राज्यके अंदर निकम्मे और जुल्मी अरब, पठान और रोहिलोंकी सेना रक्खी गई है, जो लड़ाईके लिए बिलकुल असमर्थ होनेपर भी जुल्म कर-नेमें विशेष कुशल है । इनमेंसे अधिकांश लोग खास निजाम साहबकी

हजूरमें रहकर वेतन पाते थे और शेष जागीरदारोंके अधिकारमें थे। लड़ाई आदिके अवसरपर आकर सहाय करनेकी उनसे शर्त रहती थी। सर सालारजंगने देखा कि उनके तनख्वाह आदिमें खर्च तो बहुत होता है, पर अवसरपर उनसे मदद मिलनेकी बहुत कम संभावना है। इन सब बातोंपर विचार करके उन्होंने उन लोगोंको नौकरीसे हटानेका निश्चय किया और इसके लिए एक खास आज्ञा निकाली। जो सैनिक खास निजाम साहब की हजूरमें थे उनको निकालकर ही वे निश्चित नहीं हुए, वरन उन्होंने जागीरदार और तालुकेदारोंके पास भी इसी आशयका हुक्म भेजा। इन सिपाहियोंको नौकरीपरसे हटानेके कारण राज्यको तीन तरहका लाभ हुआ। पहला तो उनकी तनख्वाहके लिए जो बड़ी रकम खर्च होती थी, वह बचने लगी, दूसरे अनेक सैनिकोंके पास बाकी तनख्वाह या किसी और अन्य कारणोंसे जो गाँव गिरवी थे, वे निकल आये। इस स्थलपर यह कह देना आवश्यक है कि इस उपायसे ४० लाख रुपयाकी वार्षिक आमदनी बढ़ गई थी। तीसरा लाभ यह हुआ कि सैनिक अत्याचारोंसे रक्षा पानेके कारण प्रजामें सर्वत्र सुख-शान्ति छा गई।

इसके पश्चात् सर सालारजंगने राज्यकी पैमायश कराकर हैदराबाद राज्यको भिन्न भिन्न जिलोंमें बाँट दिया। राजकर वसूल करनेके लिए जो ठेकेदारीका प्रबंध था, उसे बंद कर दिया। तालुकेदार लोग नाना तरहसे प्रजाको पीड़ा पहुँचाया करते थे और इस कारण उनके विरुद्धमें अनेक फरियादें हुआ करती थीं। इन सब अत्याचारोंको एक ओर रखकर उन-पर सबसे भारी अभियोग यह लगाया गया कि वे राजकर वसूल करके उसमेंसे आधा या चतुर्थांश पहले ही से खा-पी लेते है। इससे राज्यको बहुत हानि उठाना पड़ती है। इन सब कारणोंसे दीवान सर सालारजंगने उनको नौकरीसे अलग कर दिया। इसके बाद उन्होंने प्रजाके हितके लिए नया नियम प्रचलित किया। प्रजासे जो महसूल

लिया जाता था, उसे निश्चित करके उनसे अनाजके बदले नकद रुपया लेनेकी रीति प्रचलित की। यदि प्रजाका हक जमीनपर स्थायी न हो और उसे जो कर देना पड़ता हो, वह भी निश्चित न हो, तो फिर वह किस आशापर अपनी जमीनकी उन्नति करेगा। जब उन्होंने देखा कि उनकी मिहनतसे जमीनकी पैदावार बढ़नेपर उसके साथ महसूल भी बढ़ा दिया जाता है और वे उस महसूलको न दे सकें या देनेसे इन्कार करें, तो उनकी जमीन दूसरोंके हाथ चली जाती है। ऐसी हालतमें वे किस लाभकी आशासे कठिन परिश्रम करके जमीनकी पैदावारी बढ़ावें? यदि उन्हें ऐसा अभयवचन या विश्वास दिया जाय कि जमीन सुधारने और उसमें उपज बढ़नेपर राज्यकर न बढ़ाया जायगा, तो वे अपने लाभकी आशासे जमीनको सुधारें और उसकी उन्नतिके लिए प्राणपनसे चेष्टा करें। ऐसा करनेसे राज्यकी सारी जमीन आबाद हो जायगी और देश धन-धान्यसे भर जायगा। प्रजाकी धनवृद्धि होनेसे राज्यकी भी धनवृद्धि होती है। जिस राज्यकी प्रजा सुखी होती है, उस राज्यमें आमदनीके कई मार्ग होते हैं। यदि प्रजाकी स्थिति अच्छी हो, तो राजा स्पष्ट या अस्पष्ट करोंसे अपने खजानेको भर सकता है। सर सालारजंग राजस्व-विभागके इस गूढ़ तत्त्वको भलीभाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने राजस्व-विभागमें उचित परिवर्त्तन किया था। इस जगह यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भूमिकरकी ऐसी ही व्यवस्था बंगालमें होनेके कारण वहाँकी प्रजा साधारणतः अच्छी हालतमें है।

सर सालारजंगके अविश्रान्त परिश्रमके फलसे निजाम राज्यकी आर्थिक स्थिति धीरे धीरे सुधरने लगी और खर्चकी अपेक्षा आमदनी अधिक बढ़ गई। खजानेमें धीरे धीरे पैसा भी जमा हो चला। कहा जाता है कि—

नरपतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके ।
जनपदहितकर्त्ता त्यज्यते पार्थिवेन ॥
इति महति विरोधे विद्यमाने समाने ।
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्त्ता ॥

अर्थात् राजा और प्रजा दोनोंको संतुष्ट रखकर काम करना बहुत कठिन है । राजाकी भलाई करनेसे प्रजा नाराज होती है और प्रजाका हित करनेसे राजा क्रोधित होता है । अतएव राजा और प्रजा दोनोंका हित करनेवाला आदमी दुर्लभ है । यह बात यथार्थमें सच है । परन्तु राजा और प्रजा दोनोंका अप्रीतिपात्र बनकर केवल कर्त्तव्यकी ओर दृष्टि रखकर, देशहितके लिए, भगवानकी कृपाके भरोसे कार्य करनेवाले पुरुष संसारमें उनसे भी अधिक दुर्लभ हैं ।

सर सालारजंग भी इसी प्रकारके दुर्लभ पुरुष थे । निजाम साहब उनको प्रीतिकी दृष्टिसे नहीं देखते थे । उनके कामकाजोंकी ओर सदैव शंकित भावसे देखा करते थे । सर सालारजंग राज्यके प्रधानमंत्री होने-पर भी निजामके नजर कैदी थे, ऐसा कहना कुछ अतिशयोक्ति नहीं है, क्योंकि निजामकी अनुमति लिए बिना वे कहीं भी आवागमन नहीं कर सकते थे । शहरके समीप किसी बगीचेमें अपने इष्ट मित्रोंके साथ कुछ समय हास्य-विनोदमें बितानेके लिए भी उनको निजाम साहबसे अनुमति लेनी पड़ती थी । किसी दिन अँगरेजी सैन्यकी कवायद देखनेके लिए निमंत्रण आता था, तो उसमें शामिल होनेके लिए निजामकी आज्ञा लेनी पड़ती थी । स्वामी सेवकके मध्यमें ऐसा संबंध रहना बहुत शोचनीय है । सर सालारजंगको पदभ्रष्ट करनेके लिए एक बार बहुत कोशिश की गई थी । कोशिश करनेवालोंने निजाम साहबसे कह दिया कि रेसिडेण्ट साहब दीवान साहबपर बहुत नाराज हैं । निजाम साहब सालारजंगपर इतने असंतुष्ट थे कि वे इस बातको सुनते ही सत्यासत्यका निर्णय किये बिना ही

रेसीडेण्ट सा० की कोठीपर पँहुचे और वातचीतके वहानेसे कहने लगे— " यदि आप दीवान सा० को नौकरीपरसे जुदा करनेकी दरख्वास्त देंगे, तो मैं उसका अनुमोदन कर दूँगा । " रेसीडेण्ट सा० सालारजंगके परम मित्र थे; वे निजामके मुँहसे इस वातको सुनकर वहुत चकित हुए, परंतु उन्होंने अपने मनका भाव उनपर प्रकट न होने दिया । उनको यह जानकर वहुत आश्चर्य्य हुआ कि जिस राजाके कल्याणके लिए दीवानने अपने जीवनको जोखममें डालने और अपार परिश्रम करनेमें कुछ भी कसर नहीं रक्खी है, उसके प्रति राजाके मनका भाव ऐसा दूषित है !

सर सालारजंग वहुत समयसे अँगरेजोंके परम मित्र थे । सार्वभौम राज्यकर्त्ता अँगरेजोंके साथ मित्रता रखनेमें हैदरावाद राज्यका परम कल्याण है, इस बातको वे अच्छी तरह जानते थे । इसके अनेक उदाहरण भी हैं । सन् १८५७ में जव भारतवर्षमें चारों ओर वलवेकी आग धधक रही थी, जव क्रम क्रमसे एकके वाद एक राजा वलवाइयोंमें मिलता जाता था, जव सिपाहियोंका एक दल वलवामें शामिल होनेसे दूसरा दल भी उनमें शामिल होनेके लिए आतुर होता था और जव इस वलवेकी आगमें अँगरेज स्त्री-पुरुष और उनके निराधार लड़के-वच्चे दावानलसे घिरे हुए मृगोंकी तरह भयसे व्याकुल होकर दिन विताते थे, जव निजामकी प्रजा अँगरेजोंको भारतवर्षसे निकाल वाहर करनेके लिए उन्मत्तसी हो रही थी और जो केवल निजाम सा० की आज्ञाकी राह देखती थी, इशारा मिलते ही वे वलवाइयोंमें शामिल होकर ब्रिटिश-फौजको नष्ट-भ्रष्ट कर डालनेके लिए व्यग्र हो रहे थे, ऐसी उत्कण्ठा और उन्मत्तताके समय एक मात्र दूरदर्शी और राजनीतिकुशल सर सालारजंगकी चित्तकी दृढ़ताके कारण निजामराज्यमें सर्वत्र शांति विराज रही थी । उन्होंने अपनी प्रजा और सेनाको वलवामें शामिल होनेसे रोक लिया । सैन्य और प्रजाके लोग

बलवामें शामिल होनेसे रुक अवश्य गये, परन्तु उनका यह रुकना ज्वालामुखी पहाड़की उस ज्वालाके समान था, जो बीच बीचमें सहसा फिर भड़क उठती है। यह अग्नि आगे चलकर हमेशाके लिए बुझ गई। इस काममें सर सालारजंगका जीवन दो बार शत्रुओंके हाथ संकटमें पड़ गया परंतु परमात्माकी कृपासे वे दोनों बार मृत्युमुखसे बच गये।

पहले कहा गया है कि सर सालारजंगने प्रजाको बलवेमें शामिल नहीं होने दिया। ज्वालामुखीकी ज्वालाको शान्त करनेके लिए उन्होंने अपने जीवनको संकटमय बना लिया था। सन् १८५७ के बलवेके पश्चात शीघ्र ही सन् १८५९ में हैदराबादके लोग बलवा करके उनको मार डालनेका उद्योग करने लगे। एक दिन दीवान सा० जब रेसीडेण्ट सा० के साथ निजामके महलसे बाहर निकले उस समय जहाँगीरखाँ नामक एक आदमीने उन्हें गोलीसे मार डालनेकी चेष्टा की, परंतु उनका भाग्य अच्छा होनेके कारण उस दुष्टका वार खाली गया। निशाना चूकते ही वह दुष्ट हाथमें तरवार लेकर उनकी ओर झपटा, परंतु उस समय वह कुछ कर न सका। सालारजंगके समीपी लोगोंने इस दुष्टके टुकड़े टुकड़े कर डाले।

इस दुर्घटनाके पश्चात् सन् १८६८ में सर सालारजंगकी हत्या करनेके लिए फिर प्रयास किया गया। एक दिन निजामके महलसे कचहरी जाते समय रास्तेमें एक दुष्टने उनपर दो बार बंदूकछोड़ी, परन्तु दोनों बार निशाना चूक गया। जब वह पकड़ा गया और जब निजाम साहबने उसे प्राणान्त दंडकी आज्ञा दी, तब सालारजंगने उसपर दया करके उसे प्राण-दंडके बदले कैदकी सजा देनेके लिए शिफारिस की, परन्तु निजाम साहबने उसे प्राणदंडसे मुक्त नहीं किया। सर सालारजंगने राजाके कल्याणके लिए अपना सारा सुख, आरोग्य और यहाँतक कि अपना जीवन भी अर्पण कर दिया, तो भी वे राजाके प्रीतिपात्र

न बन सके। इधर प्रजाकी हितसाधना करनेपर भी वे प्रजाके प्रीतिपात्र नहीं हुए, परन्तु तो भी वे राजा तथा प्रजा दोनोंकी भलाईके लिए प्रयत्न किया करते थे। ऐसी अवस्थामें जो पुरुष अपने कर्त्तव्यमार्गपर अचल रहता है, वह असाधारण पुरुष है। ऐसे पुरुष संसारमें विरले ही होते हैं।

सन् १८६९ ई० में वृद्ध निजाम अफजल-उल-दउल्लाकी मृत्युके पश्चात् नये निजाम सिंहासनपर बैठे। परन्तु उस समय उनके बालिग न होनेके कारण वाइसरायने सर सालारजंग और समसुलमुल्क-अमीर-इ-कबीरको नये निजामका वली नियुक्त किया। सर सालारजंग पहलेके समान राजहितके लिए तत्पर रहा करते थे। इस तरह बहुत काल बीत गया। सन् १८७५ ई०में हमारे मृत सम्राट् सप्तम एडवर्ड प्रिन्स आफ वेल्सकी हालतमें भारतकी यात्राके लिए आये थे। उस समय सर सालारजंगको उनसे मिलनेका अपूर्व लाभ मिला था और उनके सन्मान-पूर्वक बुलानेपर वे इंग्लेंडकी यात्रा भी कर आये थे। वहाँ जाकर अनेक उपायोंसे उन्होंने निजाम और निजामके राज्यके कल्याणके लिए प्रयत्न किया था। क्या स्वदेश और क्या परदेश, सब जगह तन मनसे उन्होंने निजाम राज्यका हितसाधन किया। राजनीतिविशारद सर सालार-जंगकी साधनाका प्रसंग बहुत मनोज्ञ और लाभदायक है।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी साधना।

दृढ़प्रतिज्ञ तथा सदाशय पुरुषोंको धन, मान, विषय, विलास, वैभव आदि कुछ भी कर्तव्य-मार्ग या कर्मक्षेत्रसे विचलित नहीं कर सकते मायाकी मोहिनी-मूर्ति उनको साधनाके आसनसे डिगा नहीं सकती। यदि इच्छाशक्ति प्रबल हो, संकल्प दृढ़ हो और प्रतिज्ञा अटल हो, तो समाजका दरिद्रसे दरिद्र अथवा खराब-से-खराब स्थितिमें पड़ा हुआ व्यक्ति भी दुःख, दारिद्र्य, अभाव, अर्धाशन,

उपवास या रोग शोक आदिकी उपेक्षा करके साधन-भूमिमें निर्भय मनसे रह सकता है। धनबल अथवा जनबल न होनेपर भी वह अपने चरित्रबल, प्रतिज्ञाबल और आत्मबलसे सब प्रकारकी प्रतिकूल शक्तियोंका पराभव करके अपना प्राधान्य स्थापित करनेमें समर्थ होता है। ऐसे मनुष्य प्रतिकूल शक्तियोंके समूहके साथ निरन्तर युद्ध करके अपना सर्वनाश तक स्वीकार कर सकते हैं, परंतु साधन-भूमिसे विचलित नहीं होते। दुःख और दरिद्रताकी डरावनी मूर्तिको देखकर वे भयसे व्याकुल नहीं होते, वे धनहीन होनेपर भी शक्तिहीन नहीं होते हैं। कर्मक्षेत्रमें ऐसे वीर पुरुष ही अनन्तकाल तक आदर पाते हैं। बंगालके गौरवस्वरूप महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इसी श्रेणीके पुरुष थे। वे कर्मयोगकी साधना करते थे। बाल्यावस्थामें जब वे विद्यामंदिरमें सरस्वतीदेवीकी साधना करनेमें तत्पर थे, उस समय उनको दरिद्रता भयंकररूपसे सता रही थी। परंतु बालक ईश्वरचन्द्रने अपने संकल्पकी दृढ़ता और निश्चयात्मक बुद्धिकी सहायतासे उक्त बाधाको पूर्ण रीतिसे पराजित किया। विद्यासागरने विद्यार्थी—जीवनमें जैसे जैसे दुःख सहन करके—प्रतिकूल अवस्थाओंमें रहकर विद्या संपादन की है, उसे सुनकर विस्मय और प्रशंसाके भावोंसे हृदय भर जाता है। एक ओर दरिद्रताके साथ संग्राम और दूसरी ओर विद्याप्राप्तिके लिए परिश्रम, ये दोनों बातें जगत्के अनेक महात्माओंके जीवनचरितोंमें पाई जाती हैं। उन्नीसवीं शताब्दीमें अमेरिकाके संयुक्तराज्यके प्रेसीडेंट महात्मा गारफील्डके जीवनमें भी इसी प्रकारकी घटनाका समावेश देखा जाता है। शारीरिक परिश्रमके बदले उन्होंने विद्या प्राप्त की थी। हमारे देशमें भी ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है। उद्दालक और उपमन्युकी कथा हालमें पौराणिक कथाके रूपमें बदल गई है। साम्प्रत देशमें शारीरिक श्रमकी सीमा नहीं है। शारीरिक श्रम करके मानसिक उन्नति करना बहुत प्रशंसनीय है। जिस दिन लोगोंकी

ऐसी प्रवृत्ति होगी, उसी दिनसे हमारे देशके कल्याणका प्रारंभ होगा-श्रमजीवी लोगोंमें ज्ञानका प्रकाश फैलेगा। यह होगा तो अवश्य, परंतु अभी वह समय बहुत दूर है। दरिद्र ब्राह्मणसंतान ईश्वरचन्द्र जब पहले कलकत्ते आये, तब उनको अपने हाथसे रसोई आदि करके विद्याभ्यास करना पड़ता था। उस समय कलकत्तामें रहना और अपने हाथसे तीन चार आदमियोंकी रसोई बनाना, फिर थके हुए शरीरसे रातको पढ़ना और अंतमें प्रशंसापूर्वक परीक्षामें पास होना यह कैसा कठिन कार्य्य है? इसे इस समयके विद्यार्थी सहज ही समझ सकते हैं।

उस समय कलकत्ता शहर कैसा था, इस संबंधकी दो चार बातें कह-देनेसे वहाँ रहनेके दुःखोंका कुछ आभास मिलेगा। उस समय कलकत्ता *आजकलके समान अच्छे अच्छे महलोंसे सुशोभित नहीं था।* रातको भी दीपावली उसे उज्ज्वल नहीं बनाती थी। बिजली अपनी चंचल-ताको त्याग करके लक्ष्मीनिवास-प्रासादावलीकी शोभा बढ़ावेगी, इसका किसीको खयाल ही न था। लोग गंगाके पवित्र जलको जानते थे, परंतु उसका जल तालाबमें स्वच्छ होकर लोगोंके दरवाजे-दरवाजे और घर घरके भीतर मिल सकेगा, इसका किसीको स्वप्नमें भी खयाल नहीं था। गैस और बिजलीकी बत्तियाँ ये तो विलासकी बातें हैं. परंतु आज-कल जिसे हम आरोग्यताके लिए अत्यंत आवश्यक समझते हैं, उसका भी अभाव था। आरोग्य-विद्याकी सहायतासे हालमें म्यूनीसिपालि-टीने कलकत्ताकी बहुत उन्नति कर डाली है, परंतु उस समय प्रायः यह कुछ नहीं था। राजमार्गोंमें भी गटरकी नलियाँ खुली रहती थीं और उनसे दुर्गन्धि निकला करती थी। रास्तोंमें जगह जगह कूड़ा कचरेके ढेर दिखाई देते थे। रातको सड़कोंपर कहीं कहीं-सो भी बहुत मंद-प्रकाश टिमटिमाता हुआ दिखाई देता था। उससे अंधकार घटता नहीं, बल्कि और भी भयंकर तथा गंभीर बन जाता था। घरके बाहर रास्तों अथवा घा-

टोंकी ऐसी दशा थी, और भीतरसे ये दो या तीन मंजिलके घर प्रवेश करनेपर बिना पानी कैसे सूखे कुए दिखाई देते थे। इन घरोंका अधिकांश भाग भाड़ेवालोंसे भरा रहता था। कबूतरखानेके समान द्वार-द्वारपर आदमी दिखाई देते थे। ऊपर रहनेवाले आदमी मौका मिलते ही कूड़ा कचरा आदि नीचे फेंका करते थे, इससे नीचे रहनेवाले लोगोंकी अवस्थाका ज्ञान सहज ही हो सकता है। इन सब दुःखोंके सिवा एक दुःख और भी था, पायखाना बहुधा नीचे रहते थे; उनके पास ही रसोईघर और सामने ही रहनेके घर होते थे। घर भी बहुत मलिन और बरसों बिना मरम्मतके ही पड़े रहते थे। घरकी दहलानमें सुन्दरवनमें उत्पन्न हुई लकड़ियोंके एक दो गट्ठे पड़े दिखाई देते थे। उनके ऊपर फटी-पुरानी एकाध गूदड़ी पड़ी रहती थी और उसपर भी सेरों धूल पड़ी रहती थी। लकड़ियोंके सामनेवाले अंधकारमय गृहमें लोग पीढ़ी दर पीढ़ीसे रहते आते थे। नबाबी अत्याचारोंसे डरे हुए बनियाँ-महाजन आदि अंतःपुर-निवासिनी-स्त्रियोंके समान घरहीमें घुसे रहते थे—किसी किसी दिन तो वे सूर्यदर्शन भी नहीं कर पाते थे। उनको कविकी इस उक्तिके अनुसार "दिनको माखी और रातको मच्छर" का भय बना रहता था। कहनेका सारांश यह है कि आजकलके कलकत्ता और उस समयके कलकत्तामें स्वर्ग-नरकका अंतर था—विशेषकर गरीबोंके लिए। बंगालप्रान्तके हरे हरे घास तथा धान्यसे सुशोभित और वृक्षलताओंसे वेष्टित ग्रामीण झोपड़ोंको त्यागकर तथा स्वच्छ जल-वायुको छोड़कर कलकत्तेके दुर्गन्धमय तंग घरोंमें रहना कैसा दुखदायक है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। बालक ईश्वरचन्द्र अपनी स्नेह-मूर्ति माता भगवती, प्रिय जन्मभूमि और अपने बाल्यसुहृदोंको छोड़कर पिताके साथ कलकत्ते आकर ऐसी ही किसी तंग तथा मलिन घरमें रहने लगे। वे दरिद्र संतान थे। उनके पिताकी दरिद्रताके विषयमें इतना ही

कहना बस है कि एक बार उनको आहारके अभावमें अपनी सर्वस्व और एक मात्र पीतलकी थालीको बेंच देना पड़ा था। इसके पश्चात् उनकी अवस्था अवश्य कुछ अच्छी हो गई थी—उनको महीनेमें दोसे लेकर दस रुपये तककी आमदनी होने लगी थी। ऐसी ही स्थितिमें ठाकुरदास अपने पुत्रको पढ़ानेके लिए कलकत्ते लाये थे। लोग कहा करते हैं कि "पुत्र माताके दोषसे रोगी और पिताके दोषसे मूर्ख होता है।" लोगोंका यह कथन अनेक अंशोंमें सच है। पिता ठाकुरदासके सद्गुणोंका प्रभाव पुत्र ईश्वरचन्द्रपर बहुत उत्तम पड़ा। ईश्वरचन्द्रमें अपने पिताके अनेक पवित्र लक्षण दिखाई देते थे। शास्त्रकार कहते हैं—"पुत्रे यशसि तोये च नराणां पुण्यलक्षणम्।" पुत्र, कीर्ति और जलसे मनुष्योंके पुण्यका लक्षण प्रकट होता है।

ठाकुरदासने पुत्र ईश्वरचन्द्रको संस्कृत कालेजमें भरती करा दिया। उस समय संकृत कालेजमें विद्यार्थियोंसे फीस नहीं ली जाती थी। हस्तलिखित ग्रन्थोंपरसे पढ़नेकी प्रथा थी। किसी तरह खाने-पीनेका प्रबंध कर लेनेसे प्रत्येक विद्यार्थी कलकत्तेमें रहकर पढ़ सकता था। इसी भरोसेपर ठाकुरदासने पुत्र ईश्वरचन्द्रको कलकत्तेमें पढ़ानेका साहस किया था। परंतु दुःखका विषय है कि वहाँ उनका खाने-पीनेका खर्च भी अच्छी तरह नहीं चलता था। विद्यासागरका जीवनचरित पढ़नेसे जाना जाता है कि उनको अनेक दिन केवल तालाबकी मछलियाँ खाकर ही बिताना पड़ते थे। उनको दिनमें दो बार अपने हाथोंसे रसोई बनानी पड़ती थी। उन्होंने कलकत्ता आनेके कुछ दिनोंके पश्चात् अपने अन्य भाइयोंको भी पढ़नेके लिए वहाँ बुला लिया। इनके लिए भी उन्हींको रसोई बनानी पड़ती थी। इसके सिवा भाइयोंके आ जानेके कारण घरके और काम भी बढ़ गये थे। सबेरे और शामको रसोई बनानेके सिवा उनको घरके और सब काम भी करना पड़ते थे। बाजा-

रसे सामान आदि लानेका काम भी इन्हींके जिम्मे था। वे १० से ४ बजेतक विद्यालयमें पढ़ते थे। दिनका अभ्यास पूरा करनेके लिए उनको रातको भी जागना पड़ता था। एक तो उत्कट परिश्रम करने और दूसरे तंग तथा मलिन घरमें रहनेसे बारंबार उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता था। परंतु ये सब असुविधायें उनकी साधनामें विघ्न नहीं डाल सकीं। उन्होंने अपने अभ्यासमें कभी कमी नहीं होने दी। अंगरेजीमें एक कहावत है—" Time is money " अर्थात् " समय ही धन है "। वास्तवमें दरिद्र विद्यार्थी धनके अभावसे जैसा दुःखी होता है, समयके अभावसे वह उससे भी अधिक दुःखी होता है। कमाना और पढ़ना इन दोनोंके लिए समयकी जरूरत है। धनके अभावसे उनका जो नुकसान होता है, उससे भी अधिक नुकसान उनको समयकी तंगीके कारण होता है। पढ़नेके लिए यह एक बड़ा विघ्न है। यदि शरीर तथा मन सबल न हो, तो इन विघ्नोंको दूर करना कठिन है। ईश्वरचन्द्रको धनके अभावके कारण समयका अभाव होता था। यदि वे रसोइया और नौकरको वेतन दे सकते, तो उनको सबेरे पढ़नेके लिए खूब समय मिलता। परंतु उस समय उनकी ऐसी स्थिति नहीं थी, इससे वे अपने हाथोंसे ही दो बार रसोई बनाते, पिता और छोटे भाइयोंकी सँभाल रखते और घरके सब काम किया करते थे। पढ़नेके लिए सबेरेका और रात्रिके प्रथम पहरका समय अच्छा होता है, परंतु वे इस समय कभी फुरसत नहीं पाते थे। उनकी ज्ञानतृष्णा बहुत प्रबल थी। शारीरिक सुखकी अपेक्षा मानसिक सुखकी चाह उनको बहुत अधिक थी। ज्ञानतृष्णाकी तृप्तिके लिए उन्होंने अपने आराम और निद्राके समयको बहुत कम कर दिया था। जिस समय अन्य विद्यार्थी परिश्रम करके आराम करते थे, उस समय ईश्वरचन्द्र अपने घरके कामोंसे छुट्टी पाकर पढ़ना प्रारम्भ करते थे। जिस समय सारी दुनियाँ प्रगाढ़ निद्रासे अचेतन

हो जाती थी, उस समय दरिद्र ब्राह्मण बालक मिट्टीके दीपकके क्षीण प्रकाशमें अभ्यास करनेमें तत्पर रहता था। सारे दिनके घोर-परिश्रमके पश्चात् देह सुस्त पड़ जाती है, थका हुआ शरीर आराम चाहता है, निद्रा आकर स्नेहमयी जननीके समान थके-पचे हुए माथेको अपने गोदमें लेनेकी चेष्टा करती है; परन्तु ईश्वरचन्द्र अपने शरीरकी उस थकावटकी उपेक्षा करके नींदके वश नहीं होते थे। जब ईश्वरचन्द्रकी विद्यार्थीअवस्थाकी ऐसी साधनाको देखते हैं, तब मन प्रशंसाके एक अपूर्व भावसे भर जाता है। वे इस बातको भलीभाँति जानते थे कि पढ़ना ही विद्यार्थियोंके लिए तप है। उस समय उनकी गणना उत्तम विद्यार्थियोंमें होती थी। वे संस्कृत कालेजसे बहुत प्रशंसाके साथ उत्तीर्ण हुए थे, और इस कारण उनको बहुत पुरस्कार तथा छात्रवृत्तियाँ मिली थीं। अंतमें उन्नीस वर्षकी उमरमें उनकी विद्यामंदिरकी साधना पूर्ण हुई। ईश्वरचन्द्र अब विद्यासागर हो गये।

इस तरह विद्यासागर महोदयका विद्यार्थी-जीवन समाप्त अवश्य हो गया, परन्तु वे एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकी नाई जीवनभर पढ़ने—लिखनेमें लगे रहे। संस्कृत कालेजके कोर्समें जो पुस्तकें थीं केवल उनके पढ़नेसे उनकी ज्ञानतृष्णा तृप्त नहीं हुई, इसलिए उन्होंने अपने शेष जीवनमें अनेक संस्कृत शास्त्र पढ़े—अनेक भाषायें सीखीं। उनका बृहत् पुस्तकालय देखनेसे जाना जाता है कि उन्होंने अपने अध्ययनके लिए कितने ग्रंथ संग्रहीत किये थे।

संस्कृत कालेजका अध्ययन समाप्त कर चुकनेपर कुछ दिनोंके बाद उनको फोर्ट विलियम कालेजमें ५०) रुपया महीनेकी अध्यापिकी मिली। उस समय सिविलियनोंको देशी भाषा तथा आइनकी शिक्षा देनेके लिए यह कालेज खोला गया था। अँगरेजोंको पढ़ानेके लिए अँगरेजी तथा देशी भाषाओंके उत्तम ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है। विद्यासागर महो-

-दय जो कुछ करते थे, उसे अच्छी तरह करते थे—यही उनकी प्रकृति थी। इसलिए साहबोंको उत्तम शिक्षा देनेके हेतु उन्होंने कालेज छोड़नेपर शिक्षक रखकर अँगरेजी और देशी भाषाका स्वतः उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। अँगरेजोंको पढ़ानेके लिए बंगला पुस्तकें न होनेके कारण उन्होंने वासुदेवचरित, वैतालपंचविंशति और जीवनचरित ये तीन पुस्तकें लिखी थीं। वासुदेवचरित मुद्रित नहीं था, शेष दो पुस्तकें छपी हुई थीं। बंगला-भाषाकी उन्नतिके लिए इन दो पुस्तकोंका लिखना ही उनका प्रथम प्रयास था। इस जगहपर कुछ दिनों तक काम करनेके पश्चात् उनको कालेजमें वाइस प्रिन्सिपालका पद मिला। कुछ समय तक काम करनेके पश्चात् विद्यासागर महोदयका प्रिन्सिपालके साथ किसी सुधारके काममें मतभेद हो गया और विद्यासागरकी बतलाई हुई रीति मान्य नहीं हुई; इसलिए उनको सन्मानरक्षाके कारण वह काम छोड़ देना पड़ा। फोर्ट विलियम कालेजमें जगह मिलनेके बाद उन्होंने अपने पूज्यपाद पिताको नौकरीसे जुदा करके घरपर रहनेकी व्यवस्था कर दी वे हर महीने उनके पास निर्वाह योग्य रुपये भेजा करते थे। शेष पैसोंसे वे कलकत्तेमें अपने कईएक संबंधियोंके साथ रहकर अपना खर्च चलाते थे। धनकी मुशीबत कैसी होती है, इसे विद्यासागर महोदय अच्छी तरह जानते थे। परन्तु वे दरिद्र होनेपर भी अपने सन्मानरक्षाके विषयमें अज्ञात नहीं थे। इसी लिए यह जाननेपर भी कि सन्मानरक्षा करनेसे फिरसे धनकी मुशीबत आ घेरेगी-उन्होंने वाइस प्रिन्सपालके पदको त्याग दिया। जो हो, इसके बाद कुछ दिनोंके पीछे उनको फोर्ट विलियम कालेजमें हेडक्लार्ककी जगह मिली और इसके बाद वे संस्कृत कालेजमें अध्यापकोंकी सहानुभूतिसे साहित्य-अध्यापक नियत हुए। विद्यासागरकी कर्त्तव्यनिष्ठा और कार्य्यतत्परतासे प्रसन्न होकर व्यवस्थापकोंने उनको अंतमें प्रिन्सिपाल बना दिया। उनको संस्कृत कालेजके प्रिन्सि-

पालका काम करनेके अतिरिक्त कुछ जिलोंकी इन्स्पेक्टरीका काम भी करना पड़ता था। इस समय उनकी मासिक आमदनी ५००) थी। तत्कालीन शिक्षाखातेके डाइरेक्टर सा० के साथ मतभेद पड़नेके कारण उन्होंने संस्कृत कालेजकी अध्यक्षताका काम छोड़ दिया। विलियम कालेजमें शिक्षकका काम करनेके समयसे संस्कृत कालेजमें प्रिन्सिपालका काम करनेतक उनका सरकारी नौकरीका समय गिनना चाहिए। प्रिन्सिपालके पदसे स्तीफा देते समय उन्होंने डाइरेक्टर सा० को अँगरेजीमें जो पत्र लिखा था, उसके कुछ अंशका मर्म हम पाठकोंको सुनाना चाहते हैं। स्वदेशवासियोंमें शिक्षा तथा सुधारका प्रसार करना उनके जीवनका मुख्य संकल्प था। उस पत्रमें उन्होंने अपने जीवनके एक संकल्पकी बात स्पष्ट की थी। स्वदेशवासियोंमें शिक्षा तथा सुधारका फैलाव करनेकी उनको सदैव आकांक्षा रहा करती थी। यद्यपि यह सच है कि संस्कृत कालेजके अध्यक्षका पद छोड़नेपर उनका प्रत्यक्ष रीतिसे शिक्षाखातेसे संबंध छूट गया, परंतु बंगला-भाषामें ग्रंथ रचकर उन्होंने अपने जीवनके शेष समयको शिक्षा-सुधारमें ही बिताया। उन्होंने स्वदेशवासियोंमें शिक्षा तथा सुधारका फैलाव करनेके लिए जो महान् तथा पवित्र व्रत ग्रहण किया था, उसे अपने जीवनके साथ ही समाप्त किया। उन्होंने अपने उस पत्रमें इसी व्रतका उल्लेख स्पष्टरीतिसे किया था।

अभीतक उनके जीवनके संकल्पकी बातें उन्हींके मुँहसे सुनी हैं। अब उनके जीवनचरितमें न लिखे हुए कामोंके भीतर उस संकल्पकी साधना देखना चाहिए। विद्यासागर महोदय सच्चे साधक थे। वे अपने जीवनमें कभी अपने इष्टमंत्रको नहीं भूले। कहा जाता है कि जब वे फोर्ट विलियम कालेजमें पढ़ाते थे, तब एक दिन लार्ड हार्डिंग्ज कालेज देखनेके लिए आये थे। उस समय विद्यासागरके साथ उनकी बहुत बातचीत हुई थी। प्रसंगानुसार जब संस्कृत शिक्षाके

विषयमें बात निकली, तब विद्यासागरने कहा था कि "संस्कृत कालेजमें शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियोंपर गवर्नमेंट जितना चाहिए, उतना उपकार नहीं करती, उनको अपनी आजीविका चलानेके लिए सरकारकी ओरसे कुछ काम नहीं मिलता—इस कारण संस्कृतकी ओरसे लोगोंकी आस्था घटती जाती है और इससे विद्यार्थियोंकी संख्या भी दिन–पर–दिन घटती जाती है। सरकार इसके लिए कुछ प्रबंध करे तो अच्छा हो।" इसके पश्चात् लार्ड हार्डिंग्जने बंगालमें १०१ संस्कृत पाठशालायें खोली थीं और इन शालाओंके लिए संस्कृत कालेजमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको शिक्षक नियत करनेकी आज्ञा दी थी। इस महान् कार्य्यकी मूलमें, सुन्दर महलकी नींवकी तरह विद्यासागर महोदय छुपे हुए थे। अर्थात् इसके मूलकारण वे ही थे। इस कार्यके द्वारा विद्यासागर महोदयने प्रत्यक्ष और गौण रीतिसे संस्कृत-शिक्षा तथा बंग-भाषाका बड़ा उपकार किया था। तत्पश्चात् जब वे संस्कृत कालेजमें अध्यक्षके पदपर नियुक्त हुए, तब उन्होंने उसकी शिक्षा-पद्धति सुधारी। बहुमूल्य हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थोंको छपवाया, सहजमें समझमें आनेवाली व्याकरण रची, इत्यादि अनेक तरहके कामोंसे उन्होंने देशमें संस्कृत-शिक्षाके मार्गको सुगम बना दिया। इसी प्रकार शिक्षा-विभागमें इन्स्पेक्टरके पदपर नियुक्त होकर बंगालके भिन्न भिन्न स्थानोंमें पाठशालायें स्थापित करके देशमें शिक्षाप्रचारके काममें बहुत सहायता पहुँचाई थी। इस तरह पाठशालायें स्थापित कराके वे चुपचाप नहीं बैठ रहे। उस समय बंग-भाषामें अच्छी शिक्षा देनेके लिए पाठ्य-पुस्तकोंकी बहुत कमी थी। फोर्ट विलियम कालेजमें अध्यापिकी करते समय उन्होंने विदेशियोंकी शिक्षाके लिए दो एक ग्रन्थ लिखे थे, अब उन्होंने बालकों तथा नवयुवकोंके लिए भी दो एक पुस्तकें लिखीं। इस तरह उन्होंने ही लोगोंमें ज्ञानपिपासा—विद्याभिरुचि उत्पन्न की और उन्होंने ही उत्तम उत्तम पुस्तकें रचकर उसका पोषण किया।

भयसे भरे हुए साधनक्षेत्रमें साहसकी जरूरत है। विद्यासागरके चरितमें साहसकी विपुलता दिखाई देती है। वे जिस कामको अपना कर्त्तव्य समझते थे, उसके लिए अपने स्वार्थको बलि कर देते थे। संस्कृत कालेजके प्रिन्सिपालके साथ मतभेद पड़ जानेके कारण जब वे अपने निश्चित कर्त्तव्यके अनुसार कार्य नहीं कर सके, तब उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी। इसी प्रकार दूसरी बार भी जब डाइरेक्टर साहबके साथ उनका मतभेद हुआ तब उन्होंने अपना सन्मान रखने और अपना कर्त्तव्यपालन करनेके लिए ५००) माहवारकी नौकरी छोड़ दी थी। इसके पहले वे एक बड़े व्यापारमें लगे हुए थे। व्यापारको अच्छी तरह चलानेके लिए दूसरे विषयोंकी आवश्यकता होनेपर भी धनकी विशेष आवश्यकता थी। यह व्यापार और कुछ नहीं, केवल विधवा-विवाहका प्रचार था। विधवा-विवाहके प्रचारके लिए शास्त्रमतकी आवश्यकता, ब्राह्मण-पंडितोंके अनुमोदनकी आवश्यकता, और हिन्दू-समाजकी स्वीकारिताकी आवश्यकता थी। परन्तु इन सब कामोंके लिए पैसेकी सबसे पहले और अधिक आवश्यकता थी। विद्यासागरके पास कुछ अधिक पूँजी तो थी ही नहीं; उस समय उनको बड़ी तनख्वाह अवश्य मिलती थी, परंतु कुटुम्बके पोषण दीन-दुखियोंकी सेवा और अनेक परमार्थके कामोंमें वह खर्च हो जाती थी। इससे उनका संचित धन इतना नहीं था कि वे जिसके भरोसे नौकरी छोड़ देनेका साहस करते। जब उन्होंने नौकरी छोड़ी, तब कलकत्तामें उनकी गणना लोकमान्य पुरुषोंमें होती थी, वे उस समय अनेक आश्रित लोगोंके पालनकर्त्ता थे, अनेक राजा महाराजाओंके मित्र थे, और अनेक साहब सूबाओंके विश्वासपात्र तथा सलाहकार थे। देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुष उनके साथ पहचान और भेंट करनेके लिए आतुर रहा करते थे और उनके साथ मित्रता रखनेमें अपना गौरव समझते थे। कलकत्तेमें जिसकी ऐसी प्रतिष्ठा

थी, उसने किस भरोसेपर ऐसी बड़ी नौकरी छोड़नेका साहस किया ? यह प्रश्न लोगोंके मनमें अपने आप ही उठ सकता है। विद्यासागरके मित्र बंगालके लेफ्टनन्ट गवर्नर हेलडी साहबने उनसे भी यही प्रश्न किया था। इसका उत्तर विद्यासागर महोदयने जो दिया था वह उनके योग्य ही था। उन्होंने कहा था कि, जब एक मुट्ठी चाँवलके दानोंमें गरीब ब्राह्मणका निर्वाह हो सकता है, तो फिर पैसेके लिए क्यों अपनी इज्जत खोऊँ ? यदि मानसिक बल न होता, तो कौन मनुष्य उनकी जैसी हालतमें इस तरह कह सकता है ? वे निर्लोभ और आसक्तिहीन पुरुष थे। वे विषय-वैभवमें रहकर भी उसमें डूबे नहीं थे। वे अपने सुख-भोगोंके लिए आवश्यकताओंको नहीं बढ़ाते थे। साधारण खुराक और कपड़ोंमें ही वे संतुष्ट रहते थे। उनकी वास्तविक आवश्यकता पाव सेर चाँवलोंमें ही पूरी हो जाती थी और इसी कारण धनकी ओर तिरस्कार प्रकट करके उन्होंने उक्त वचन कहे थे। वे एक असाधारण पुरुष थे। साधारण लोगोंको यदि उनके समान धन, मान, यश, पद और मित्र मिलें, तो वे सैकड़ों अपमान और उपालंभ सहकर भी नौकरी कायम रक्खें। ये लोग अवस्थाके दास हुआ करते हैं। उनको ऐसा भरोसा रहता है कि लोग अवस्थाकी पूजा करते हैं—पैसेकी गुलामी करते हैं—अधिकारके सामने सिर झुकाते हैं; इसी लिए वे सुख-सम्पत्ति, मान-मर्य्यादा और मित्रता आदिके मूलकारण—रूप अर्थ (धन) के हेतु विवेकबुद्धि, कर्त्तव्यज्ञान और अपने आत्म-सन्मान आदिको विसर्जन कर सकते हैं। इसीमें साधारण और असाधारण पुरुषोंका भेद दिखाई देता है। इसी लिए हम पहले कह चुके हैं कि विद्यासागर महोदय एक असाधारण पुरुष थे।

नाना तरहकी पुस्तकोंके प्रचारसे उन्होंने शिक्षा-प्रचारका मार्ग सुगम किया, सरकारी नौकरीमें रहकर अनेक विद्यालय खुलवाये, परंतु इसके

सिवा वे अपने पैसेसे देशमें उच्चशिक्षा प्रचारके लिए, जो प्रयत्न कर गये हैं, उसकी तुलना नहीं हो सकती है। मिशनरी कालेजोंको छोड़कर प्राइवेट कालेज स्थापित करनेके काममें वे ही प्रथम मार्गदर्शक थे। मेट्रोपोलीटन इन्स्टीट्यूशन नामक कालेज स्थापित होनेके पहले देशमें उच्चशिक्षाका प्रचार बहुत मंद गतिसे होता था। सरकारी कालेजोंमें १२) मासिक फीस देकर पढ़नेका सामर्थ्य सबमें नहीं था। मिशनरी कालेजमें भी फीसका बोझा कुछ कम नहीं था। इसके सिवा मिशनरी कालेजमें शिक्षा पानेके लिए अपने बालकोंको भरती कराना अनेक मा-बाप पसंद नहीं करते थे; उनको भय रहता था कि कहीं पीछे वे क्रिश्चियन न हो जायँ। साधारण लोग ही उच्चशिक्षाके लिए इन सब बातोंके अभावोंका अनुभव करते थे। परंतु विद्यासागर महोदयके पहले किसीने भी ऐसा कालेज स्थापित करनेका साहस नहीं किया। वर्तमान समयमें शिक्षित पुरुषोंके द्वारा जो जो कालेज चल रहे हैं, उन सबमें मेट्रोपोलीटन इन्स्टीट्यूशन कालेज ही पहला है।

प्रथम मार्गदर्शकको जो जो कठिनाइयाँ भोगनी पड़ती हैं, उन सब कठिनाइयोंका सामना विद्यासागरको करना पड़ा था। कलकत्ता विश्वविद्यालयके तत्कालीन अधिकारियोंने विद्यासागरके स्थापित किये हुए कालेजको विश्वविद्यालयमें सहज ही शामिल नहीं किया—उसे यूनीवर्सिटीमें शामिल करानेके लिए विद्यासागरको विशेष प्रयत्न करना पड़ा था। प्रारंभमें अधिकारियोंने उस कालेजमें एफ. ए. तककी क्लासें खोलनेकी अनुमति दी थी। पीछे परीक्षाका परिणाम अच्छा निकलनेके कारण विद्यासागर महोदयकी उपस्थितिमें ही वह प्रथम श्रेणीका कालेज कर दिया गया। इस कालेजको हर तरहसे उन्नत करनेके लिए विद्यासागरने खूब परिश्रम किया। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने कालेजकी एक पाई भी कभी अपने उपयोगमें नहीं लगाई। ऐसी निःस्वार्थता साधारण लोगोंमें नहीं दिखाई देती है।

बंगालके साहित्य, शिक्षण और ज्ञान विस्तारके इतिहासमें विद्यासागर महोदयका पद बहुत ऊँचा है। सर्वसाधारणमें शिक्षाका विस्तार करनेके लिए उन्होंने जो व्रत ग्रहण किया था, उसे कैसे कैसे उपायोंसे और कितने विघ्नोंको उल्लंघन करके पूरा किया, इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर लिखा गया है। विद्यासागरकी कीर्ति पवित्र और निर्मल थी। उनकी पवित्र कथाको सुनकर भारतीय युवक कर्मक्षेत्रमें कर्त्तव्यरूपी व्रतके कष्टोंको भूल जावेंगे और नये नये उद्योग और साहससे अपने कर्त्तव्यव्रतको पूर्ण करनेके लिए प्रयत्न करेंगे।

* * * *

सर सैयद अहमदकी साधना।

बहुधा लोग कहा करते हैं कि नौकर-पेशावालोंको सार्वजनिक कामोंमें सम्मिलित होने तथा उसमें हाथ बटानेका बहुत कम अवसर मिलता है—उनसे किसी बड़े कार्यकी आशा रखना एक तरहसे असंभवित है। इसमें संदेह नहीं कि नौकर-पेशावालोंको बहुत अड़चनें और असुविधायें रहती हैं और समय भी उनको बहुत कम मिलता है, किन्तु इस कारण वे अपनी आजीविका चलानेके सिवा ज्ञान, धर्म और जाति हितके लिए कुछ भी नहीं कर सकते, ऐसा कहना कहाँ तक सत्य और युक्तिसङ्गत है, सो हम नहीं कह सकते। जिनका संकल्प अस्थिर होता है और जिन्हें अपने कार्यपर विश्वास तथा प्रेम नहीं होता, उन्हींके मुँहसे ऐसे शब्द निकला करते हैं। हमारे देशके शिक्षित लोगोंमें से अनेक लोग सरकारी या अन्य किसी तरहकी नौकरी करते हैं। सरकार प्रजाका दुःख दूर करने और उसकी उन्नति करनेके लिए बहुत कुछ प्रयत्न करती है, परंतु इस विषयमें सरकारकी अपेक्षा शिक्षित लोगोंका ही उत्तरदायित्व अधिक है। यदि शिक्षित लोग अपनी नौकरीके अतिरिक्त अन्य लोकहितकारी कामोंसे दूर रहें, तो देशकी क्या दशा हो? वे आजीविका चलानेके लिए जो उचित

-समझें वह अवश्य करें, किन्तु समयपर देश और जातिकी भलाई करनेके लिए भी प्रस्तुत रहें। यदि वे चाहें तो सभी उचित उन्नतिके कामोंमें सहायक हो सकते हैं। हम इस विषयका उज्ज्वल उदाहरण सर सैयद अहमदके जीवनमें पाते हैं। सर सैयद अहमदने ३७ वर्ष तक सरकारी नौकरी की। वे साधारण शिरस्तेदारीके पदसे सदरआलाके पदपर पहुँचे थे। इससे जाना जाता है कि उन्होंने अपने नौकरीके समयको येन-केन प्रकारसे पूरा नहीं किया-किन्तु उन्होंने अपने काममें पूर्ण कीर्ति भी पाई थी। एक छोटे पदसे बड़े पदपर पहुँचनेके लिए कितने परिश्रम और समयकी आवश्यकता होती है, इसे प्रायः सभी विचारशील पाठक समझ सकते हैं; परंतु इसके सिवा उन्होंने अपनी जातिकी उन्नति और भारतीय मुसलमानोंमें-विशेषकर वायव्य प्रान्तके मुसलमानोंमें-किस प्रकार शिक्षाका प्रचार किया, इसका जानना भी आवश्यक है।

सन् १८३८ ई० में अपने सम्बन्धियोंके अप्रसन्न हो जानेके कारण उन्होंने दिल्लीकी फौजदारी अदालतमें नौकरी प्रारंभ की। पहले वे शिर-स्तेदार हुए और चार वर्षोंके पश्चात् मुन्सिफ हो गये। इसी समयसे उन्होंने साहित्यसेवा प्रारंभ की। सन् १८४७ ई० में उन्होंने दिल्लीकी प्राचीन कीर्तिके विषयमें एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तकका पहले इंग्लेडमें जैसा चाहिए वैसा आदर नहीं हुआ, पीछे जब फ्रेंच-भाषामें इसका अनुवाद हुआ, तब लोगोंकी दृष्टि उसपर पड़ी। इस ग्रंथको रचनेके उपलक्षमें वे रायल एशियाटिक सोसायटीके सभासद बनाये गये। सरकारी नौकर होनेके कारण वे एक जगह नहीं रह पाते थे। सन् १८५५ ईस्वीमें बिजनौरके सदरअमीनके पदपर उनकी बदली हुई। इसके कुछ दिन पश्चात् अर्थात् सन् १८५७ ई० के मई महीनेमें सिपाहियोंका बलवा-शुरू हुआ। इस बलवेके समय वे बिजनौर ही में थे। उनकी राजभक्ति और बुद्धिमत्ताके कारण वहाँके अँगरेज पुरुष, स्त्रियों और बच्चोंकी जीव-

न-रक्षा हुई थी। यदि वे न होते तो बलवाइयोंके हाथसे अँगरेजोंकी कैसी दुर्दशा होती, इसका विचार करते ही शरीर काँप उठता है। सर सैयद अहमदने उस समय जो असाधारण बुद्धिमत्ता, साहसिकता और राजभक्ति प्रकट की थी, उसका इस जगह संक्षेपमें वर्णन करना कुछ अप्रासंगिक न होगा। मई महीनेके मध्यकालमें बिजनोरमें बलवेकी खबर फैली। इस बुरे समाचारको सुनते ही वहाँके अँगरेज अपनी रक्षा करनेकी चिन्ता करने लगे। बिजनोरमें अँगरेजोंकी साधारण जिलापुलिसके सिवा और कोई फौज वगैरह नहीं थी। कलेक्टर साहबने सैयदकी सहायतासे एक सौ पठानोंकी फौज इकट्ठी की। इन लोगोंके द्वारा कुसमयमें उनको अपनी रक्षा करनेका भरोसा हो गया। बलवेकी खबर मिलनेके पश्चात् कुछ दिनोंके भीतर बलवाइयोंने बिजनोर और उसके आसपासके गाँवोंको घेर लिया। सरकारी खजानेको बलवाइयोंके हाथमें जाते देखकर सर सैयद अहमदने कलेक्टर सा० की अनुमतिसे सब रुपया कुआमें फिंकवा दिया। इसके पश्चात् एक दिन बलवाइयोंकी एक टोली आई। इस टोलीके दो मुखियोंको कलेक्टर सा० और सैयद अहमदने अच्छी तरह समझाया, वे बिजनोरमें कुछ उपद्रव किये बिना ही दिल्लीकी ओर चले गये। परंतु बिजनोरके निवासियोंका भय दूर नहीं हुआ। कुछ दिनोंके बाद फिर सुननेमें आया कि नवाब मुहम्मदखाँ कुछ शिक्षित सेनाको लेकर बिजनौरपर चढ़ाई करनेके लिए आनेवाला है। इसी समय कलेक्टर सा० को एकत्रित पठान-सैन्यकी विश्वास-घातकताकी बात भी विदित हुई।

अँगरेजोंको जो कुछ थोड़ा-बहुत आशा-भरोसा था वह भी चला गया। भयंकर भविष्यके बादल छा गये। नवाब मुहम्मदखाँ सैन्य सहित बिजनौरमें आ पहुँचा। जिस बाड़ेमें शहरके समस्त अँगरेज पुरुष, स्त्री और बालक इकट्ठे रहते थे, वह बाड़ा नवाबकी सेनासे घिर गया। विपत्ति

बढ़ने लगी । कब क्या होगा, इसी चिन्तामें सब व्याकुल हो रहे थे । इसी समय एक गुप्त मार्गद्वारा सर सैयद अहमद अँगरेजोंसे मिले । उनके लिए, वहाँसे भाग जाना यही एकमात्र कर्त्तव्य और उपाय था । इस उपायको काममें लानेके लिए सब लोग अपनी युक्तियाँ बतलाने लगे, परंतु जब एक भी युक्ति काममें आती न दिखाई दी, तब सर सैयद अहमदने दूतके वेषसे खाली–हाथ नबावसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की । यह बात सबको पसंद आई, परंतु हथियार रखकर खाली-हाथ शत्रु-ओंकी छावनीमें जानेकी किसीने सलाह नहीं दी । परंतु सर सैयद अहमदने एक न मानी, वे खाली-हाथ शत्रुओंकी छावनीकी ओर चल पड़े । रास्तेमें पग पगपर पहरेवाले उनको रोकने लगे । दो पहरेवालोंसे छुटकारा पा जानेपर भी जब वे अंतमें आगे नहीं बढ़ सके, तब उन्होंने वहाँसे नबावको सुनाई दे, इस तरह जोरसे बोम मारकर कहा—" मैं एक कर्मचारी हूँ और निःशस्त्र होकर नबावसे मिलनेकी प्रार्थना करता हूँ । " नबावने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और पास आनेकी अनुमति दे दी । तीक्ष्णबुद्धि सर सैयद अहमदने नबावको रीतिपूर्वक सलाम करके अपने उद्देश्यको एकांतमें कहनेकी प्रार्थना की । नबाव अपने साथि-योंका मन प्रसन्न रखने और उनको मान देनेके उद्देश्यसे बोला— " तुमको जो कुछ कहना हो, सबके सामने स्पष्ट कहो, क्योंकि हम सब भाई भाई हैं, इनसे छिपाने योग्य मेरे पास कोई बात नहीं । " इसके बाद सर सैयद अहमदके समझानेपर नबाव उनकी बातें सुननेके लिए एकान्तमें उठ आया । सर सैयद अहमदने नबावको अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर अँगरेजोंके प्राण न लेने और उनके भाग जानेमें सहा-यता देनेके लिए प्रार्थना की । उन्होंने यह भी कहा कि यदि आप इस बातको स्वीकार करेंगे, तो हम सारा खजाना आपके हाथमें सौंप देंगे । उन्होंने बातों-ही-बातोंमें यह भी प्रकट कर दिया कि अँगरेजोंको मार

ढालना कुछ हँसी-खेल नहीं है, इसके सिवा यदि अंतमें उनकी विजय हुई, तो उनकी हत्याका फल बहुत भयंकर हो उठेगा। नवाबने बुद्धिमान्की तरह सर सैयद अहमदके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया और गाड़ी घोड़ा आदिके द्वारा अँगरेजोंके भाग जानेमें मदद दी। इस तरह सर सैयद अहमदके प्रयत्नसे अँगरेजोंकी प्राणरक्षा हुई और वे बिजनौरसे किसी अन्य सुरक्षित स्थानमें पहुँचा दिये गये। सैयद साहब अपने भाग्यपर भरोसा रखकर उसी जगह रहने लगे। कमिश्नर सा० ने जबतक स्वतंत्र और स्थायी प्रबंध न हो जाय, तबतक उस जिलेका कामकाज चलानेके लिए सर सैयद अहमदको लिखा। इसके बाद एक महीना भी पूरा न होने पाया था कि बिजनौरमें फिर तूफान उठ खड़ा हुआ। एक हिन्दू सेनाने एक मुसलमानी गाँवको नष्ट कर डाला, इससे मुसलमानोंमें बलवा मच गया। सर सैयद अहमदको इस बलवेका मूल कारण समझकर लोग उनके प्राणोंके ग्राहक बन गये। वे किसी तरह एक शहरसे दूसरे शहर और एक गाँवसे दूसरे गाँवमें छिपते भागते हुए डेढ़ महीनेमें अपनी जन्मभूमि-दिल्लीमें जा पहुँचे। दिल्ली, इनके पहुँचनेके पहले ही लुट चुकी थी, परंतु अब भी वह आपद्-शून्य नहीं हुई थी। बलवाई लोग तितर-बितर हो गये थे, परंतु उनके जुल्मोंके चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते थे। उत्तम उत्तम भवनोंसे सुशोभित दिल्ली नगरी आज स्मशान बन गई थी। सर सैयद अहमद अपनी जन्मभूमिकी ऐसी दुर्दशा देखकर दुखी तो थे ही, इसपर उन्होंने अपनी माको भी घर नहीं पाया। वे अँगरेजोंके प्रीतिपात्र और विश्वस्त नौकर थे, इस कारण बलवाइयोंने उनका घर बड़ी निर्दयताके साथ लूटा था। उनकी वृद्धा माता, एक घोड़ेवालेकी घासकी गंजीमें छुपकर बची थीं। सर सैयद अहमदने बहुत खोजके उपरान्त माताके दर्शन पाये।

इस प्रकार बलवेकी आपत्ति दूर हुई। धीरे धीरे देशमें शांति फैलने

लगी । सैयद अहमदकी बिजनौरसे गाजीपुरको बदली हो गई । यह बदली अच्छे मुहूर्त्तमें हुई । बहुत दिनसे सैयद साहबके मनमें अपने देश और जातिमें ज्ञान प्रसार करनेकी अभिलाषा चली आती थी । गाजीपुरमें आकर उन्होंने एक विज्ञान-सभा स्थापित की । इस समय उनके जीवनचरितके लेखक कर्नल ग्राहमके साथ उनकी पहिचान हुई । कर्नल साहब उनको अपने मित्र नहीं, सहोदरकी तरह मानते थे । इसी लिए हमने लिखा है कि उनकी गाजीपुरमें बदली अच्छे मुहूर्त्तमें हुई थी । सैयद अहमद स्वतः अँगरेजी भाषा नहीं जानते थे, किन्तु अँग्रेजी शिक्षाकी आवश्यकता और उपकारितापर उनका पूर्ण विश्वास था। अँगरेजी भाषा अनेक रत्नोंकी खानि है । उनको दृढ़ विश्वास था कि यदि अँगरेजीमें लिखे हुए प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंका अनुवाद देशी भाषाओंमें किया जाय और उनका प्रचार सर्वसाधारणमें फैले, तो देशका बड़ा कल्याण हो । जिस समय वे गाजीपुरमें थे, उस समय अनेक अँगरेजी ग्रन्थोंका अनुवाद उनकी सलाहसे उर्दू-भाषामें हुआ था । सभाका स्थान पीछे गाजीपुरसे अलीगढ़में बदल दिया गया । इस सभाके द्वारा उर्दू-भाषाकी खूब पुष्टि हुई । भूगोल, इतिहास, अर्थनीति, गणित, सायन्स, खेती और शिक्षासम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंका उर्दूमें अनुवाद किया गया । अतएव उर्दू-भाषा सैयद साहबकी बहुत आभारी है ।

राजभक्त सर सैयद अहमद अँगरेजोंके परम हितैषी थे, इसका प्रमाण हमको पहले ही मिल चुका है । राजकर्मचारी होकर राजा और प्रजाकी भलाईके लिए राजनीतिकी आलोचना करनेमें वे कभी पीछा पैर नहीं देते थे । वे सत्साहसी और सत्यवादी थे । अँगरेजोंके चरित्रबलमें उनका बड़ा विश्वास था । वे जानते थे कि सच्चा अँगरेज न्याय और सत्यकी मर्यादाको कायम रखता है; उन्होंने सर्वसाधारणमें जो ओजस्विनी वक्तृतायें दी थीं, उनमें और उनके अन्य कामोंमें उनके ज्वलन्त

विश्वासका प्रमाण पाया जाता है। वे अपने देशकी उन्नतिके लिए सदैव प्रयत्नशील रहा करते थे। राजा और प्रजाके बीच सौहार्द रखनेकी उनकी पूर्ण इच्छा थी। इसके लिए उन्होंने स्वतः और दूसरोंके द्वारा प्रयत्न किया। गवर्नरकी कौन्सिलमें प्रजाके प्रतिनिधियोंको स्थान मिलने और कानून बनाते समय उनकी सम्मति लेने तथा इस देशके सुख-दुःखकी बातें विलायती पार्लमेण्टतक पहुँचानेके उद्देश्यसे उस समय प्रतिनिधि-सभाकी स्थापना हुई थी—इन सब कामोंके लिए वे पहले ही से प्रयत्न कर रहे थे। चालीस पैंतालीस वर्ष पहले सर सैयद अहमदने जो भाषण दिये थे, उनसे जाना जाता है कि वे किस प्रकार अंतःकरणपूर्वक राजा और प्रजाका राजनैतिक कल्याण चाहते थे।

जैसी सुख-सम्पत्ति और मान-मर्यादा मिलने तथा जैसे कामोंके करनेसे लोग अपनेको भाग्यशाली—गौरवशाली समझते हैं, सर सैयद अहमदने उन सब कामोंको किया, परंतु उनसे उनको संतोष नहीं हुआ। जिस उमरमें हमारे देशके लोग कर्मक्षेत्रसे मुक्त हो जाते हैं, उस उमरमें वे दूने उत्साहसे अपने निश्चित कर्मकी साधनमें लगे हुए थे। हम जिस समयकी बात लिख रहे हैं, उस समय उनकी उमर ५२ वर्षकी थी। सन् १८६९ ई० के अप्रैल महीनेमें सर सैयद अहमद अपने दो लड़कोंको साथ लेकर विलायत-यात्राके लिए निकले। केम्ब्रिजमें अपने दोनों लड़कोंकी शिक्षाका प्रबंध करना और उस इतिहासप्रसिद्ध कालेजकी कार्यपद्धति देखकर वायव्यप्रान्तमें मुसलमानोंके लिए वैसा कालेज स्थापित करना, उनकी यात्राका मुख्य उद्देश्य था। इंग्लैंडमें वे भारतप्रसिद्ध कई अँगरेजोंसे मिले। वहाँ उनको अच्छा सन्मान मिला। वहींपर उन्होंने स्वरचित मुहम्मद पैगम्बरके जीवनचरितका पहला भाग प्रकाशित किया, वे एक धर्मनिष्ठ मुसलमान थे, परंतु उनमें धर्मान्धता नहीं थी। वे अपने मुसलमान भाइयोंसे बुरे संस्कारोंको छोड़कर सच्चे इस्लाम धर्मकी सेवा करनेके लिए बारम्बार कहा करते थे।

सन्१८७० में विलायत-यात्रा करके वे काशीमें अपने कामपर पुनः उपस्थित हुए। इसके कुछ समयके पश्चात् उन्होंने 'मुसलमान-समाज सुधार' नामक एक पत्र निकालना प्रारंभ किया। मुसलमानोंको बुरे संस्कारोंसे बचाने तथा उनको स्वधर्मपरायण बनाकर वर्तमान शिल्प, विज्ञान और साहित्य-चर्चा द्वारा अपनी उन्नति करनेका मार्ग बतलाना ही इस पत्रका मुख्य उद्देश्य था। इस पत्रके द्वारा मुसलमान समाजको बहुत लाभ पहुँचा। परंतु प्रारंभमें उनको बहुत निन्दा सहन करना पड़ी। अधिकांश मुसलमान उनकी बुराई प्रकट किया करते थे। मक्काके मुल्ला और मौलवी उनको 'विधर्मी' 'नास्तिक' आदि विशेषणोंसे अलंकृत किया करते थे। वे ईश्वरके निकट उनकी मृत्यु-याचना ही नहीं करते थे, किन्तु अनेक लोग ईश्वरीय कोपकी परवा न करके उनको मार डालनेका भय दिखानेवाले पत्र भी लिखा करते थे। परंतु सैयद् अहमद् इन सब बाधाओंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा करते और अविचल चित्तसे अपनी साधनामें लगे रहते थे। अपने देश और अपनी जातिकी कल्याणकी इच्छा कभी क्षणभरके लिए भी उनके मनसे दूर नहीं हुई।

विलायतसे अपने देशमें आनेके पश्चात् अवसर मिलते ही उन्होंने अपने निश्चित 'अलीगढ़—एँग्लोओरियंटल कालेज' की स्थापनाके लिए भिन्न भिन्न स्थानोंसे पैसा इकट्ठा करना शुरू कर दिया। सन् १८७६ ई० में लगभग ३० वर्षतक प्रशंसापूर्वक नौकरी करके उन्होंने पेन्शन ले ली। अब उनको अधिक समय मिलने लगा और अब वे अपने सारे समयको तन मनसे कालेजकी स्थापनामें लगाने लगे। उन्होंने कुछ शिक्षित मुसलमानोंकी एक सभा स्थापित की। किन किन उपायोंके द्वारा मुसलमानोंमें ज्ञान और शिक्षाका प्रसार भलीभाँति हो सकता है, इसका निश्चय करनेके लिए ही इस सभाका जन्म हुआ था। क्या कारण है

कि मुसलमान लोग सरकारी स्कूलों तथा कालेजोंमें जितना चाहिए उतने आग्रहसे–उत्साहसे अपने लड़कोंको भरती नहीं करते हैं ? क्या कारण है कि वे लोग अपने लड़कोंको पाश्चात्य कारीगरी और विद्यासे विमुख रखते हैं ? सभाने पहले इन प्रश्नोंको हल करनेका प्रयास किया। इस विषयपर उत्तम निबंध लिखनेवालेको उन्होंने तीन पुरस्कार देनेके लिए विज्ञापन निकाला। इन सब निबंधों और उनसे संबंध रखनेवाली अन्य बातोंपर विचार करके अलीगढ़ ऍंग्लो-कालेजकी शिक्षाके विषय और पद्धति निर्धारित की गई। पहले थोड़े विद्यार्थियोंको लेकर कालेजका स्कूल-विभाग खोला गया। इसके पश्चात् सन् १८७७ई०में लार्ड लिटनने अलीगढ़में आकर सर सैयद अहमदके कीर्तिमंदिररूपी ऍंग्लोओरियंटल कालेजके भवनकी नींव डाली। मुसलमानोंमें अँगरेजी शिक्षाके सम्बन्धमें अनेक तरहके बुरे संस्कार होनेके कारण प्रारंभमें उन्होंने सर सैयद अहमदको कालेज स्थापित करनेमें कुछ भी सहायता नहीं दी, इतना ही नहीं, प्रत्युत वे लोग इनके काममें बाधायें भी उपस्थित करने लगे। जिस समय बंगालमें अँगरेजी शिक्षा अच्छी तरह प्रचलित हो गई थी, विश्वविद्यालय स्थापित हो गया था और उसके द्वारा सहस्रों विद्यार्थी डिग्रियोंसे विभूषित होते थे, उसी समय सन १८५८ ई० से ७८ तक वायव्यप्रान्तमें सर सैयद अहमद, शिक्षा और ज्ञानके प्रसारके लिए बहुत प्रयत्न कर रहे थे। हिंसक जानवरोंसे परिपूर्ण और कटीले झाड़ोंसे आच्छादित वनभूमिको साफ करके उसपर सुन्दर महल बनानेमें जितना परिश्रम करना पड़ता है, उतना ही परिश्रम सैयद अहमदको अपनी जातिकी हिंसा और द्वेषसे परिपूर्ण तथा भ्रान्तसंस्कारयुक्त मनोभूमिपर ज्ञान-भवन खड़ा करनेके लिए करना पड़ा था। जब वायव्यप्रांतमें पाश्चात्य ज्ञानकी महिमा वर्णन करके सर सैयद अहमदने शिक्षाप्रसारके लिए प्रथम प्रयत्न किया था, उस समय उस प्रांतकी अवस्था

बहुत शोचनीय थी। लोगोंकी अभिरुचि अँगरेजी शिक्षाकी ओर बहुत कम थी। सरकारी स्कूलोंमें देशी भाषाकी शिक्षा ग्रहण करनेमें भी लोग संकोच करते थे। शालाओंका निरीक्षण करनेके लिए जब कोई सरकारी कर्मचारी गाँवोंमें आता था, तो बहुधा लोग यह कहकर उससे दूर भाग जाते थे कि कोई ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाला आया है। जिन हिन्दू कुटुम्बोंसे इन स्कूलोंमें लड़के पढ़नेको आते थे उनको अनेक समय पड़ोसियोंकी निन्दा और कभी कभी जुल्म भी सहन करना पड़ते थे। साधारण पाठशालाओंमें भरती करके लड़कोंको शिक्षा दिलवाना मुसलमानी रीति-रिवाजके विरुद्ध गिना जाता था। श्रीमान् और अमीर लोग अपने लड़कोंको मौलवी रखकर घरपर ही पढ़ाते थे। मध्यम स्थितिके गृहस्थ बहुत करके संतानोंको शिक्षा देना ही आवश्यक नहीं समझते थे। आलसी होकर नाच-तमाशोंमें दिन बिताना बुरा नहीं गिना जाता था। साधारणतया मुसलमान लोग कलमके बदले तलवार पकड़ना ही पसंद करते थे। उस समय भी राजवंशी होनेका वृथा अभिमान उनके मनमें भरा हुआ था। यदि कोई मनुष्य किसी मौल-वीके पास पाश्चात्य शिक्षाकी चर्चा करता था तो वह शीघ्र ही तिरस्का-रके साथ नाक-भौं सकोड़कर और छातीतक लटकती हुई लम्बी दाढ़ीको हाथसे हिलाकर कहता था कि,—सरकारी स्कूलोंमें धर्मकी शिक्षा नहीं दी जाती है—निमाज नहीं पढ़ाई जाती है—मुसलमानी धर्मपर श्रद्धा भक्ति रखना नहीं सिखाया जाता है और सबसे अधिक लड़कोंके ईसाई हो जानेका भय रहता है। मुल्ला और मौलवी पुरानी प्रथाके पक्षपाती थे। इन लोगोंका मत ही सर्वसाधारणका मत था। उन लोगोंकी युक्तियाँ और मत भ्रमपूर्ण थे और पाश्चात्य शिक्षा धर्मानुकूल तथा लाभकारी थी, यह बात समझानेके लिए सर सैयद अहमदको जो जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं, उन सबका वर्णन पहले किया जा चुका है। इन सब

कष्टों, आपत्तियों और निन्दावाक्योंको सहन करके, अपनी जाति-कल्याणकी इच्छाको हृदयमें रखकर वे उसकी साधना इतने दिनसे करते आते थे। भारतवर्षके वाइसरायके हाथसे एँग्लोओरियंटल कालेजकी नींवका पत्थर रखवाकर, उन्होंने मानो अपनी जातिकल्याण विषयक इच्छाको पत्थरसे बने हुए एक मजबूत किलेके भीतर रखकर अपनी चिन्ताके भारको कुछ अंशमें हलका किया था। उनके स्थापित कालेज-पर राजकर्मचारियोंकी कृपादृष्टि रहती थी। इसके पश्चात् कालेजके मकानके लिए सैयद साहब पैसा इकट्ठा करनेके लिए निकले। वे भरत-खंडके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें गये—एक राज्यसे दूसरे राज्यमें भ्रमण किया। अनेक हिन्दू राजाओं और मुसलमान नबावोंने उनको इस कार्यमें यथेष्ट सहायता दी। सुखी लोगोंकी आलंकारिक भाषामें कहें, तो उन्होंने भीखकी झोलीको काँधेपर लटकाकर और समस्त सुख—भोगोंको तिलाञ्जलि देकर कालेजके लिए पैसा इकट्ठा किया। उन्होंने स्वदेशी विदेशी सभीसे पैसेकी सहायता माँगी। जब वे हैदराबाद (निजाम) गये तब वहाँके लोगोंने उनके सन्मानके लिए—उनके आतिथ्यके लिए बहुत बड़ी तैयारी की। सर सैयद अहमदने इस बातको सुनकर कहा कि मेरा आतिथ्य-सन्मान करनेसे मुझे जितना सन्मान और प्रसन्नता प्राप्त होगी उससे कहीं अधिक सन्मान और प्रसन्नता आतिथ्य सन्मानके लिए इकट्ठी की हुई रकमको कालेज-फंडमें दे डालनेसे होगी। भाविक पुरुषोंकी भाषामें इसीका नाम ही मुँह आये ग्रासका परित्याग करना है। इस तरह अकेले हैदराबादसे ही उन्होंने तीस हजार रुपया इकट्ठा किया। वृद्धावस्थामें अविश्रान्त परिश्रम करके कालेजके लिए हिन्दू, मुसलमान, इसाई, पारसी आदि सब धर्मके लोगोंसे उन्होंने रुपया संग्रह किया था। उनके जीवनमें ही कालेजके लिए भवन प्रस्तुत हो गया था। यह कालेज विशेषकर मुसलमानोंकी शिक्षाके लिए स्थापित किया गया था, परंतु उसमें

सब धर्म और सब जातिके विद्यार्थी पढ़ते थे; किसीके लिए रुकावट नहीं थी। मुसलमानोंकी शिक्षाके लिए ऍंग्लोओरियंटल कालेज आदर्श-रूप समझा जाता है। नवीनता और प्राचीनताका अपूर्व सम्मेलन वहाँ दिखाई देता है। मुल्ला और मौलवियोंके मनोवांछित अरबी धर्मशास्त्र और न्यायकी शिक्षाके साथ साथ पाश्चात्य साहित्य, गणित और विज्ञानकी उत्तम शिक्षाकी व्यवस्था उस कालेजमें दिखाई देती है। मुसलमान विद्यार्थियोंकी धर्म-शिक्षाके लिए निमाजकी व्यवस्था भी की गई है। जिन छात्रावासोंकी प्रथा साम्प्रत बंगालमें अधिकताके साथ प्रचलित होनेके कारण हम उसे भाग्यशाली समझते हैं, उसकी आवश्यकता सर सैयद् अहमद्ने बहुत समय पहले ही अनुभव करके कालेजके साथ उसकी स्थापना की थी। सर सैयद्के कामोंमें उनकी दूरदर्शिता चमकती हुई दिखाई देती थी। इस कालेजकी स्थापनाके कुछ समय पश्चात् काशीमें इसी ढँगका एक कालेज हिन्दुओंके हितके लिए खोला गया था।

लार्ड रिपनके शासनकालमें भारतवर्षकी शिक्षा-पद्धति सुधारनेके लिए एक ऐजुकेशन-कमीशन नियुक्त किया गया था। भारत-हितैषी डाक्टर हंटर इस कमीशनके प्रमुख थे। सरकारने अनेक लोकमान्य और शिक्षा-तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंको इस कमीशनका सभासद् बनाया था। बंगालके गौरवस्वरूप माननीय श्रीयुत आनंद्मोहन बसु और सर सैयद् अहमद्के भाग्यशाली पुत्र जज्ज मामूद् भी इस कमीशनके सभासद् थे। भारतीय प्रजाकी और विशेषकर मुसलमानजातिकी शिक्षाके विषयमें सर सैयद् अहमद्ने खूब अध्ययन किया था। अपने विचार और अनुभव कमीशनके समक्ष प्रकट करनेके लिए उनको कमीशनकी ओरसे आमंत्रण भेजा गया था। उन्होंने अपने शिक्षासंबंधी अनेक अनुभव कमीशनके सम्मुख प्रकट किये थे। इस कमीशनमें उनके पुत्ररत्न जज्ज मामूद् सभासद्के आसनपर बैठकर सभाकी शोभा और सैय्यद् साहबके गौरव

तथा आनंदकी वृद्धि करते थे। पिता-पुत्रका वह अपूर्व सम्मेलन बहुत मनोहर दिखाई देता था। वह दृश्य इस समय भी कल्पनाशक्तिकी सहायतासे मनमें आनंद उत्पन्न करता है। इस पवित्र संगमपर हम सर सैयद अहमदकी साधनाके प्रसंगको पूर्ण करते हैं और आशा रखते हैं कि कर्मक्षेत्रमें भारतवर्षके युवक सर सैयद अहमदके गौरव और भाग्यके अभिलाषी होकर उनके उज्ज्वल आदर्शको ग्रहण करेंगे।

* * * *

तारानाथ तर्कवाचस्पतिकी साधना।

पंडित-कुल-तिलक तारानाथ तर्कवाचस्पतिने हिन्दू-संसारकी अँधाधुँधीके समय स्वधर्मकी रक्षा की थी; वे पूर्ण आस्था और श्रद्धाके साथ नित्य नैमित्तिक कर्मकांड करते थे; प्राचीन कालके ऋषि-मुनियोंकी तरह शुद्ध, सरल और सात्विक जीवन बिताते थे; केवल संस्कृत-भाषाका अध्ययन करके उन्होंने वर्तमान समयमें यश, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि पाई है। इस स्थलपर हम उनके जीवनकी साधनाका वर्णन करना उचित समझते हैं।

पंडित तारानाथ बाल्यावस्थासे ही अध्ययनमें तत्पर रहते थे। उन्होंने आठ वर्षकी उमरमें, ग्रामीण पाठशालामें जो कुछ सिखाया जाता है, वह सब सीख लिया था। इसके पश्चात् उन्होंने पिताके पास मुग्धबोध व्याकरण पढ़ना प्रारंभ किया। वे बहुत मन लगाकर पढ़ा करते थे। दो वर्षके भीतर ही उन्होंने पिताके पाससे व्याकरण, कोश और काव्यका अध्ययन करके इन सब विषयोंमें अपनी योग्यता खूब बढ़ा ली थी। कुछ समयके पश्चात् पंडित तारानाथ एक अद्वितीय वैयाकरणी गिने जाने लगे। उन्होंने घरपर ही व्याकरणका पाठ पढ़ना प्रारंभ किया और काव्यादिका अध्ययन घरपर ही किया। यदि वे चाहते तो अपनी इतनी विद्यापर ही संतोष करके और अपने ही ग्राममें एकाध संस्कृत पाठशाला खोलकर बिना किसी तरहका कष्ट उठाये अपना

जीवन व्यतीत कर सकते थे । परंतु इस तरह जीवन बिताना उनको पसंद नहीं था । उनकी ज्ञानतृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । परंतु अपने गाँव वा उसके आसपास किसी ग्राममें उनकी ज्ञानतृष्णाको तृप्त करनेवाला कोई गुरु नहीं था । अतएव वे अच्छी तरह ज्ञानसम्पादन करनेकी इच्छासे किसी अन्य उपयुक्त स्थानको जानेकी चिन्ता करने लगे । अंतमें उन्होंने कलकत्ताके सुप्रसिद्ध सरकारी संस्कृत-कालेजको सरस्वती देवीकी आराधनाका योग्य स्थल ठहराया । परंतु उस समय कलकत्ताकी दशा बहुत शोचनीय थी । एक तो कलकत्तेमें रहनेसे आरोग्यतामें हानि पहुँचनेकी संभावना रहती थी, इसके सिवा लोगोंकी ऐसी धारणा भी थी कि उस स्थानमें रहनेसे युवक उच्छृंखल और विधर्मी बन जाते हैं; तारानाथके पिताकी भी ऐसी ही धारणा थी और इसी लिए वे तारानाथको कलकत्ता भेजनेमें आनाकानी करते थे । सौभाग्यवश इसी समय स्वनामधन्य रामकमलसेन महाशय जो उस समय कलकत्ता संस्कृत-कालेजके संपादक थे तारानाथके घर आये । उन्होंने तारानाथकी विद्या, बुद्धि और ज्ञानाभिरुचिको देखकर उनके पितासे उनको संस्कृत-कालेजमें भेजनेकी राय दी । उन्होंने उनको यह भी आश्वासन दिया कि हमारी देखरेखमें रहनेसे तारानाथके उच्छृंखल तथा विधर्मी होनेकी कुछ भी आशंका नहीं रहेगी; इतना ही नहीं, यदि ऐसा बुद्धिमान् बालक संस्कृत सीखेगा तो आगे एक प्रसिद्ध पंडित हो जायगा । तारानाथके पिताने उनकी बात मान ली और पुत्रको कलकत्ते भेज दिया । तारानाथ १८ वर्षकी उमरमें कलकत्ते पहुँचे और सन् १८३० के मई मासमें उन्होंने संस्कृत-कालेजके अलंकार-वर्गमें प्रवेश किया । क्रम क्रमसे अलंकार, साहित्य, वेदान्त, ज्योतिष और न्यायशास्त्रमें वे पारंगत हुए । तारानाथ एक तो प्रतिभाशाली और परिश्रमी थे, इसके अतिरिक्त उन्होंने जिन अध्यापकोंके पास इन सब शास्त्रोंका अध्ययन किया था,

वे उस समयके उन उन शास्त्रोंके अद्वितीय पंडित थे। तारानाथने जय-गोपाल तर्कालंकारके पास काव्य, योगध्यान मिश्रके पास ज्योतिष, नाथू-राम शास्त्रीके पास वेदान्त और नेमचन्द्र शिरोमणिके पास न्याय पढ़ा था। उत्तम शिक्षा और उत्तम गुरु मिलना बड़े भाग्यकी बात है। इस विषयमें तारानाथ वास्तवमें बड़े भाग्यशाली थे। क्या धर्म, क्या ज्ञान, सभी विषयोंमें सद्गुरुका प्रभाव अतिशय प्रबल होता है। गुणग्राही सज्जन गुरुके गुणसे अपनेको गौरवान्वित समझते हैं। पुत्र उत्तम गुरुके पास अध्ययन करता हो, तो इससे पिताको बड़ा आनंद होता है। यूनानके सम्राट्, महावीर सिकन्दरके पिता, फिलिफको जब अपने पुत्रकी शिक्षाके लिए सुप्रसिद्ध पंडित ऐरीस्टाटल मिला तब उसके आनंदका ठिकाना न रहा—वह अपनेको भाग्यशाली समझने लगा। जब सिकंदरका जन्मसमाचार सुनकर ऐरीस्टाटल महाराज फिलिफके समीप जाकर पुत्र-लाभके उपलक्षमें उनको बधाई देने लगा, तब महाराज फिलिफने उससे कहा था—"हे तर्कशास्त्र-विशारद; पुत्रजन्मका समाचार सुनकर मैं प्रसन्न हुआ, परंतु यह जानकर कि वह आपकी जीवित दशामें उत्पन्न हुआ है और आप-ही-से शिक्षा ग्रहण करेगा—और भी अधिक प्रसन्न हुआ हूँ।" जयगोपाल, नाथूराम और नेमचन्द्र आदि प्रसिद्ध पुरुषोंकी जीवित-दशामें तारानाथने जन्म लिया था और उन्हींके पास अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया था; इसीसे तारानाथके पिताके आनंद और गौरवकी तुलना महाराज फिलिफके आनंदके साथ की जा सकती है।

तारानाथ अध्यापकोंके प्रति बहुत भक्ति रखते थे। अध्यापक भी उनपर बहुत स्नेह और दया प्रदर्शित करते थे। तारानाथके पढ़नेके समय अधिकांश पुस्तकें हस्तलिखित थीं। वे दिनमें तो प्रायः पढ़नेमें लगे रहते थे और रातको दूसरोंकी पुस्तक परसे अपने लिए पुस्तकें लिखा करते थे। वर्तमानकालके विद्यार्थियोंको उनसे बहुत शिक्षा ग्रहण करनी

चाहिए। साम्प्रत देखनेमें आता है कि पठन-पुस्तकके कठिन शब्दोंका अर्थ अपनी पुस्तकमें लिख लेनेके कामको विद्यार्थी लोग बहुत मिहनतका काम समझते हैं। उन्हें इस बातका खयाल ही नहीं आता है कि कुछ काल पहले विद्यार्थियोंको अपनी सभी पाठ्य-पुस्तकें अपने हाथसे लिख-कर तैयार करनी पड़ती थीं। जो हो, तारानाथ एक तो स्वभावतः विद्यासे प्रेम रखते थे, इस कारण वे सदैव पढ़नेमें तत्पर रहा करते थे, इसके अतिरिक्त पुस्तकें छपी न होनेके कारण पुस्तकोंकी नकल करनेसे उनको लिखनेका भी अच्छा अभ्यास हो गया था। वे जितनी जल्दी लिख सकते थे, उतना ही अच्छा भी लिख सकते थे। उनके हस्ताक्षर मोतीकी मालाके सदृश सुन्दर दिखाई देते थे। वे विद्यार्थी-अव-स्थामें ही अधिक मानसिक श्रम करते थे। पिछली उमरमें अनेक संस्कृत ग्रन्थोंके प्रचार और उनके रचे हुए 'वाचस्पत्यभिधान' नामक महान् कोशके संकलनके सामर्थ्यका चिह्न उनकी विद्यार्थी अवस्थामें ही दिखाई देता था। उनकी स्मरणशक्ति बहुत प्रबल थी। पढ़ी हुई पुस्तककी वे अविराम आवृत्ति कर सकते थे। समग्र १८ पर्व महाभारत उन्हें कंठ था। महाभारतको कंठ करनेके संबंधमें कहा जाता है, कि महाभारतको उन्होंने अभ्यासकी पुस्तकोंकी तरह नहीं पढ़ा, केवल प्रूफ संशोधन करते समय उसे पढ़ा था,। विद्यार्थी अवस्थामें उनको महाभारतका प्रूफ शोधनेका अवसर इस तरह मिला था कि जब वे नेमचन्द्र शिरो-मणिके पास न्याय पढ़ते थे, उस समय एशियाटिक सोसायटीके उद्योगसें समग्र महाभारत छपा था। अनेक देशकी हस्तलिखित प्रतियाँ देखकर भिन्न भिन्न पाठोंसे मिलान करके महाभारतका प्रूफ देखनेका काम शिरोमणि महाशयको सौंपा गया था। जब इस महान् कार्यको शिरोमणि महाशयने अपने सिरपर लिया, उस समय उनकी वृद्धावस्था थी। उस अवस्थामें ऐसे श्रमसाध्य और उत्तरदायित्वके कामको भलीभाँति चलाना उनके लिए

बहुत कष्टदायक हो गया था। तारानाथने गुरुभक्तिकी प्रेरणासे गुरुदेवका श्रम हलका करनेके लिए इस कामको अपने हाथमें ले लिया था और बहुत होशियारीके साथ उस कामको पूरा किया था। अंतमें जब ग्रंथ छपकर शिरोमणि महाशयके नामसे प्रकाशित हुआ, तब उससे गुरुका यश मलिन नहीं हुआ, बल्कि और भी अधिक उज्ज्वल हो गया।

संस्कृत-कालेजमें अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करनेके उपरान्त सन् १८०३ में तारानाथको तर्कवाचस्पतिकी पदवी मिली। संस्कृत-कालेजमें पढ़नेका समय पूरा अवश्य हो गया, परंतु अब भी उनका विद्यार्थी-जीवन पूर्ण नहीं हुआ। वे काशी गये। वेदमंत्रोंसे गूंजित और वरुणा, असी तथा गंगा इन तीन नदियोंसे घिरी हुई पुण्यभूमि वाराणसी चिरकालसे संसारमें संस्कृत-चर्चाके लिए प्रसिद्ध है। इस पुण्यभूमिमें अनेक तत्त्वदर्शी और संसारसे विरक्त सिद्धपुरुष निवास करते हैं। वे शास्त्रोंकी अनेक गूढ़ बातें जानते हैं। उनके पाससे सत्य ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे तारानाथने काशी यात्रा की। भाग्यकी अनुकूलताके कारण उनपर एक परमहंसकी कृपा हो गई। उन्होंने परमहंसके पाससे न्यायके प्रसिद्ध ग्रन्थ खंडनखंडखाद्यका अध्ययन किया। तत्पश्चात् अन्य गुरुओंके पाससे महाभाष्यसहित पाणिनी व्याकरण, भाष्यसहित वेद और वेदान्त, जैमिनीकृत मीमांसादर्शन, कपिलप्रणीत सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र आदि पढ़कर वे अपने घर लौट आये।

तारानाथने काशीमें अपने विद्यार्थी-जीवनको समाप्त किया। अब प्राचीन रीतिके अनुसार उनके पढ़ानेका समय आया। वाचस्पति महाशयने अध्यापक वंशमें जन्म लिया था, वे उस वंशके एक उत्तम रत्न निकले। अध्यापक होकर विद्यादान करनेकी उनकी हार्दिक इच्छा थी, क्योंकि इससे पहले कानूनकी परीक्षामें प्रशंसापूर्वक पास होनेपर भी उन्होंने सदर अमीनका पद स्वीकार नहीं किया था। संस्कृत-शिक्षा और

शास्त्रके प्रचारके लिए उनका जन्म हुआ था । उसी कार्यको पूर्ण करक वे अपना जन्म सार्थक कर गये ।

अपने जन्मस्थान कालनामें आकर उन्होंने एक पाठशाला खोली । इसके पहले ही उनके पाण्डित्यकी चर्चा देशके विद्वानोंमें फैल चुकी थी । उनके कीर्ति-सौरभसे मुग्ध होकर अनेक प्रान्तोंके विद्यार्थी उनके घर आने लगे । प्राचीन प्रथाके अनुसार वे विद्यार्थियोंको अन्न और विद्याका दान दिया करते थे ।

वाचस्पति महाशयके पूर्वपुरुष बहुत भाग्यवान् थे । उनकी सांसारिक व्यवस्था भी एक तरहसे अच्छी थी । देवपूजाकी आमदनीके अतिरिक्त लोगोंके नित्य-नैमित्तिक क्रियाकांडसे—पाण्डित्य—व्यवसायसे भी उनको बहुत आमदनी थी । इस आमदनीसे ही वे पाठशालाका खर्च चलाने लगे । संस्कृत पढ़ानेवाले अध्यापक इसी तरह अपनी पाठशालाओंका व्यवसाय चलाते थे । साम्प्रत अनेक पाठशालाओंको सरकारी सहायता मिलती है । छात्रवृत्ति और पुरस्कारद्वारा विद्यार्थियों तथा अध्यापकोंका उत्साह बढ़ाया जाता है, इसके लिए सारी हिन्दू प्रजा सरकारका आभार मानती है । परन्तु उस समय पाठशालाके अध्यापक विद्यार्थियोंसे किसी तरहका शुल्क या फीस नहीं लेते थे; उनको राजाके पाससे वेतन भी नहीं मिलता था; इतना ही नहीं प्रत्युत अनेक विद्यार्थियोंके अन्न-वस्त्रका व्यय भी वे स्वतः उठाते थे । हिन्दूजाति जबतक कर्मकांड करती रही, तबतक ब्राह्मणसमाजका उदर-पोषण अच्छी तरह होता रहा । हिन्दू राजा और धनवान् लोग देवपूजन तथा वेदाध्ययनके निमित्त दान देकर मंदिर, मठ तथा पाठशालाओंकी स्थापना और रक्षा किया करते थे । मध्यम श्रेणीके गृहस्थ नित्य-नैमित्तिक देवकार्य और पितृकार्योंमें दान देते थे । इन सब कारणोंसे संयमी और अल्पसंतोषी अध्यापकों और विद्यार्थियोंका पालन होता था और वे धर्म, जाति तथा सार्वजनिक कल्याणके

लिए प्रयास किया करते थे। ब्राह्मण लोकसमाजके शिक्षक और व्यवस्थापक थे। मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदिके मतानुसार समस्त संस्कार और प्रायश्चित्त आदि होते थे, मिताक्षराके दायभागके अनुसार वारसोंके धनकी बँटवारेकी व्यवस्थाकी जाती थी। इन सब कामोंके कर्त्ता ब्राह्मण ही थे, परंतु वे इन सब कामोंके बदले कभी किसीसे पैसा नहीं लेते थे। वर्तमानकालमें इन सब बातोंमें हेरफेर होता जाता है। अनेक कारणोंसे समाजमें अन्धाधुन्धी चल रही है। अब अध्यापकोंको हिन्दूजातिसे वह सहायता नहीं मिलती, जो मिलती है, वह बिल्कुल नगण्य है। तीक्ष्णबुद्धि वाचस्पति महाशय समाजके क्रम क्रमसे होनेवाले इस हेरफेरको ध्यानमें रखते आते थे। पाठशाला स्थापित करनेके पश्चात् हिन्दूसमाजके बल भरोसे उसका कार्य अच्छी तरह चलाना कुछ सहज नहीं था। वे प्रतिभावान् पुरुष थे। परमेश्वरने उनको उत्तम आरोग्य प्रदान किया था। वे स्वाभाविक रीतिसे परिश्रमी थे। इस कारण वे स्वावलम्बन और परिश्रमके सौन्दर्यको भलीभाँति जानते थे। अतएव उन्होंने स्वतः उपार्जन की हुई विद्याके समान स्वतः पैदा किए हुए धनसे विद्यार्थियोंके पालनका संकल्प किया। यह प्रवृत्ति उनके अध्यापक होनेपर भी उनको व्यापारमें प्रवृत्त करनेका मूल कारण थी। अपने देशकी कलाकुशलता तथा व्यापारकी उन्नति करना भी उनका गौण उद्देश्य था। इन सब कारणोंसे ब्राह्मण होनेपर भी उन्होंने वैश्यवृत्ति ग्रहण की थी।

हम प्रत्येक समय उद्देश्य और उपायके भेदको नहीं समझते। हम अपने आरंभ किये हुए कामोंमें एकके बदले दूसरेको ही मुख्य मान लेते हैं और दूसरोंका विचार करते समय भी बहुत करके इसी प्रकार भूल करते हैं। वाचस्पति महाशयके कामके संबंधमें उस समयके अनेक भ्रमयुक्त विचारोंका वर्णन किया गया है। परंतु जो विचारशील मनुष्य उनके

कामोंको पूर्वापर विचार करके देखते हैं अथवा जिन्होंने सच्चा इतिहास सुना है, वे उनके कपड़े अथवा अन्य व्यवसाय करनेके उद्देश्यका विचार करते समय भूल नहीं करते। विद्यादान उनके जीवनका मुख्य संकल्प था, इस बातको वे कभी नहीं भूले थे। वाचस्पति महाशयके दैनिक जीवनका विचार करनेसे उनके जीवनका उद्देश्य इससे भी अधिक स्पष्टतासे जाना जाता है। साधारण लोग भोग विलासके लिए धन पैदा करते हैं। परंतु वाचस्पति महाशयके सम्बन्धमें ऐसा नहीं कह सकते। वे जितेन्द्रिय और श्रद्धावान् हिन्दू थे। उनके खान-पान तथा रहन-सहनमें विलासिताकी गंध भी नहीं रहती थी। गंगाका पवित्र जल उनके पीनेका पानी था। उनका विशाल शरीर निर्मल धोती, स्वच्छ उपरना और सफेद यज्ञोपवीतसे शोभायमान रहता था। विविध विद्याओंकी आवास भूमिरूप मस्तकपर शिखाके अतिरिक्त और कोई मंडन नहीं था। स्वधर्ममें दृढ़ विश्वास, उपास्य देवतामें अचल भक्ति और कर्मकांडमें पवित्र और परम आस्थाका चिह्न उनके पुण्य-चरितसे प्रकटित होता था। प्राचीन ऋषि या ऋषितुल्य आदर्श-ब्राह्मण ज्ञान, संयम और परोपकारिताके कारण भरतखंडके हिन्दुओंके मनोराज्यमें चिरकालसे प्रतिष्ठा पा रहे हैं। उनके पुण्यप्रभावसे आज उनके दूर वंशजोंके सामने ब्राह्मणके सिवा दूसरी सब जातियाँ विद्या, धन और अधिकारमें बड़ी होनेपर भी संस्कारवश अपना मस्तक झुका-कर उनसे आशीर्वाद माँगती हैं। वाचस्पति महाशयके चरितमें प्राचीन ऋषियोंके समान ज्ञान, संयम, पवित्रता और निष्ठाका प्रभाव पूर्णरीतिसे दिखाई देता है। इस समय देशका बड़ा दुर्भाग्य कहना चाहिए कि आदर्श ब्राह्मणोंकी संख्या दिनपर दिन घटती जाती है।

कालनामें रहनेके कुछ दिन पश्चात् ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके अतिशय अनुरोधसे वाचस्पति महाशयने संस्कृत कालेजकी अध्यापिकी स्वीकार कर ली। पहले उन्होंने इस कामको हाथमें लेनेसे व्यापारमें धक्का पहुँचनेकी

आशंका की थी; परंतु विद्यासागरने उनको समझाया कि कलकत्ता ही उसके लिए उपयुक्त स्थान है। विद्यावलोकनके लिए अथवा व्यापार–धंधेके लिए सब तरहके सुभीते एक कलकत्तेहीमें मिल सकते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यासागरने आवश्यकतानुसार उनको सहायता देनेका भी वचन दिया। इस प्रकार कलकत्ता फिर उनका कर्मक्षेत्र बन गया। वे कालेजमें पढ़ाते और अन्य समयमें अपने व्यवसायसम्बन्धी काम किया करते थे। इस तरह सन् १८४० से १८६१ तक उनका कार्यक्रम चलता रहा। सन् १८६२ में उनको व्यापारमें एक लाखसे अधिक रुपयोंका घाटा हुआ। वे इस घाटेको पूर्ण करनेमें असमर्थ हुए और उनको अपना व्यापार–धंधा बंद कर देना पड़ा। अब उनकी दृष्टि दूसरी ओर पड़ी और मानो अमंगलसे मंगलकी सूचना हुई।

कलकत्ता आनेके पश्चात् वाचस्पति महाशयने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंके प्रचार करनेका प्रयत्न शुरू किया। उन्होंनें रघुवंश और कुमारसंभव काव्यको मल्लिनाथकी टीकासहित छपाकर प्रकाशित किया। यह उनका पहला प्रयत्न था। इसके पश्चात् उन्होंने व्याकरणसंबंधी अनेक पुस्तकें रचीं। सिद्धान्तकौमुदीकी सरला नामकी टीका भी उन्होंने इसी समय बनाई थी। इस टीकासे पाणिनीय व्याकरणका समझना बहुत सहज हो गया। जिस जगह संस्कृत भाषाका आदर है, उस जगह वाचस्पतिकृत सरला नाम्नी सिद्धान्तकौमुदीकी टीकाका भी आदर है। इतने दिनोंतक अन्य कामोंमें फँसे रहनेके कारण वे संस्कृत ग्रंथोंके प्रचारमें पूर्णरीतिसे मन नहीं लगा सके थे। व्यापारमें घाटा पड़ने और उस समयके संस्कृत कालेजके अध्यक्ष महात्मा कोवेल साहबकी अच्छी सलाहके कारण उन्होंने लुप्तप्राय और नष्ट होनेवाले संस्कृत ग्रंथोंके उद्धारके लिए कमर कसी थी। भिन्न भिन्न देशोंसे संग्रह की हुई हस्तलिखित प्रतियोंमेंसे पृथक् पृथक् पाठान्तरोंको कायम रखकर और कई जगह पाठका

निश्चय करके संस्कृत व्याकरण, काव्य, अलंकार, स्मृति, सांख्य, न्याय, वेद वेदान्त आदि ग्रन्थोंको उन्होंने प्रकाशित किया था । केवल मूल ग्रंथोंको प्रकाशित करके ही वे नहीं रह गये, वरन उन्होंने उनकी सुगम टीकायें भी प्रसिद्ध कीं । संस्कृत शिक्षाको सुगम करनेके कारण ही आज उनका नाम शिक्षित समाजमें प्रतिष्ठाके साथ लिया जाता है । संस्कृतज्ञ विद्वानोंमें उनका नाम अमर रहनेके लिए उनका इतना काम ही यथेष्ट है । परन्तु इस कीर्तिकी अपेक्षा भी अधिक उज्ज्वल और अक्षय कीर्ति उनका बनाया हुआ वाचस्पत्यभिधान है ।

वाचस्पत्यभिधान संस्कृत-भाषाका एक बड़ा कोश है । अँगरेजीमें 'एन्साइकलोपीडिया ब्रिटानिका' कहनेसे हम जो समझते हैं, संस्कृतमें 'वाचस्पत्यभिधान' भी वैसा ही है । इसमें संदेह नहीं है कि एन्साइकलोपीडियाका संग्रह बहुत बड़ा है । इस कामके लिए एक आफिस खोला गया था । सम्पादक, सहकारी सम्पादक, सहायक और पृथक् पृथक् विषयोंके ज्ञाता पंडितोंने इस बड़े कोशके भिन्न भिन्न विषयोंकी रचना की थीं । इस तरह अनेक पंडितोंने सम्मिलित होकर अनेक वर्षोंमें इस महान् ग्रंथको प्रस्तुत किया था । पंडित समाज द्वारा रचित और धनाढ्य प्रकाशक द्वारा प्रकाशित इस ग्रंथको देखकर हम विस्मित होते हैं । परंतु वाचस्पत्यभिधानके लिए इस प्रकारकी कोई व्यवस्था नहीं की गई थी । इस महान् ग्रंथका कुछ संक्षिप्त वर्णन लिखनेसे पाठकोंको उसका आभास होगा । इस महा ग्रंथके आकारके संबंधमें इतना ही कहना बस है कि चार पेजी फार्मके आकारमें पाँच हजार छह सौ पृष्ठोंमें इस ग्रंथकी समाप्ति हुई है; इसके लिए ८०,००० हजार रुपया खर्च किया गया था; इसके संग्रह करनेमें १८ वर्ष लगे थे; १२ वर्षमें इसकी छपाईका काम पूर्ण हुआ था । इसमें लौकिक तथा वैदिक शब्दोंकी उदाहरणसहित व्याख्या की गई है । इसमें

आर्हत (जैन), चार्वाक, न्याय, पाशुपत, पाणिनि, पातंजल, प्रत्यभिज्ञ, माध्व, मीमांसा, शैव, योगाचार, रासेश्वर, वैभासिक, वैशेषिक, वेदान्त-दर्शन, गृह्यसूत्र और श्रौत आदिके पारिभाषिक शब्दोंकी व्याख्या दी गई है। इसमें अलंकार, काव्य, गणित, ज्योतिष, तन्त्र, वैद्यक, शिल्प, संगीत, राजनीति आदि सब शास्त्र और अठारह पुराण तथा अन्य सब विषयोंका वर्णन है। पहले तो इन सब पृथक् पृथक् विषयोंकी पुस्तकोंका संग्रह करना ही किसी अन्य आदमीके प्रयत्न और धनके लिहाजसे कठिन काम है। फिर इसके अतिरिक्त इन सब विषयोंकी मुद्रित तथा हस्त-लिखित पुस्तकोंको पढ़कर उन उन विषयोंपर प्रबन्धरचना करना, यह उससे भी कठिन और दुरूहकार्य है। पहले इस कार्यमें उन्होंने अपने पास पढ़े हुए कुछ विद्यार्थियोंसे सहायता लेना चाही थी, परन्तु उन्हें यह सहायता नहीं मिली। तारानाथ तर्कवाचस्पति महान् शक्तिसम्पन्न पुरुष थे। वे अपनी प्रतिभा और महान् साधनाके बलसे एक सर्वाङ्ग-सुन्दर बृहद् कोशकी रचना कर गये हैं। वह कोश सब शास्त्रोंका संग्रह और संस्कृत विद्याका दर्पण है। ऐसे महान् कोशकी योग्य प्रशंसा करनेका प्रयास करना हम जैसे क्षुद्रजनोंके लिए धृष्टतामात्र है।

* * * *

जो मानव-चरितको विशेषरूपसे जानते हैं, वे कहते हैं कि कर्त्तव्य-परायणता महान् पुरुषोंका एक प्रधान लक्षण है।

सर मधुस्वामी अय्यरकी साधना। महा पुरुष जिसे अपना कर्त्तव्य समझते हैं, उसे अच्छी तरह करनेके लिए वे निरन्तर तत्पर रहा करते हैं; कारण कि जो करना, उसे अच्छी तरह ही करना उचित है। कालचक्रमें पड़कर जब जो करना पड़े—चाहे वह छोटा हो या बड़ा—उसे यत्नपूर्वक ही करना चाहिए। यूरोपियन और अमेरिकन जातियोंमें ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। प्रसिद्ध पादरी केरी साहब एक समय श्रेष्ठ चर्मकार थे—वे उत्तम जूता बनानेमें

ही अपना गौरव समझते थे। महामति गारफील्डने मजूर, सुतार, द्वार-पाल, घड़ीसाज, शिक्षक, व्यापारी, सैनिक और राष्ट्रपतिका काम किया था। परंतु वह जब जिस कामको करता था, उसमें अपना समग्र तन मन अर्पण कर देता था। यही उन्नतिका गूढ़ रहस्य है। सर मधुस्वामी अय्यरके जीवनचरितमें कर्त्तव्यपरायणताका भाव पूर्णरीतिसे दिखाई देता था।

अवस्थानुसार उनको अपने गाँवके ओवरसियरके आफिसमें बारह वर्षकी उमरमें एक रुपया मासिक वेतनपर नौकरी करनी पड़ी थी। काम साधारण होनेपर भी उसे वे विशेष चिन्ता और आग्रहसहित किया करते थे। कोई भी काम, जो उनके हाथमें आता था, उसे वे अच्छी तरह पूरा करनेके लिए अपनी शक्तिभर प्रयत्न किया करते थे। मधुस्वामीके जीवनचरितसे यहाँ एक बात लिखते हैं। वह बात यह है कि जब वे ओवरसियरके आफिसमें नौकरी करते थे, उस समय एक दिन उस ओवरसियरकी अधीनताके एक स्थानमें एक नदीका पुल टूट गया। ओवरसियर इस समाचारको सुनकर घबराया हुआ आफिसमें आया और पुल टूटनेका पूरा हाल जाननेके लिए किसी होशियार नौकरको खोजने लगा। परन्तु उस समय वहाँ कोई नौकर उपस्थित नहीं था, अतएव विवश होकर उसने बालक मधुस्वामीको ही उस जगह भेजनेका विचार किया। उसने विवश होकर इस बालकको उस जगह भेजा था और इसके द्वारा पूरा पूरा हाल मिलनेका उसे भरोसा भी नहीं था। अंतमें समयपर मधुस्वामी उस जगहसे पुल टूटने-का पूरा समाचार ले आये। कितने हाथ पुल टूटा है और जलके वेगसे आसपासके गाँवोंको कितना नुकसान पहुँचा है, केवल इतना समाचार जानकर ही वे निश्चिन्त नहीं हुए, वरन पुलकी मरम्मत करनेके लिए

आसपासके गांवोंसे कौन कौन और कितना सामान मिल सकता है, इन सब बातोंकी भी वे खोज कर लाये। ओवरसियर बालक मधुस्वामीके द्वारा पूरा पूरा समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। पीछे मधुस्वामीकी बातोंकी सचाई झुठाईकी परीक्षा करनेके लिए उसने एक चतुर नौकर भेजा। नौकरने आकर कहा कि मधुस्वामीका कहा हुआ वृत्तान्त बिलकुल सच है। ओवरसियर उस दिनसे इस बालकपर बहुत स्नेह करने लगा और इस बालकका कल्याण करनेके लिए चिन्तित हो उठा। इधर मधुस्वामी भी अपनी अवस्था उन्नत करनेके लिए प्रयास करते थे। मधुस्वामी जिस आफिसमें काम करते थे, उसमें उनको कुछ अधिक काम नहीं करना पड़ता था। वे अवकाशके समय पासकी एक साधारण पाठशालामें बैठा करते थे। थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने अँगरेजी वर्णमाला सीख ली। ओवरसियर उनकी पढ़ने–लिखनेकी ओर ऐसी रुचि देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। और उस दिनसे उसने उनको स्वतः पढ़ाना शुरू कर दिया।

एक दिन ऐसा बनाव बना कि जिससे मधुस्वामीकी शिक्षाका उत्तम प्रबंध हो गया। ओवरसियर साहबका एक छोटा भानजा उनके पास रहकर पढ़ना लिखना सीखता था। एक दिन उन्होंने अपने भानजे और मधुरस्वामीको अँगरेजीकी पहली पुस्तक देकर कहा–“ देखो, एक अठवाड़ेमें इस पुस्तकका कौन कितना अभ्यास करता है ? ” अठवाड़ा बीतनेपर ओवरसियरने दोनोंकी परीक्षा ली और देखा कि भानजेने उस पुस्तकके कुछ पन्ने ही बाँचे हैं, परंतु मधुस्वामीने सारी पुस्तक पूरी कर डाली है। ओवरसियर सा० का मधुस्वामीपर पहलेसे ही स्नेह था, अब इनकी बुद्धिमत्ताका यह नया प्रमाण पाकर वे और भी प्रसन्न हुए और उन्होंने मधुस्वामीकी शिक्षाके लिए उत्तम प्रबंध कर देनेका संकल्प कर लिया। अभीतक मधुस्वामी आफिसमें जो एक रुपया मासिक-

की नौकरी करते थे, आज उसका अंत हो गया। ओवरसियरने उनको नागपट्टनके मिशन स्कूलमें पढ़नेके लिए भेज दिया। मधुस्वामीने कुछ दिनोंमें उस स्कूलकी शिक्षा समाप्त कर ली। ओवरसियरने उनको वहाँसे उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके हेतु मद्रास भेज दिया और उनके हाथ सर माधवरावको एक पत्र लिख दिया। इस पत्रमें मधुस्वामीकी उत्तम शिक्षाका प्रबंध करनेके लिए लिखा था। मधुस्वामीकी असाधारण स्मरणशक्ति और विद्याभिरुचिको देखकर पाठशालाके अध्यापकोंका मन उनकी ओर विशेषरूपसे आकृष्ट हुआ। सभी उनको प्रेमपूर्वक शिक्षा देने लगे। इसी समय मधुस्वामीको सुप्रसिद्ध पौवेल साहबके कृपापात्र होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। बंगालप्रान्तमें जिस प्रकार डेविड हेर अँगरेजी-शिक्षाप्रचारके कार्यमें सहायक होकर प्रातःस्मरणीय हुए हैं, उसी प्रकार महात्मा पौवेल सा० भी मद्रासप्रांतमें अँगरेजी-शिक्षाप्रसारके कार्यमें सहायक बनकर लोगोंका बड़ा उपकार कर गये हैं। महात्मा हेर जिस प्रकार बालकोंके साथ मिल जाते थे, उसी प्रकार महात्मा पौवेल भी विद्यार्थियोंके साथ मिलकर और उनको अपने घर ले जाकर शिक्षा और सदुपदेश दिया करते थे। शिक्षक और विद्यार्थियोंका ऐसा मिलाप बहुत कल्याणकारी होता है, उत्तम नीति और उत्तम शिक्षाका प्रचार सुलभ हो जाता है। आदर्श शिक्षकके चरित्रका प्रभाव कभी व्यर्थ नहीं जाता है। महात्मा पौवेलके सद्गुणोंका प्रभाव मधुस्वामीके चरित्रपर अङ्कित हो गया। महात्मा पौवेल मधुस्वामीकी शक्ति देखकर उसे 'अद्भुत-बालक' कहते और उसपर अत्यंत स्नेह रखते थे। वे विद्यालयके समयके पश्चात् उसे अपने घर ले जाते और रातको विविध विषयोंकी शिक्षा दिया करते थे। मधुस्वामी भी योग्य शिक्षकके योग्य शिष्य थे। वे अनेक तरहकी परीक्षाओंमें अपनी विद्या, बुद्धिका परिचय देकर अनेक पुरस्कार और छात्रवृत्तियाँ प्राप्त किया करते थे।

मधुस्वामी जब मद्रासमें विद्याभ्यास करते थे, उस समय भारतवर्षमें कहीं भी विश्वविद्यालय स्थापित नहीं हुए थे । उस समय अर्थात् सन् १८५४ में एक परीक्षासमिति परीक्षा लिया करती थी । इस समितिने अँगरेजीमें एक उत्तम निबंध लिखनेवालेके लिए ५००) रुपया देनेकी विज्ञप्ति की थी । मधुस्वामीने उस निबंधको लिखा और उनका निबंध सबसे अच्छा निकलनेके कारण उनको पुरस्कार दिया गया। मधुस्वामीका निबंध इतना अच्छा था कि परीक्षकोंने उसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की थी। उनके मतसे मधुस्वामी यूरोपकी किसी भी यूनीवर्सिटीके सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थीके साथ स्पर्धा करनेके योग्य थे। इस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके उपरान्त उनका अध्ययनकाल समाप्त हुआ और वे ६०) मासिकपर अध्यापक नियुक्त किये गये । इस जगहपर कुछ दिन रहनेके उपरान्त उनको तंजोरकी कलेक्टरीमें एक उहदा मिला और यहाँसे शीघ्र ही वे १५०) मासिककी डिपुटी इन्स्पेक्टरीपर भेज दिये गये । मधुस्वामीने जब जो काम किया उसमें खूब प्रशंसा पाई। डिपुटी इन्स्पेक्टरके पद पर पहुँचनेके दिनसे वे शिक्षाखातेकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करने लगे। इस काममें भी उन्होंने सफलता पाई । मधुस्वामी बचपनसे अपनी उन्नतिके अभिलाषी थे । अवसर मिलनेपर उत्तम उपायोंसे अपनी उन्नति करनेके प्रयत्नमें उन्होंने कभी शिथिलता नहीं की। जब वे शिक्षाविभागमें काम करते थे, उस समय मद्रास सरकारने वकालतकी परीक्षा लेना प्रारंभ किया । उन्होंने देखा कि वकालतमें आमदनी अधिक होनेकी संभावना है, अतएव वे कानूनका अभ्यास करने लगे। उन्होंने समयपर परीक्षा दी और वे अच्छे नम्बरोंमें पास भी हुए। भाग्यदेवता प्रसन्न हुआ और उनको मुन्सिफीकी जगह मिल गई। परंतु शिक्षाविभागके डाइरेक्टर सा० ने उनको शिक्षाखातेसे सहज ही नहीं छोड़ा; शिक्षाखाता छोड़नेमें उन्होंने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। मधुस्वामीने शिक्षाखातेमें अल्पकाल ही में बहुत प्रशंसा पाई थी, इस समय

उनकी यह होशियारी और काम करनेकी निपुणता उनके उन्नतिके मार्गमें प्रतिबंधक हो गई। जो हो, अंतमें न्यायविभागके उच्चाधिकारियोंके विशेष अनुरोधसे डाइरेक्टर सा० ने उनको मुन्सिफका काम करनेकी अनुमति दे दी। मधुस्वामीकी मुख्य प्रशंसाकी बात यह थी कि, वे जब जो काम करते थे उसे तन–मनसे करते थे, इससे उनके सभी काम सुन्दर हुआ करते थे। जब वे मुंसिफके पदपर नियुक्त थे उस समय एक बार तंजोरके जज्ज सा० उनका आफिस देखनेके लिए आये। आफिसके कागज–पत्र एक एक करके देखे, पर उन्हें उसमें कुछ भी गलती न मिली। अंतमें यह जाननेके लिए कि वे न्यायका काम कैसा करते हैं, जज्ज सा० उनके पास कुर्सी डालकर बैठे और कई घंटेतक उनकी न्याय–पद्धति देखते रहे। अंतमें उनके कामसे संतुष्ट होकर उन्होंने कहा कि मधुस्वामी जज्ज होनेके पात्र हैं।

मधुस्वामीको मुंसिफका काम बहुत दिनोंतक नहीं करना पड़ा। मद्रास गवर्नमेण्टकी आज्ञासे उनको सन १८५९ में डिपुटी कलेक्टर और मजिस्ट्रेटका काम करना पड़ा। इस कामको भी उन्होंने योग्यता-पूर्वक चलाया। मालविभागके वे पारदर्शी थे, फौजदारी कायदोंको भी भलीभाँति जानते थे। मधुस्वामीके न्यायचातुर्य्यको देखकर नार्टन साहबने उनकी खूब प्रशंसा की थी। उन्होंने ६ वर्षतक डिपुटी कलेक्टरी की; पश्चात् सन १८६५ में उनको सदरआलाका पद मिला। इस पदपर चार वर्षतक रहनेके उपरान्त वे मद्रासके फौजदारी मजिस्ट्रेटके पदपर नियुक्त किये गये। अब वे कानूनके बारीक प्रश्नोंपर ध्यान देनेका अभ्यास करने लगे। ज्ञान प्राप्त करने और परीक्षा देनेमें मधुस्वामी कभी पीछे नहीं हटे। अँगरेजोंका व्यवहार–शास्त्र जाननेके लिए उन्होंने जर्मन-भाषाका अभ्यास किया था। कार्यकी गुरुता या शरीरकी वृद्धा-वस्था उनके उद्योग–मार्गमें कभी विघ्न नहीं डालती थी। मद्रास सर-

कारने उनको मद्रासके स्मालकाजकोर्टके जज्जकी पदवी दी। इसके कुछ दिन पीछे उनको सी. आई. ई. की उपाधि मिली। सरकार उनकी न्यायकुशलता देखकर उनपर पहले ही से प्रसन्न थी। सन् १८७८ ई० में वे हाईकोर्टके जज्ज बनाये गये। जो दरिद्र ब्राह्मणपुत्र एक दिन अपना पेट भरनेके लिए अपने गाँवके ओवरसियरके पास एक रुपया महीनाकी नौकरी करता था, वह आज मद्रास हाईकोर्टका प्रख्यात जज्ज हो गया। पुराणोंमें इन्द्रपद प्राप्त करनेके लिए तपश्चर्य्याकी बात सुनी जाती है। मधुस्वामीके लिए यह लाभ इन्द्रपदसे कुछ कम न था और इसके लिए उन्होंने साधना भी कुछ कम नहीं की।

* * * *

श्यामाचरण सरकारकी साधना।

श्यामाचरण सरकारका जीवनचरित विचित्र घटनाओंसे परिपूर्ण है। श्यामाचरण सरकारके पिता हरनारायण सरकार पुर्णियाकी रानी इन्द्रावतीके दीवान थे। हरनारायण सरकारके सुख-सम्पत्तिके दिनोंमें श्यामाचरणका जन्म हुआ था। जीवनके पहले पाँच वर्षोंतक श्यामाचरणका लालन-पालन पूर्ण ऐश्वर्य्य और सुखके साथ हुआ। हरनारायण सरकार बड़े दानशील थे। दान-धर्मके द्वारा धर्म संचय करनेके अतिरिक्त धन संचय करना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध था। अन्यथा वे साधारण लोगोंके समान स्त्री-पुत्रके लिए अन्न-वस्त्रका कुछ तो प्रबंध कर जाते। वे भगवान्की कृपापर अत्यंत भरोसा रखते थे। उनकी मृत्युके कुछ समय पहले गंगा तीरपर जब उनके किसी संबंधीने पूछा—"हरनारायण! स्त्री-पुत्रके लिए क्या व्यवस्था की है?" उस समय उन्होंने उत्तर दिया था "धर्म है, भगवान् हैं; जिस भगवान्ने मेरी रक्षा की है, वही मेरे स्त्री-पुत्रोंकी रक्षा करेगा।" परमात्मापर निर्भर रहनेका इससे उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है? हरनारायणकी मृत्युके पश्चात् उनकी स्त्रीने पुर्णियामें जो उनकी स्थावर-जंगम मिलाकियत थी, उसे बेंच डाली

और वे कृष्णनगरके पास मामजोया नामक ग्राममें रहने लगीं । जायदाद बेंचनेसे जो कुछ पैसा मिला था, उससे और राजा विजयगोविंदकी ओरसे मासिक पेन्शनके रूपमें जो मदद मिलती थी, उससे हरनारायणके कुटुम्बका निर्वाह चलनेकी आशा की जाती थी; परंतु दुर्भाग्यवश चोरोंने उनका सर्वस्व धन लूट लिया, राजा विजयगोविन्दकी ओरसे पेन्शन भी कुछ दिनोंके पश्चात् बंद हो गई । जिन श्यामाचरणकी बाल्यावस्थामें सुखकी सीमा नहीं थी उनके लिए अब अन्नकष्ट आ पड़ा ! दीवानका पुत्र-साम्प्रत विधवाका पुत्र दुःख और दारिद्र्यमें दिन बिताने लगा । श्यामाचरण जब बालक थे, तब (लार्ड बेन्टिकके समयमें) गाँवोंमें शिक्षाकी कुछ भी व्यवस्था नहीं थी । इसके सिवा श्यामाचरण एक तरहसे अनाथ थे । तेरह वर्षकी उमरतक श्यामाचरणकी शिक्षाका कुछ भी प्रबंध नहीं हुआ था । प्रबंध करे कौन ? जो हो, इस समय एक उत्तम योग मिल गया और उस शुभ समयसे श्यामाचरणकी साधना प्रारंभ हुई ।

कृष्णनगरमें हरिश्चन्द्र सरकारके घर श्राद्धमें श्यामाचरणको निमंत्रण हुआ । वे समयपर उनके घर जा पहुँचे । श्राद्ध आदिके कई दिन गड़बड़में बीते । इसके पश्चात् एक दिन हरिश्चन्द्र अवकाशके समयमें श्यामाचरणसे उनकी सांसारिक व्यवस्थाके विषयमें पूछने लगे । हरिश्चन्द्र श्यामाचरणकी बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु ऐसा बुद्धिमान् बालक अभीतक पढ़ने-लिखनेसे विमुख है, यह सुनकर उनको बहुत दुःख हुआ । हरिश्चन्द्रके मनमें दयाका आविर्भाव हुआ और उन्होंने श्यामाचरणसे अपने घर रहकर पढ़नेके लिए कहा और उन्होंने उनके पढ़नेकी व्यवस्था भी कर दी । उस प्रान्तमें फ़ारसीका प्रचार था । फारसी पढ़ लेनेसे नौकरी आदि मिलनेमें बहुत सुभीता होता था । इन सब बातोंका विचार करके वे श्यामाचरणको श्रीनाथ लाहिड़ी नामक एक सहृदय पुरुषके पास ले गये । वे फ़ारसीके नामी पंडित थे । श्यामाचरणने इन्हींके

पास फारसी पढ़ना प्रारंभ कर दिया। श्यामचरणको हरिश्चन्द्रके घर केवल दो वक्त खानेको मिलता था। इससे अधिक सहायता देना उनकी शक्तिके बाहर था। हरिश्चन्द्रके घर रहने और खाने तथा श्रीनाथ लाहिड़ीके घर बिना फीस पढ़नेकी व्यवस्था तो हो गई, परंतु अभ्यासके लिए पुस्तकें खरीदने और रातके समय पढ़नेके लिए तेल लेनेके लिए पैसोंकी कमी अभी पूरी नहीं हुई थी। हरिश्चन्द्रके घर श्यामाचरणको सांसारिक कामोंमें मदद करना पड़ती थी, इस कारण उनको दिनमें पढ़नेके लिए समय कम मिलता था। शारीरिक श्रमके बदले मानसिक उन्नति करनेवालोंके लिए रात्रिका समय उत्तम होता है। जब अन्य लोग रात्रिको सुखकी नींद सोते हैं, उस समय ऐसे पुरुष अपने कार्यमें तन्मय रहते हैं। परंतु दरिद्र मनुष्य उस समय भी अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर सकते हैं। दीपकके लिए तेलकी आवश्यकता होती है और तेलके लिए पैसे की। दरिद्र मनुष्य अनेक समय साधारण पैसा भी नहीं पाते हैं। श्यामाचरण अभ्यासके लिए दूसरोंकी पुस्तकें देखकर नकल कर लिया करते थे और रातको पढ़नेके लिए चौधरी बाबूके बैठकखानेमें जाते थे। उस जगह सारी रात दीपक जला करता था। श्यामाचरणने सात वर्षतक इसी प्रकार अभ्यास किया। इतने दिनोंतक विधवा माताने भी किसी न किसी तरह अपना निर्वाह चलाया। परंतु अब आगे इस प्रकार निर्वाह चलना कठिन हो गया और श्यामाचरणको पैसेके लिए बाहर निकलना पड़ा। वे अपने पिताके मित्र रीड साहबके पास—जो उस समय कलकत्तेमें रहते थे—गये। रीड साहबने अनुग्रह करके उनको अपने हाथके नीचे १०) मासिक वेतनका एक काम दे दिया। श्यामाचरणने सोचा कि अब दुःखके दिन दूर हो गये, मैं इन रुपयोंसे अपनी माँकी सहायता कर सकूँगा। इस अंतिम विचारसे उनको अतिशय आनंद हुआ, परंतु यह आनंद अधिक समय नहीं ठहरा; नौकरी करनेके एक

वर्षके भीतर ही रीड साहबपर एक दूसरे कर्मचारीके साथ झगड़ा करनेका अभियोग लगाया गया। श्यामाचरण इस मुकद्दमेंके साक्षी थे। परंतु वे भलीभाँति जानते थे कि इस मामलेमें मेरे स्वामी रीड साहब ही अपराधी हैं। इस जगह रहनेसे झूठी गवाही देना पड़ेगी, इस आशंकासे उन्होंने नौकरी छोड़ दी। झूठी गवाही देनेकी अपेक्षा दीन अवस्थामें रहना ही उन्होंने अधिक पसंद किया। श्यामाचरण फिर मुसीबतमें पड़ गये। कलकत्ता जैसे शहरमें आश्रयहीन होकर कितने दिन रह सकते थे; आखिर उन्होंने कृष्णनगरके परिचित मित्र बाबू रामतनु लाहिड़ीके घर जाना निश्चित किया। उस समय लाहिड़ी अपने दो छोटे भाइयों सहित पटलडाँगामें रहते और हिन्दूकालेजमें पढ़ते थे। रामतनुने श्यामाचरणको सन्मानपूर्वक अपने घरमें स्थान दिया। उनके घरमें नौकर चाकर और रसोइया आदिका कुछ प्रबंध नहीं था, सब काम तीनों भाई मिलकर कर लिया करते थे। गृहकार्यके बँटवारेमें श्यामाचरणको पानी भरनेका भार सौंपा गया। वे शारीरिक मिहनत करनेमें कभी टालटूल नहीं करते थे—इसीसे उनके चरित्रकी महत्ता जानी जाती थी।

लाहिड़ीके घर रहते समय वे अपने प्रयत्न और मित्रोंकी सहायतासे साहब लोगोंको देशी भाषाकी शिक्षा देकर अपनी आजीविका चलाने लगे। इस समय उनको लगभग तीस रुपया महीना मिल जाता था। उनकी ज्ञानतृष्णा पहलेसे ही प्रबल थी, अवसर मिलते ही उन्होंने अँगरेजी पढ़ना शुरू कर दिया। पहले रामगोपाल घोष और अपने एक अन्य मित्रके पास अँगरेजी पढ़ना प्रारंभ किया। पश्चात् उसमें अच्छा ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने हिन्दूकालेजमें भरती होना चाहा; परंतु उमर अधिक हो जानेके कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। इस समय उनकी उमर इक्कीस वर्षकी थी। हिन्दूकालेजमें भरती न हो सकनेपर भी वे निराश नहीं हुए, उन्होंने सेन्ट जेवियर कालेजमें

पढ़नेका प्रबंध कर लिया। वे अपनी साधारण तीस रुपयाकी आमदनी-मेंसे आठ रुपया मासिक फीस देकर अँगरेजी पढ़नेमें प्रवृत्त हुए। उक्त कालेजमें अँगरेज अध्यापकोंके पाससे उन्होंने अँगरेजीके सिवा ग्रीक, लैटिन और फ्रेंच भाषाका भी अभ्यास किया। इसी समय श्यामाचरणको मद्रेसामें पच्चीस रुपया मासिककी एक नौकरी मिली। कालेजके अध्यापकोंने उनकी कर्त्तव्यपरायणताको देखकर उनका वेतन चालीस रुपया कर दिया। इसके सिवा उनकी विद्याभिरुचि देखकर, उनके अभ्यासके सुभीतेके लिए मद्रेसामें सवेरे विद्यार्थियोंको बंगला पढ़ानेका प्रबंध कर दिया। साहब लोगोंकी कृपासे श्यामाचरणको सेन्ट जेवियर कालेजमें पढ़ने लिखनेमें बहुत सुभीता हो गया।

श्यामाचरणके जीवनका इस समयका इतिहास अत्यंत परिश्रमकी बातोंसे भरा हुआ है। उनके परिश्रम और काम करनेकी बातें सुनकर विस्मय होता है। कहा जाता है कि इस समय वे सवेरे ६ बजेसे १० बजेतक मद्रेसामें पंडितका काम करते थे, तत्पश्चात् शामके चार बजेतक सेन्ट जेवियर कालेजमें पढ़ते थे, और रातके ९ बजेतक नवागत सिविलियनोंको देशी भाषा पढ़ाते थे। ऐसी स्थितिमें वे दिनमें दो बार अच्छी तरह भोजन भी नहीं कर पाते थे। उनको दिनमें भोजन बनानेके लिए समय नहीं मिलता था, इस कारण रातके ९ बजनेके पश्चात् जब वे अवकाश पाते थे, तब रोटी बनाते और सवेरेके लिए भी रख छोड़ते थे। इस प्रकार उन्होंने पाँच वर्षतक अविश्रान्त परिश्रम किया। रामतनु बाबूके घरमें २ वर्ष रहनेके पश्चात् उनकी स्थिति कुछ अच्छी हो गई और वे फिर स्वतंत्ररीतिसे रहने लगे। मद्रेसामें ५ वर्ष नौकरी करनेके पश्चात् उनको संस्कृत-कालेजमें सत्तर रुपया मासिक वेतनपर द्वितीय अध्यापककी जगह मिली। मद्र[illegible]में नौकरी करते समय उन्होंने विद्वान् मौलवियोंकी सहायतासे पहल[illegible] किये हुए अरबी, फारसी और

उर्दू-भाषाके ज्ञानको खूब बढ़ा लिया था । अब संस्कृत-कालेजमें महा-महोपाध्यायके संसर्गमें आकर वे अपनेको भाग्यशाली समझने लगे । इसके पहले उन्होंने संस्कृतका अभ्यास किया था, परंतु उससे उनकी ज्ञानपिपासा तृप्त नहीं हुई थी । अब वे जयनारायण तर्कालंकार, प्रेमचंद्र तर्कवागीश, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि विद्वानोंके पास धर्मशास्त्र, दर्शन-शास्त्र आदिका अध्ययन करने लगे । उनकी अनेक भाषाओं और अनेक शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी साधना इस जगह समाप्त हुई । अब आगे हम उनको एक जुदे ही कर्मक्षेत्रमें व्याप्त देखेंगे ।

श्यामाचरणने अपने निर्मल चरित्र, बहु भाषाज्ञान और असाधारण परिश्रमी स्वभावके कारण शिक्षाविभागमें बहुत प्रशंसा पाई। शिक्षाविभागके एक बड़े आफीसरकी शिफारिससे उनको तत्कालीन सदर अदालतमें जज्ज सा० की शिरस्तेदारी मिली । इस जगहका वेतन १००) था। श्यामाचरण अभीतक पढ़ने—पढ़ानेका ही काम करते आये थे, आफिस या अदालतसम्बन्धी ज्ञान उनको कुछ नहीं था । परंतु इस कारण उनको कुछ अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा । थोड़े ही दिनोंमें वे उस काममें चतुर हो गये । श्यामाचरणकी बुद्धिमत्ताके कारण न्यायाधीशको मुक-द्दमा करनेमें बहुत सुभीता पड़ने लगा । मुकद्दमासे संबंध रखनेवाले देशी भाषामें लिखे हुए कागज पत्रोंका वे सरल और सुन्दर अंगरेजी अनुवाद कर दिया करते थे । श्यामाचरणकी यह अनुवाद करनेकी रीति बहुत उपकारी सिद्ध हुई । अंतमें हाईकोर्टमें भी इस कामकी आवश्यकता प्रतीत हुई और वाइसरायकी मंजूरीसे कोर्टमें चार सौ रुपया मासिकका एक अनुवादक (ट्रान्सलेटर) नियुक्त किया गया । इस पदपर पहले पहल श्यामाचरण नियुक्त किये गये थे । कहा जाता है कि उसके पश्चात् प्रत्येक जिलेकी अदालतमें भी एक एक ट्रान्सलेटर नियुक्त किया गया था । ट्रान्सलेटरके पदसे धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते श्यामाचरण हाई-

कोर्टके मुख्य दुभाषियाके पदपर पहुँचे थे। इनके पहले इस पदपर कोई देशी आदमी नियुक्त नहीं किया गया था। श्यामाचरणने बड़ी मिहनतसे इस पदको पाया था। कठोर साधनाके द्वारा वे सरस्वती और लक्ष्मी दोनोंको प्रसन्न करनेमें समर्थ हुए थे। सन् १८७७ में श्यामाचरण ३००) मासिक पेन्शन लेकर सरकारी नौकरीसे पृथक् हुए। उन्होंने जैसी उत्कट साधना की थी, उनको वैसी ही सिद्धि मिली। श्यामाचरणकी साधनाका प्रसंग यहीं पूरा होता है।

× × × ×

अक्षय-कुमार-दत्तकी साधना।

बंगला-साहित्यकी उन्नतिके लिए जिन महानुभावोंने अपना तन मन बलि कर दिया है, उनमेंसे एक अक्षयकुमारदत्त भी हैं। बंग-भाषाका साहित्य-भंडार भरकर—श्रीवृद्धि करके अक्षयकुमारदत्त बंगालमें अपनी कीर्ति अक्षय कर गये हैं। अक्षयकुमारके साहित्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेके पहले बंगला गद्य-साहित्यकी अवस्था बहुत शोचनीय थी। उस समय दर्शन, विज्ञान, अथवा अन्य किसी गंभीर विषयके लिए बंग-भाषामें उपयुक्त शब्दोंका बहुत अभाव था। अक्षयकुमारने बंग-भाषामें मानों जीवनीशक्ति ला दी। उनकी आंतरिक इच्छा अपने जातीय साहित्यके द्वारा अपनी जातीय उन्नति करना थी। उनका जीवनचरित पढ़नेसे जाना जाता है कि उनको बाल्यावस्थासे ज्ञान प्राप्त करनेकी कितनी लालसा थी। उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने और देशमें उसका प्रचार बढ़ानेके लिए आत्मसुखको तिलाञ्जलि देकर आजीवन परिश्रम किया। अक्षयकुमारकी असाधारण साधनाका किंचित् आभासमात्र देनेके लिए उनकी जीवनसंबंधी कुछ घटनाओंका विवेचन करना आवश्यक है।

अक्षयकुमारकी बाल्यावस्थाके समय देशमें शिक्षा-पद्धति एक भिन्न प्रकारकी थी। उस समय सरकारी आफिसों और कचहरियोंमें फारसी-भाषाका प्रचार अधिक था। नौकरी द्वारा आजीविका चलानेवाले कायस्थ लोग अपनी संतानोंको किसी भी अच्छी नौकरी मिलनेकी आशासे सबसे पहले फारसी-भाषा पढ़ानेका प्रबंध करते थे। उस समय देशमें धीरें धीरे अँगरेजी-शिक्षाकी चर्चा फैलती जाती थी। परंतु उस समय बहुत करके अँगरेजी-शिक्षा देनेका काम पादरियोंके हाथमें सौंपा गया था; और जो पादरियोंके पास पढ़ते थे उनमेंसे अधिकांश समाजद्रोही, आचारभ्रष्ट अथवा ईसाई हो जाते थे। इस कारण साधारण लोगोंकी ऐसी धारणा हो गई थी कि नवयुवकोंको अँगरेजी पढ़ानेसे वे ईसाई बन जायँगे, समाजद्रोह करने लगेंगे या उच्छृंखल अथवा आचारभ्रष्ट बन जायँगे; वे संध्यातर्पण करना छोड़ देंगे और पितरोंको पिंड अथवा पानी मिलना बंद हो जायगा। लोगोंके हृदयमें ऐसी धारणा बद्धमूल होनेके कारण अक्षयकुमारके पिताने पहले उनको अँगरेजी पढ़ानेका साहस नहीं किया। शिक्षासम्बन्धी चिरप्रचलित रीति-रिवाज, और अँगरेजी-शिक्षाके विषयमें पिताकी उक्त धारणा अक्षयकुमारकी उत्तम शिक्षाके लिए अंतरायस्वरूप हो गई। अपने प्रयाससे इस अंतरायको वे किस प्रकार टाल सके, इस जगह उस बातका संक्षिप्त वर्णन लिखा जाता है। अक्षयकुमारकी बुद्धि बाल्यावस्थासे ही अन्वेषक थी। इस तत्त्वजिज्ञासु बालकके अनेक प्रश्नोंका उत्तर देनेमें ग्रामीण गुरु घबड़ा जाते थे। पाठ्य-पुस्तकोंके सिवा यदि कोई अन्य पुस्तक इन्हें मिल जाती थी तो वे उसे बड़े प्रेमसे पढ़ते थे। इसी समय पियर्सन साहबकी बंगलामें अनुवादित भूगोल इनके हाथ लगी। उसे पढ़कर इनको बड़ा आश्चर्य हुआ। इनकी पृथ्वीके आकार और विस्तारके संबंधमें जो पौराणिक धारणा थी वह दूर हो

गई। उन्होंने इस बातका अनुमान उसी समय कर लिया था कि अँगरेजी-भाषा अनंत अमूल्य रत्नोंकी खानि है। उस समयसे वे अँगरेजी पढ़नेके लिए आतुर हो उठे। पिता और अन्य गुरुजनोंको समझा-बुझा-कर तथा अपना अत्यंत आग्रह प्रकट करके उन्होंसे किसी मिशन स्कूलमें पढ़ने की अनुमति ले ली। परन्तु उस जगह वे अधिक समयतक नहीं पढ़ सके; मिशनरीस्कूल छोड़कर वे लगभग अढ़ाई वर्षतक गौरमोहनके सुप्रसिद्ध ओरियंटल सेमीनरीमें पढ़ते रहे।

इस समय उनकी उमर लगभग १७–१८ वर्षकी थी। अनेक सांसारिक दुर्घटनाओंके कारण यद्यपि उनको विद्यालयमें अधिक समयतक शिक्षा नहीं मिल सकी, परन्तु जितने समय वे विद्यालयमें रहे—उस अल्पकाल ही में उनकी ज्ञानपिपासा ऐसी बलवती हो उठी थी कि वह पीछे आजीवन दुःख-कष्ट, सुख-सम्पत्ति अथवा रोग-शोकमें कभी कम नहीं हुई। विद्याकी ओर रुचि उत्पन्न करा देना उस विद्यालयका एक प्रधान उद्देश्य था। स्वतंत्ररीतिसे ज्ञान प्राप्तिके लिए किस प्रकार यत्न करना चाहिए और किस प्रकार सूक्ष्म अन्वेषणके द्वारा प्रत्येक विषयका अभ्रान्त-ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, इन दो बातोंकी शिक्षा उन्होंने सुयोग्य शिक्षकों द्वारा पाई थी। उस विद्यालयके अनेक उद्देश्योंके भीतर जो ये दो प्रधान उद्देश्य गर्भित थे, उनको अक्षयकुमारने अल्पकाल ही में समझ लिया था। उन्होंने अंतिम जीवनमें अपनी ज्ञान-पिपासा तृप्त करनेके लिए जो साधना की है, वह वर्त्तमान समयके युवकोंके लिए अनुकरणीय है। साम्प्रत देखा जाता है कि इस देशके अनेक नवयुवक विश्वविद्यालयकी डिग्री प्राप्त करनेके उपरान्त बहुत करके पुस्तकोंको हाथ नहीं लगाते; इसी कारण साम्प्रत नवयुवकोंकी शिक्षा-विषयक असारताकी इतनी निन्दा सुनाई देती है। विद्यालयोंका अभ्यास समाप्त करनेके पश्चात् स्वतंत्ररीतिसे अभ्यास और विचार

करनेकी प्रथा हमारे देशमें नहीं है; इसी कारण इस देशमें कलाकुशलता, विज्ञान और साहित्यसंबंधी स्वतंत्र कार्य बहुत कम दिखाई देते हैं । कई लोग पूछते हैं कि पश्चिम और पूर्वके शिक्षित तथा पदवीधरोंमें ऐसा भेद क्यों रहता है ? इसका उत्तर यह है कि हमारे देशके युवक विश्वविद्यालयकी डिग्री प्राप्त करनेके उपरान्त अभ्यास छोड़ देते हैं और यूरोप तथा अमेरिकाके युवक डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् निरंतर अभ्यास जारी रखते हैं । अक्षयकुमार जो अक्षय कीर्ति रख गये हैं, उसका मूल कारण विद्यालय छोड़नेके पश्चात् उनका स्वतंत्र अभ्यास है ।

जिस स्थितिमें अक्षकुमारने विद्यालय छोड़ा था, उस स्थितिमें और अनेक युवकोंको भी बहुधा विद्यालय छोड़ना पड़ता है; परंतु ऐसी खराब स्थितिमें पड़कर अपनी उन्नतिके लिए, बंगला-साहित्यकी उन्नतिके लिए और बंगाली-समाजकी उन्नतिके लिए वे जो कुछ कर गये हैं, वैसा अन्य साधारण लोग नहीं कर सकते । अक्षयकुमारकी उमर जब १७–१८ वर्षकी थी तब उनके सिरपर घर-गृहस्थीका बोझा आ पड़ा । वे कई जगह नौकरीके लिए फिरे, परंतु बिना आश्रयके–बिना वसीलाके उम्मेद्वारी मिलना भी कठिन है । जीवनकी इस अवस्थामें युवकगण जितने निराश होते हैं उतने वे जीवनके अन्य भागमें नहीं होते । वे पाठशालामें पढ़ते समय एक तरहसे निश्चिन्त रहते हैं; पढ़ते समय वे संसारका जो चित्र अङ्कित करते हैं, विद्यालय छोड़नेके पश्चात् उसे भाग्य ही से देख पाते हैं । अक्षयकुमार जब दिनके कामोंसे अवकाश पाते थे तब सरस्वतीदेवीकी आराधना करनेमें प्रवृत्त होते थे । वे सच्चे भक्तकी तरह भक्ति, आस्था और आग्रहके साथ अध्ययन करते थे । इस प्रकार अपार मिहनत करके और स्वावलम्बनके बलसे वे अनेक विद्याओंमें कुशल हो गये । पाठशाला छोड़नेके पश्चात् कुछ दिनोंमें उनको तत्त्वबोधिनी पाठशालामें आठ रुपया

महीनाकी नौकरी मिली । काम थोड़े वेतनका था परंतु वह उस समय आई हुई पैसेकी तंगी मिटानेके लिए उपायस्वरूप हो गया । इस तरह उन्होंने अपने भविष्यके उन्नतिरूपी महलकी पहली सीढ़ीपर पैर रक्खा। तत्त्वबोधिनी पाठशालामें उनको अधिक दिन काम नहीं करना पड़ा, थोड़े ही दिनोंके भीतर उनको तत्त्वबोधिनी पत्रिकाके संपादनका कार्य मिल गया । विद्या सीखना और विद्यादान करना उनका जीवनका उद्देश्य था। बाल्यावस्थामें इस इच्छाको पूर्ण करनेका अवसर नहीं मिला था, जवानीमें निरन्तर अन्न-जुटानेकी चिन्तामें लगे रहते थे, तो भी वे अपने अवकाशके समयको विद्या-चर्चा ही में व्यतीत किया करते थे। अब 'तत्त्वबोधिनी' सभाका आश्रय मिलनेसे वे निश्चिन्त मनसे ज्ञान-चर्चा करने लगे। अब उनको अन्नकी चिन्ताके लिए व्याकुल नहीं होना पड़ता था; इस कारण अब एकाग्र मनसे वे ज्ञानसाधनामें तत्पर रहने लगे। अब उनको पुस्तकादिका अभाव भी नहीं रहा । वे अपनी इच्छानुसार सब तरहकी पुस्तकें पढ़ते थे। इस तरह अक्षयकुमारने अँगरेजी दर्शन, गणित और विज्ञानशास्त्रका अच्छी तरह अध्ययन किया। इतना ही नहीं, प्रत्युत रसायन और वनस्पतिशास्त्रका भी ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वे कलकत्ताके प्रसिद्ध 'मेडिकल कालेजमें विद्यार्थियोंकी तरह अध्यापकोंके पास इन दोनों विषयोंके भाषण सुनने लगे। इस समय वे रातदिन विश्राम लिए बिना पढ़ने-लिखनेमें लगे रहते थे। इस प्रकार उन्होंने १२ वर्षतक साधना की। तत्पश्चात् उनका स्वस्थ्य कुछ बिगड़ गया। शारीरिक भूखकी तरह मानासिक भूख भी होती है। शारीरिक शक्तिकी तुलनामें समता रखकर दोनों प्रकारकी भूखको तृप्त करना चाहिए। शरीरकी उपेक्षा करके मनकी उन्नति करनेमें और मनकी उपेक्षा करके शरीरकी उन्नति करनेमें, अनेक लोग भूल करते हैं। प्राकृतिक नियमोंको भंग करनेसे-प्रकृतिके विरुद्ध चलनेसे, प्रकृति उनका बदला लिए

विना नहीं रहती। अक्षकुमार भी इस साधारण नियमसे बाहर नहीं थे, शारीरिक और मानसिक मिहनतकी अधिकताके कारण ३५ वर्षकी अवस्थामें उनको कष्टसाध्य शिरोरोगने आ घेरा। ६६ वर्षकी अवस्थामें उनका देहान्त हुआ था। इससे जाना जाता है कि ३१ वर्षतक उनको इस कठिन पीड़ाका सामना करना पड़ा। परंतु आश्चर्य्यकी बात यह है कि इस जीवनमृत दशामें वे जो कुछ कर गये हैं, वह अनेक लोग स्वस्थ दशामें भी नहीं कर सकते। 'भारतवर्षका उपासक सम्प्रदाय' नामक दो खंडका ग्रंथ उन्होंने रोगी अवस्थामें लिखा था। इस ग्रंथके प्रारंभका कुछ भाग पहले तत्त्वबोधिनी पत्रिकामें प्रकाशित हुआ था। परंतु जब सब भाग एकत्र करके ग्रंथके रूपमें प्रकाशित किया गया उस समय वे शिरकी पीड़ासे पीड़ित थे। ऐसी स्थितिमें ग्रंथ छपाकर प्रकाशित करना बड़े आग्रह, दृढ़ संकल्प और कठोर साधनाका काम है। कैसी अवस्था और कैसे कष्टसे इस सुप्रसिद्ध ग्रंथके दो भाग लिखे गये हैं, इसके विषयमें वे स्वतः लिख गये हैं–" शरीरकी इस प्रकारकी दुःखदायक अवस्था इतने लम्बे समयसे चली आ रही है कि उसके कारण लिखने, पढ़ने, विचारने, सुनने आदि किसी तरहके मानसिक अथवा शारीरिक श्रमके करनेमें मैं असमर्थ हूँ। इनमेंसे किसी भी कार्यमें प्रवृत्त होनेसे मानसिक दुःख उत्पन्न होता है। ऐसी दशामें एक भागकी रचना, संशोधन और उसके छपने आदिका जो कार्य हुआ है उसपर मैं एक बार भी दृष्टि नहीं डाल सका हूँ। अनेक समय ऐसा स्पष्ट अनुभव होनेपर भी कि बड़े बड़े गंभीर भावोंकी चिन्ताका प्रवाह मनमें उत्पन्न होकर मस्तिष्कके स्वास्थ्यको नष्ट कर रहा है, मैं उसको निवारित नहीं कर सका। दुःख होता है, ऐसा समझकर मैं दूसरी ओर मन लगानेके उद्देशसे बहुत प्रयत्न करता था, परंतु किसीसे भी चिन्ताका प्रवाह मंद नहीं होता था, और जबतक मैं अपने मनके भाव या अन्य बातें जो हृदयमें उठती थीं उनको लिखा नहीं लेता था, तबतक मेरे मस्तकके भीतर असह्य

वेदना रहती थी। मेरा नौकर या दूसरा कोई मनुष्य मेरे पास होता था, तो मैं उससे लिखनेको कहता था, जब कोई पास न होता तो मैं गाड़ीपर बैठकर अपने समीपवर्ती किसी मित्रके पास जाता और उससे लिख देनेका आग्रह करता था। कभी कभी ऐसे लोगोंसे भी जिन्हें शकार, षकार अथवा सकारका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था विवश होकर लिखाना पड़ता था। कई बार आधी रातको भरनींद सोते हुए नौकरोंको जगाकर कई विषय लिखानेका अवसर आता था यदि ऐसा न करता तो मस्तिष्कमें उत्पन्न हुए विचार बारंबार आन्दोलन मचाकर रात्रिको निद्रा नहीं आने देते थे। मनमें इस प्रकार किसी विषयका उदय होनेपर दुःख होता था; उसका चिन्तवन या आन्दोलन करनेमें भी दुःख होता था; स्वतः लिखना तो दूर रहा, पर दूसरोंसे लिखानेमें भी कष्ट होता था और जबतक वह बात लिखी नहीं जाती थी तबतक उसके लिए भी बहुत दुःखका अनुभव करना पड़ता था। वह दुःख निवारण करनेके उद्देश्यसे यदि किसी ग्रंथको देखनेकी आवश्यकता पड़ती थी, तो किसी मनुष्यसे पास जाकर उसे बँचवा कर सुनता था। सो भी हर समय या प्रतिदिन नहीं सुन सकता था। जो कुछ सुनता था उसपर पूरा पूरा ध्यान नहीं दे सकता था। शरीरकी स्थितिके अनुसार किसी दिन किसी समय औषध आदिका व्यवहार करके सुनता था। कभी पाँच मिनट कभी केवल दो चार मिनट और कभी दो चार वाक्य ही लिखा सकता था। इसी तरह क्रम क्रमसे एकत्र करके 'उपासक सम्प्रदायका' अधिकांश भाग तैयार किया गया है, उपर्युक्त कथनानुसार शरीरकी अवस्थाके अनुसार कभी कभी औषध सेवन करके और कभी अन्य कई तरहकी तजवीजों द्वारा महान् कष्टसे इस ग्रंथके लिखनेका काम पूरा किया गया है।" जब हम इस ग्रंथका आकार उसमें वर्णन किये हुए विषयका गौरव और ग्रंथकर्त्ताकी चिररुग्ण अवस्था आदिका विचार करते हैं, तब अक्षयकुमारकी इच्छाकी प्रबलता देखकर विस्मित होते हैं।

* * * *

माईकेल मधुसूदन-दत्तकी साधना ।

बंगालके अमर कवि मधुसूद्नदत्तका जीवनचरित अवलोकन करनेसे साहित्य-साधनामें उनकी इच्छाशक्ति अत्यंत प्रवल दिखाई देती है । परधर्मको स्वीकार करना, पर-वेश धारण करना, माता पिता तथा समाजको त्याग करना आदि अनेक बड़ी बड़ी भूलें उनसे हुई हैं । यह उनकी अनियंत्रित और उलटे मार्गसे जानेवाली इच्छाशक्तिकी निशानी है । इस स्थलपर हम मधुसूदनदत्तकी कुटुम्ब अथवा संसारसंबंधी वातें नहीं लिखते हैं और उनके लिखनेकी आवश्यकता भी नहीं है । इस जगह हम केवल उनके साहित्यसम्बन्धी जीवनकी वातें लिखते हैं, उनसे विदित होगा कि वे अपनी प्रबल इच्छाशक्तिकी सहायतासे कैसी साधना कर गये हैं । किसी सुप्रसिद्ध कविने इच्छाकी पर्वतसे निकलनेवाली नदीके साथ तुलना की है । वास्तवमें यह तुलना बहुत सुंदर है। मधुसूदनदत्तने स्वतः लिखा है—" जब सरिता अपने पर्वतगृहको छोड़कर समुद्रमें मिलने जाती है, तब किसमें ऐसी शक्ति है, जो उसके प्रवाहको रोक सके ? " उसके प्रवाहके सामने जब कोई बाधा उपस्थित होती है तब वह कभी उसके नीचे होकर चली जाती है और कभी उसे उलंघन कर जाती है; कभी भयंकर रुकावट आ जानेसे पानी रुककर इकट्ठा होने लगता है और फिर प्रबल वेगसे जलप्रपातका सुन्दर दृश्य दिखाकर बहने लगता हैं । मधुसूदनदत्तके अनंत रत्न-भंडाररूपी मस्तिष्कसे उत्पन्न हुई इच्छाशक्ति साहित्यकी ओर प्रवाहित होते समय इसी प्रकार समस्त अड़चनों—बाधा—विघ्नोंको उल्लंघन कर गई थी। अथवा कहीं कहीं प्रबल बाधा उपस्थित होनेपर क्षणमात्रके लिए स्थिर होकर और शक्तिसंचय करके—अपने स्वरूपको बढ़ाकर सुंदर सुंदर खंड काव्य और महाकाव्यरूपी छोटे बड़े अनेक मनोरंजक जलप्रपातोंको उत्पन्न कर गई है। मधुसूदनने जीवनभर सरस्वतीदेवीकी आराधना की है। उन्होंने

कैसी कठोर साधनाके द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करके साधनामें सिद्धि पाई है, उसे हम अनुक्रमसे कहते हैं।

मधुसूदनदत्त अपने जनक महामति राजनारायणदत्त और जननी जान्हवीके इकलौते पुत्र थे। राजनारायण यशोहर जिलेके सागरदांड़ी नामक ग्रामके एक प्रसिद्ध रईस थे। वे वैभवशाली जागीरदार होनेके सिवा कलकत्ता हाईकोर्टके एक प्रसिद्ध वकील भी थे। वे वकालत द्वारा खूब पैसा पैदा करते थे। मधुसूदनकी माता जान्हवी भी एक प्रतिष्ठित घरानेकी लड़की थी। ऐसे माता पिताका इकलौता पुत्र लाड़ला हो, इसमें संदेह ही क्या है? मधुसूदन १२ वर्षकी उमरतक सागरदांड़ीमें थे, और उसी ग्रामकी पाठशालामें पढ़ते थे। जिस उमरमें धनवानोंके लड़के लाड़-प्यारके कारण कुछ भी लिखना-पढ़ना नहीं सीखते, उस उमरमें मधुसूदनदत्त उतना अथवा उससे भी अधिक लाड़-प्यारमें रहकर एक दिन भी लिखने पढ़नेसे उदासीन नहीं हुए। उनकी अत्यंत विद्याभिरुचि, अलौकिक प्रतिभा और तीव्र स्मरण शक्तिके कारण शिक्षकगण उनसे सदैव प्रसन्न रहा करते थे। ग्रामीण पाठशालाओंमें मास्टरकी मार या प्रसन्नता, शिक्षाकी कड़ाई या सुलभतापर ही अधिकांश विद्यार्थियोंकी विद्याके प्रति रुचि या अरुचि हुआ करती है, परंतु मधुसूदन इन कारणोंसे किसी दिन भी पाठशालामें गैरहाजिर नहीं रहते थे और न पाठशालासे अप्रसन्न होकर ही जाते थे। इसके विपरीत सुना जाता है कि वे सबसे पहले पाठशालामें पहुँचानेके विचारसे माताकी प्रीतिपूर्वक बनाई हुई विविध प्रकारकी सामग्रियोंको छोड़कर चले जाते थे, बाल्यावस्थामें उनकी विद्याभिरुचि ऐसी ही प्रबल थी। इसके पश्चात् १३ वर्षकी अवस्थामें वे कलकत्ते आये और खिदिरपुरमें पिताके पास रहकर वहाँके स्कूलमें पढ़ने लगे। तत्पश्चात् हिन्दूकालेजमें नाम लिखा गया। वे सन् १८३७ से ४२ तक उस कालेजमें पढ़ते रहे। इन ६ वर्षोंमें उन्होंने

अँगरेजी वर्णमालासे लेकर सीनियर विभागकी अंतिम परीक्षातक शिक्षा पाई। मधुसूदन जब पढ़ते थे उस समय आजकलके समान विश्वविद्या-लयकी डिग्रियोंवाली परीक्षायें नहीं ली जाती थीं, परंतु कहा जाता है कि सीनियर विभागकी अंतिम परीक्षाकी पुस्तकें आजकलकी बी. ए की परीक्षाके समान थीं। ६ वर्षमें अँगरेजीकी ए. बी. सी. डी. से लेकर बी. ए. तकका कोर्स प्रशंसापूर्वक पूर्ण करनेकी बात सुनकर आश्चर्य होता है और मनमें प्रश्न उठता है कि उस समयकी शिक्षापद्धति कैसी थी ? और जो विद्यार्थी इस प्रकार अभ्यास करते थे उनकी बुद्धि और साधना कैसी थी ? इनमेंसे हम एक एक बातका विचार करते हैं। वर्त-मान समयकी शिक्षापद्धतिपर, कुछ ध्यान देकर विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि यह पद्धति परीक्षाप्रधान है। परीक्षकके प्रश्नोंका कुछ अंशमें उत्तर दे सकनेसे साम्प्रत डिग्रियाँ मिल जाती हैं। परीक्षा प्रधान शिक्षा-पद्धतिका मूल उद्देश्य हितकर होनेपर भी, अब उसका वृथा उपयोग होने लगा है। शिक्षापद्धति परीक्षाप्रधान होनेके कारण प्रश्नों और उत्तरोंकी ओर सबका ध्यान आकर्षित रहता है। अध्यापक और विद्यार्थी लोग देखते हैं कि अमुक पुस्तकमें कितने प्रश्न निकल सकते हैं। इन सब प्रश्नोंमेंसे अनेक प्रश्नोंका उत्तर दे सक-नेपर परीक्षामें उत्तीर्ण होने तथा प्रशंसा मिलनेकी संभावना रहती है। इस विचारसे शिक्षक और विद्यार्थी पुस्तक पढ़ाते और पढ़ते समय प्रश्नोपयोगी भागपर पेन्सिलसे चिन्ह करते जाते हैं; और उस अंशको विद्यार्थी तोतेकी तरह रट लेते हैं। आजकल परीक्षामें आने योग्य प्रश्नोंको चुन निकालना ही शिक्षकका मुख्य लक्षण गिना जाता है। परीक्षागृहमें विद्यार्थीगण रटे हुए विषयको पत्रोंमें लिख आते हैं। अनेक लोग इस कामकी वमन करनेके कामके साथ तुलना करते हैं। वे कहते हैं कि खाये हुए पदार्थको पचानेकी आवश्यकता है, ऐसा किये बिना

शरीरको पुष्टि नहीं मिलती; उसी प्रकार पढ़ी हुई विद्याको विचार द्वारा मनमें बैठानेकी आवश्यकता है, ऐसा किये बिना कोई विद्वान् नहीं हो सकता है। खाये हुए पदार्थको वमन करना, रटी हुई विद्याकी आवृत्ति करना-दोनों एक समान हैं-दोनोंकी कीमत बराबर है। यह उपमा शायद किसीको उचित प्रतीत न भी हो परंतु वह बिलकुल असम्बन्द्ध और असत्य है ऐसा कोई नहीं कह सकता। विद्यामंदिरमें शिक्षकोंके चुने हुए प्रश्नोंका उत्तर कंठ कर लेनेके सिवा बाहर शब्दार्थ (Meanings' books) और प्रश्नोत्तर (Questions and Answers) आदिकी पुस्तकोंका भी अभाव नहीं है। यह सच है कि अर्थ या शब्दार्थ आदिकी पुस्तकें रचनेवाले अपनी पुस्तकें बेंचकर परिश्रमका बदला अदा कर लेते हैं, परन्तु अनेक जगह इन पुस्तकोंसे विद्यार्थियोंका कितना नुकसान होता है, इसका विचार बहुत कम आदमी करते हैं। वास्तवमें अर्थ-पुस्तकोंकी विपुलताके कारण मूल विषयका विचार बहुत कम हो गया है। एक उत्तम लेखक लिखता है कि अर्थपुस्तकें विद्यामंदिरमें धुआँ फलाने वाले दीपकके समान हैं; जिससे प्रकाश होनेकी अपेक्षा धुआँ निकलनेके कारण अँधेरा ही अधिक फैलता है। ऐसे मलिन प्रकाशमें देवकी प्रतिमा कदाचित् ही दिखाई दे सकती है। वास्तवमें ऐसी अर्थ-पुस्तकों और टीका टिप्पणियोंकी सहायतासे वाग्देवीकी निर्मल कान्ति कदाचित् ही दृष्टिगोचर हो सकती है। सरल भाषामें कहें तो हमेशा प्रश्नोत्तरपर दृष्टि रखकर अभ्यास करनेसे स्वतंत्र विचार करनेकी शक्ति जाती रहती है-मौलिकता नष्ट हो जाती है और नये ज्ञान और नये शोधोंकी ओर कदाचित् ही दृष्टि जाती है। चाहे जो हो, पर हमारे सौभाग्यकी बात है कि शिक्षाविभागके सुयोग्य अधिकारियों और स्वदेशहितैषी विद्वानोंने इस देशकी शिक्षापद्धतिकी ऐसी हीनावस्था देखकर उसके सुधारके लिए कमर कसी है।

मधुसूदनदत्त जब हिन्दूकालेजमें विद्याभ्यास करते थे, उस समय इस देशकी शिक्षापद्धति एक भिन्न प्रकारकी थी, उस समय आजकलके समान परीक्षाका ऐसा अधिक भय नहीं था। शिक्षक विद्यार्थियोंको शिक्षा देनेका सदैव प्रयास किया करते थे। वे विद्यार्थियोंकी विचारशक्ति, धारणाशक्ति और रसज्ञशक्ति बढ़ानेके लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे। वे धर्मनीति, व्यवहारनीति और राजनीतिके गुण-दोषोंको बतलाकर विद्यार्थियोंकी बुद्धिवृत्तियोंको विकसित करते थे और इन सब विषयोंकी भली बुरी दोनों बाजू दिखलाकर उन विषयोंपर स्वतंत्र विचार प्रकट करनेको कहते थे। ये सब श्रेष्ठ शिक्षक साहित्यका विचार करते समय विद्यार्थियोंके समक्ष मनुष्यके हृदयकी सूक्ष्म वृत्तियोंका पृथक्करण करके उनका भीतरी सौन्दर्य्य दिखलाते थे। वे उनको भाविक और रसज्ञ करनेके लिए प्रयत्न करते थे। वे चतुर शिक्षक सृष्टिका रहस्य बतलाकर उत्पन्न करनेवालेकी सृष्टि-रचना-कौशल्यको दिखाते थे। तारागणोंसे सुशोभित आकाशमंडल, शान्त नीलवर्ण महासागर तथा शुभ्र बर्फसे ढके हुए और आकाशको स्पर्श करनेवाले पर्वतोंका वर्णन करके जगत्कर्त्ताकी सौम्यमूर्तिका अनुभव करनेके लिए कहते थे। कानोंमें भय उपन्न करनेवाली बिजलीकी कड़कड़ और प्रलयकारी हवाके भयंकर तूफानोंका वर्णन पढ़ाते समय वे उसकी उग्र मूर्तिका अनुभव करनेके लिए कहते थे। छोटे बच्चेके निर्दोष मंदहास्य, ओसकी बूँदोंसे भीगी हुई कोमल कली, सद्य विकसित पुष्प, स्निग्ध जल और शीतल पवनकी लहरोंका वर्णन करके शिक्षकगण परमेश्वरकी दयालु मूर्तिका दर्शन करनेकी शिक्षा देते थे। संसारके भीतरी और बाहरी पदार्थोंके साथ पाठ्य-पुस्तकोंमें वर्णित विषयकी किस प्रकार तुलना करना चाहिए और किस प्रकार उसका रसास्वादन करना चाहिए, इन सब बातोंकी शिक्षा प्राचीन शिक्षक अच्छी तरह देते थे। उस समयके शिक्षक इस

प्रकार शिक्षा देनेमें कुशल तो थे ही, किंतु वे विद्यार्थियोंके साथ बहुत प्रेमपूर्ण व्यवहार भी करते थे। विद्यार्थियोंके सभी उत्तम कामोंमें अध्यापक लोग सहाय किया करते थे। इस प्रकार विद्यार्थियोंके साथ शिक्षकका प्रगाढ़ सम्बन्ध रहता था। इस समय भी अनेक आदर्शशिक्षक हैं, यदि वे न हों तो इस देशकी शिक्षाकी दशा बहुत ही शोचनीय हो जाय। परंतु खेदकी बात है कि अनेक कारणोंसे उत्तम शिक्षकोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। उस समयके शिक्षक चतुर मालीके समान ज्ञानका बीज विद्यार्थियोंके मनरूपी क्षेत्रमें बोते थे, और उत्तम शिक्षाकी सहायतासे बोये हुए बीजको अंकुरित करनें, तथा समयपर उसे फल और छायावाले महा वृक्षके रूपमें परिणत करनेके लिए परिश्रम किया करते थे। कई लोग वर्त्तमान समयके विद्यार्थियोंको काचके गमलेमें लगाई हुई कलमके साथ तुलना करते हैं। यह सच है कि बराबर पानी देते जानेसे उसमें फल शीघ्र लग जाते हैं, परंतु पृथ्वीके साथ उसका कोई संबंध न होनेके कारण पानी मिलना बंद होते ही वह सूख जाती है; इस कारण वह अधिक समयतक फल–फूल नहीं दे सकती है। वास्तवमें आजकलके रोगपीड़ित, मंददृष्टि और मास्तिष्कशून्य पन्द्रह बीस वर्षके बी. ए., एम्. ए. पास युवकोंको देखकर उक्त उपमा बिलकुल सच प्रतीत होती है। प्रकृतिके साथ स्वतंत्र विचार और शोधक बुद्धि न होनेके कारण, भूमिके साथ वृक्षका संबंध न होनेके सदृश उनका ज्ञान बढ़ नहीं सकता है, अवश्य ही उस समयके शिक्षक आजकलके शिक्षकोंके समान सदैव नीति और नियमकी कतरनी लेकर नहीं बैठते थे और इसी कारण उस समयके विद्यार्थियोंके मन और हृदयकी वृत्तिरूपी शाखायें कभी कभी उच्छृंखल रीतिसे बढ़ जाती थीं।

मधुसूदनदत्तने कैसे शिक्षकोंके पास कैसी शिक्षा ली थी, इस बातका वर्णन इस जगह किया गया है, अब इस बातका वर्णन लिखा जाता है

कि वे कैसे एकाग्र मनसे पढ़ते थे । मधुसूदन असाधारण विद्वान् थे। पढ़ने लिखनेमें सर्वत्र सर्वोत्तम रहनेकी इच्छा उनको बालपनसे रहती थी और उसके लिए वे जितनी चाहिए उतनी मिहनत भी करते थे। हिन्दू-कालेजमें भरती होनेके उपरान्त थोड़े ही दिनोंमें वे एक उत्तम विद्यार्थी गिने जाने लगे। वे सब परीक्षाओंमें बहुत करके सबसे ऊँचे अंकोंमें पास होते थे। वे पाठ्य-पुस्तकोंके सिवा अन्य पुस्तकें पढ़नेमें बहुत रुचि रखते थे। उनका जीवनचरित पढ़नेसे विदित होता है कि पाँचवीं श्रेणीमें अभ्यास करते समय उन्होंने अँगरेजी-साहित्यके इतने ग्रन्थ पढ़ डाले थे कि जितने ग्रंथोंको पढ़कर एक बी. ए. वाला अपनेको गौरव-शाली समझता है। मधुसूदन भोग-विलासमें अजितेन्द्रिय थे, तो भी विद्याकी ओर उनकी अपूर्व प्रीति थी। लोग कहा करते हैं कि जब उनका मन पढ़नेमें लगता था, तब वे भूख, प्यास, नींद आदि बिलकुल भूल जाते थे। जिस भोग–विलासकी प्रबल वासनाके कारण उनके चरित्रमें अनेक कलंक लगे थे, उस भोग–विलासको वे सरस्वतीकी आराधना करते समय भलीभाँति दबा सकते थे। इस बातपरसे उनके विद्याभ्यासके दृढ़ आग्रहका परिचय मिलता था। मधुसूदनकी बुद्धि सब विषयोंको समानरूपसे ग्रहण करनेमें समर्थ थी। कई लोगोंकी ऐसी धारणा होती है कि साहित्यके अभ्यासी गणितमें अच्छे नहीं होते। उन लोगोंकी यह धारणा मधुसूदनके विषयमें असत्य ठहरती थी क्योंकि उन्होंने एक बार अपनी कक्षामें कहा था कि काव्यप्रेमी भी गणितमें पारदर्शी हो सकते हैं। एक दिन जब कक्षाके सब विद्यार्थी गणितके एक जटिल प्रश्नको हल करनेमें असमर्थ हुए, उस समय उन्होंने एक सुन्दर युक्तिके द्वारा उस प्रश्नको हल करके अपने कथनको पुष्ट किया था। परंतु उनके मनमें साहित्यके प्रति असीम अनुराग होनेके कारण वे आगे गणितमें अधिक मन नहीं लगा सके।

मधुसूदनने विद्यार्थी अवस्थासे ही साहित्य-चर्चा करना प्रारंभ कर दिया था। उस समयके उत्तम विद्यार्थी सभा स्थापित करके व्याख्यान देते और सामयिकपत्रोंमें लेख लिखते थे। घरमें मा-बाप और विद्यालयमें शिक्षक दोनों इस विषयमें उनका उत्साह बढ़ाया करते थे। साहित्यके सुप्रसिद्ध अध्यापक केप्टन रिचर्डसन साहबने मधुसूदनकी साहित्य विषयक स्वाभाविक प्रीति जिस प्रकार बढ़ाई थी, उसी प्रकार उत्तम रचनाशैली भी उनको सिखाई थी। वे उनकी रची हुई कविताओंको शुद्ध करके तत्कालीन 'लिटररी ग्लीनर' 'ब्लुसम' 'कॉमेट' आदि मासिकपत्रोंमें छपाकर उनके उत्साहको बढ़ाते थे। मधुसूदनके मनमें इसी समयसे उत्तम लेखक बननेकी इच्छा उत्पन्न हुई। वे सहपाठियोंके साथ बातचीतमें और मित्रोंके पास पत्रद्वारा अपनी इस उच्चाभिलाषाको प्रकट किया करते थे। मधुसूदनने अपने जीवनकी किसी भी अवस्थामें इस उच्चाकांक्षाको परित्याग नहीं किया। जिस समय वे हिन्दूकालेजमें अभ्यास करते थें, उस समय कलकत्ताके विद्यार्थियोंकी नैतिक अवस्था बहुत शोचनीय थी। जिन सब दुराचारोंको आजकलके लोग तिरस्कार तथा घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, उन सब दुष्कर्मोंको उस समयके विद्यार्थी 'नव्यबंग' के नामसे अपना परिचय देकर अहंकार, गौरव और स्पर्धाके साथ किया करते थे। वास्तवमें उस समयके विद्यार्थियोंका अधिकांश भाग उच्छृंखल और कुमार्गगामी था। समाजमें जिन बातोंका प्रचार होता था, उसके विरुद्ध चलना ही वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। पाश्चिमात्य सभ्यताकी तात्कालिक रमणीय मूर्ति देखकर अँगरेजी पढ़े-लिखे युवक मोहमें पड़ जाते थे। वे यूरोपिनोंके समान बलवान् और शक्तिसम्पन्न होनेकी इच्छासे उनके आहार-विहार, उनकी पोषाक और उनकी रुचिका भी अनुकरण करने लगते थे। सुना जाता है कि शराब पीने और मांस भक्षण करनेमें वे अपना

गौरव समझते थे। उनपर यूरोपीय फैशनका प्रभाव भी कुछ कम नहीं पड़ा था। कहा जाता है कि एक दिन मधुसूदन किसी यूरोपियन हज्जामकी दूकानपर एक सोनेकी मुहर खर्च करके बाल कटवा आये थे। इस फैशनके चुंगलमें फँसकर अनेक धनवानोंके लड़के केवल पढ़ने–लिखनेसे ही नहीं, वरन धन और अपने स्वास्थ्यसे भी हाथ धो बैठते थे। मधुसूदनदत्तमें केवल प्रशंसाकी बात इतनी ही थी कि वे ऐसे प्रभावमें रहनेपर भी–अनेक निन्दित कर्म करनेपर भी सरस्वतीकी साधनासे कभी पराङ्मुख नहीं हुए। मधुसूदनदत्तके जीवनमें इस समय एक नवीन फेरफार हुआ। हिन्दूकालेजकी शिक्षा पूर्ण करनेके पश्चात् उन्होंने खीष्ट धर्म स्वीकार किया। वे मानो तत्कालीन 'नव्यवंग' की बुद्धि तथा गतिके उत्कर्षका एक फल थे। मधुसूदनके इन सब कामोंकी हम इस जगह आलोचना नहीं करते; वे ईसाई होनेके पश्चात् माइकेल मधुसूदन कहलाने लगे। वे बंगालियोंकी दृष्टिसे श्रीभ्रष्ट हो गये।

मधुसूदन सन् १८४३ में ईसाई हुए। इसके पश्चात् कुछ दिनोंतक उन्होंने शिवपुरके विशपकालेजमें अभ्यास किया। हिन्दूकालेज में शिक्षा पाते समय केप्टन रिचर्डसनने जिस प्रकार काव्यजगतका सौन्दर्य्य दिखलाकर उनको काव्यरचनामें निपुण कर दिया था, उसी प्रकार विशपकालेजमें अभ्यास करते समय उस कालेजके अनेक भाषाओंके जाननेवाले अध्यापकोंने उनको अनेक भाषाओंकी शिक्षा देनेमें सहायता की थी। वे विशपकालेजमें चार वर्ष रहे। इस समयमें उन्होंने ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, जर्मन और इटालियन भाषायें सीखीं। भाषा सीखनेकी उनमें असाधारण शक्ति थी। वे शिक्षित अँगरेजोंकी तरह अँगरेजी–भाषा बोल और लिख सकते थे। उन्होंने फ्रेंच और इटालियन भाषाओंमें इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वे उन भाषाओंमें सुगमतापूर्वक कविता कर सकते थे। मधुसूदनदत्तके ईसाई हो जानेपर भी उनके स्नेही पिता उनकी

उच्च शिक्षाके लिए पहलेके समान उनको रुपयों पैसोंकी सहायता दिया करते थे। स्नेहवती माता भी पिताके जान और अनजानमें उनको बहुत कुछ रुपयों पैसोंकी मदद दिया करती थी। यह पैसा वे केवल शिक्षाके लिए ही व्यय करते थे, ऐसा नहीं था; बिशपकालेजमें रहते समय ईसाई नवयुवकोंके कुसंसर्गमें रहकर वे और भी उच्छृंखल हो गये थे। उनका उद्धतपन बहुत बढ़ गया था। उद्धत और निंद्य आचरणके कारण उनका पिताके साथ वैमनस्य हो गया। धीरे धीरे उनके पिताने उनको पैसोंकी सहायता देना भी बंद कर दिया। अभीतक यद्यपि उन्होंने अपनी जातिको परित्याग किया था, तो भी वे अपने देश-हीमें थे, परंतु अब पिताको परित्याग कर देनेके कारण धनके अभावसे उनको विदेश जानेके लिए विवश होना पड़ा। धर्म लोगोंकी रक्षा करता है, परन्तु मधुसूदनने इस धर्मको ही परित्याग कर दिया था। वे ईसाई अवश्य हो गये थे, परन्तु उन्होंने ईसाई-धर्मको ग्रहण नहीं किया था; क्योंकि जो धार्मिक होते हैं, वे कभी उच्छृंखल और अजितेन्द्रिय नहीं होते। इसका परिणाम यह हुआ कि उनको कहीं भी शान्ति नहीं मिली। अपने देशमें प्रवासी होकर रहनेकी अपेक्षा उन्होंने मद्रास जाकर सुख और शान्तिसे रहनेकी इच्छासे मद्रासका प्रवास किया। सन् १८४८ से १८५५ तक वे मद्रासमें रहे। मद्रासमें जानेके पश्चात् उन्होंने अपनी अवस्थाको उन्नत करते तथा सुख-शान्तिसे रहनेका संकल्प किया, परंतु वहाँ उनकी ये आशायें पूर्ण नहीं हुईं। पहले मद्रासमें उनका कोई सुपरिचित मित्र या हितैषी नहीं था। मद्रास जानेके कुछ दिन पहलेसे ही उनको पैसेकी तंगीने आ घेरा था। अधिक क्या उन्होंने अपनी पाठ्य-पुस्तकें बेंचकर स्टीमरका भाड़ा चुकाया था। जब वे मद्रास आये तब वे एक तरहसे खाली हाथ थे। एक तो भयंकर दारिद्र्य और इसपर रोगने उनपर अपना प्रभुत्व जमाया। मद्रासमें

आते ही वे भयंकर शीतला रोगसे ग्रसित हो गये । मधुसूदनदत्तकी इस समयकी शारीरिक तथा मानसिक अवस्थाका विचार करनेसे मनमें दुःख होता है । विधाता ही जाने उनको कितनी असह्य वेदना सहन करनी पड़ी होगी। मधुसूदन एक इज्जतदार कुलमें उत्पन्न हुए थे । उनके परिवारके सब आदमी सुखमें रहनेपर भी वे अपने कर्मफलसे सुदूर प्रवासमें आकर अनाथ और असहाय अवस्थामें नाना तरहके दुःख भोगते थे । स्वस्थ होनेपर वे धनोपार्जनका विचार करने लगे। इस दुर्दिनके समयमें सब लोगोंने उनको परित्याग कर दिया था और उन्होंने भी सबको त्याग दिया था, परंतु उन्होंने एकमात्र सरस्वती देवीकी उपासना नहीं छोड़ी थी । देवीने भी उनको नहीं त्यागा । मधुसूदनने पहले खीष्ट विद्यालयमें शिक्षकका काम लिया और क्रम क्रमसे साहित्य-चर्चा करना शुरू कर दिया । वे मद्रासके भिन्न भिन्न सामयिकपत्रोंमें लेख लिखने लगे। एक समय वे यशके लिए साहित्य-सेवा करते थे, अब आजीविकाके लिए साहित्य-सेवा करने लगे । अब वरदान देनेवाली सरस्वती देवी भक्तकी साधनासे प्रसन्न होकर उनको यश और आजीविका दोनों देने लगी। जब साहित्य-सेवाके द्वारा उनको भूखके लिए अन्न और प्यासके लिए पानी मिलने लगा, तथा साथ-ही-साथ प्रशंसा भी मिलने लगी, तब उनका हृदय कृतज्ञतासे परिपूर्ण हो गया। वे कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे सरस्वती देवीकी आराधना करने लगे।

मधुसूदनदत्तकी अनिवार्य इच्छाशक्तिके विषयमें हम पहले ही कह चुके हैं। मद्रास-यात्राके समय अपार दरिद्रतारूपी समुद्र उनकी उस इच्छाके सामने आ खड़ा हुआ था। मधुसूदनने उसका उल्लंघन करनेका प्रयत्न किया और उसके फलस्वरूप काव्यजगतमें 'कॅप्टीव लेडी' नामक एक क्षुद्र घोंघेकी सृष्टि हुई। इसमें 'संयुक्ताहरण' का वर्णन किया गया था। मधुसूदनकी रचना अँगरेजीमें होनेपर भी वह उनके हृदयके समान

देशी सामग्रीसे परिपूर्ण थी। देशके प्राचीन इतिहासमेंसे उन्होंने अपने प्रथम काव्यके नायक–नायिकाकी कल्पना की थी। देशी भाषामें रचना करनेका अभ्यास न होनेपर भी वे देशके प्राचीन इतिहासको भली-भाँति जानते थे–यह बात 'कॅप्टीव लेडी' बाँचनेसे भलीभाँति जानी जाती है। उस पुस्तकको लोग प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे, उसके विषयमें सम्मतियाँ भी अच्छी मिली थीं; परंतु मधुसूदनकी जन्मभूमि बंगालमें न तो उसका आदर हुआ और न उसके विषयमें अच्छी सम्मतियाँ ही मिलीं। उन्होंने कलकत्ताके समाचारपत्रों और कतिपय विद्वानोंके पास उक्त पुस्तककी एक एक प्रति समालोचनार्थ भेजी। उक्त पुस्तक जिन जिन पुरुषोंके पास भेजी गई थी, उनमेंसे भारतहितैषी महात्मा ड्रिन्कवाटर बेथुन साहब भी एक थे। बेथुन साहबने पुस्तकको पढ़-कर रचियताकी योग्य प्रशंसा की और उसके साथ उनको एक अमूल्य उपदेश भी दिया। अधिक क्या कहें, काव्यजगतमें मधुसूदनकी प्रबल इच्छाशक्तिको महात्मा बेथुन साहबने ही मार्ग दिखलाया था। बेथुन साहबने 'कॅप्टीव लेडी' में कल्पना तरंगिणीकी अद्भुत शक्तिका परि-चय पाकर सोचा कि यदि मैं इस तरंगिणीको बंगभाषा–रूपी भूमि-पर प्रवाहित करा सका, तो इससे बंग-भाषाका बड़ा उपकार होगा। इसी शुभ उद्देश्यसे उन्होंने मधुसूदनको वह हितकर उपदेश दिया था। महात्मा बेथुनका बहुमूल्य उपदेश भारतके प्रत्येक शिक्षित पुरुषके सुनने योग्य है। उनके उपदेशका सार यह था * कि "अवकाशके समयको

* लगभग साठ वर्ष पहले महात्मा बेथुन साहबने बंगालके युवकोंको सम्बोधन करके कृष्णनगरके कालेजमें पुरस्कार-वितरणके समय देशी भाषाओंकी चर्चाके संबंधमें जो सारग्राही उपदेश दिया था, वैसा ही उपदेश अभी कुछ दिन पहले बम्बईके सुयोग्य गवर्नर लार्ड नार्थकोटने देशी राजकुमारोंको दिया था। उनके भाषणका अंश इस प्रकार है–"I would impress upon you the great necessity of a thorough study of your own verna-

आनंदपूर्वक व्यतीत करने, अथवा अँग्रेजी-भाषामें विद्वत्ता दिखानेके लिए बीच बीचमें अँगरेजीमें काव्य-रचना करना कुछ बुरा नहीं है; परन्तु जिसमें लिखनेकी शक्ति है, वह यदि मातृभाषामें रचना करे, तो उसके द्वारा उसके देशका बड़ा उपकार होता है। साथ ही उसे यश भी अच्छा मिलता है। अधिक तो क्या? यदि स्वतंत्र रचना न कर सके तो केवल अच्छे अच्छे विषयोंका शुद्ध भाषान्तर करके भी देश और मातृभाषाका बहुत उपकार किया जा सकता है।"

---

culars. You have every reason for such study. I myself-though I can only read the works in an English partial translation read with utmost pleasure such works as. Mahabharata and Ramayana, and you here of this country in the East, in a land teeming with legend and tradition must possess treasures of Vernacular stores of learning of which most of us Europeans have not even heard the title. In the second place it is an almost necessary attribute of a gentleman that he should have a thorough knowledge of his own tongue and of the principal works composed therein. What would be thought in England of an average English gentleman who did hot know his Shakespeare and other ordinary English classics! You who will occupy relatively far more prominent position in your own Country than the ordinary English gentleman holds, should know its language and literature thoroughly. Lastly, I would remind you if you wish to learn English or any other language really well, a thorough knowledge of your own tongue is, to say the least, an immense advantage. You may pick up otherwise the same sort of colloquial knowledge of English that any of us do, of Gujarati or Marathi, but you cannot learn a foreign tongue thoroughly and Scientifically until you are absolute master of your own." मैं तुमसे आग्रहपूर्वक

मधुसूदनने शुभ समयमें उनका उपदेश ग्रहण किया था। अब वे बंगला-साहित्यकी सेवा करनेके लिए तैयार होने लगे। उन्होंने काशीदासकी रामायण और कृत्तवासीका महाभारत पढ़ना शुरू कर दिया। मधुसूदनने भिन्न भिन्न भाषाओंके अनेक काव्य पढ़े थे। वे जन्मसे ही कवि थे। इसके अतिरिक्त अनेक भाषाओंका साहित्यावलोकन करनेके कारण उनका हृदय विविध भावोंसे परिपूर्ण था। बंग-भाषामें शब्द-

---

कहता हूँ कि तुमको अपनी मातृभाषाका उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यकता है, यद्यपि मैं तुम्हारी पुस्तकोंको अँगरेजी-भाषामें पढ़ सकता हूँ, तथापि मैं रामायण, महाभारत आदि अनेक पुस्तकोंको बड़े आनंदके साथ पढ़ता हूँ। तुम लोग ऐसे देशके रहनेवाले हो, जो पूर्वकी कल्पित वार्ताओं और ऐतिहासिक कथाओंसे परिपूर्ण है; अतएव तुमको ऐसी पुस्तकोंके ज्ञान-भंडारसे अपनी मातृभाषाके भंडारको अलंकृत करना चाहिए, कि जिन पुस्तकोंका यूरोपीय लोगोंने कभी नाम भी न सुना हो। दूसरी बात यह है कि एक सभ्य पुरुषका उत्तम भूषण यह है कि वह अपनी मातृभाषा तथा उसमें रचित मुख्य मुख्य पुस्तकोंका परिपक्क ज्ञान रखता हो। तुम स्वतः सोच सकते हो कि जो अँगरेज शेक्सपियरके तथा अपनी भाषाके अन्य उत्तम ग्रंथोंका ज्ञान न रखता हो। उसके विषयमें इंग्लेंडमें क्या समझा जायगा? एक साधारण अँगरेज जो पदवी रखता है-जो हैसियत रखता है, उसकी अपेक्षा तुम अधिक हैसियतवाले हो, अतएव तुमको अपनी मातृभाषा और उसकी उत्तम पुस्तकोंका ज्ञान पूर्णरीतिसे प्राप्त करना चाहिए। अंतमें तुमको स्मरण रखना चाहिए कि जो तुम अँगरेजी या अन्य किसी विदेशी भाषाको अच्छी तरह सीखना चाहते हो, तो तुमको पहले अपनी मातृभाषाका पक्का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अन्यथा जिस प्रकार हमको गुजराती या मराठीका अल्प ज्ञान है, उसी प्रकार तुमको भी हमारी अँगरेजीका ऊपरी ज्ञान ही होगा। जबतक तुम अपनी मातृभाषामें प्रवीणता प्राप्त नहीं करोगे, तबतक तुम किसी विदेशी भाषाको पूर्ण रीतिसे नहीं सीख सकते।" महामति लार्ड नार्थकोर्टके भाषणमें हमारे शिक्षित युवकोंके विचारने या सीखने योग्य बहुत बातें हैं।

सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिए उन्होंने रामायण और महाभारतका आश्रय लिया, साथ ही संस्कृतकी ओर भी उनका ध्यान आकर्षित हुआ। मद्रासमें रहते समय वे विद्यार्थियोंकी नाईं अध्ययनमें तत्पर रहा करते थे। आजीविकाके लिए वे चार घण्टे विद्यालयमें शिक्षकका काम करते थे और शेष समयको विविध भाषाओंके सीखनेमें ही व्यतीत किया करते थे। सवेरे दो घंटे हिब्रू, दो पहरको दो घंटे ग्रीक, शामको २ घंटे तेलगू, संस्कृत तथा लैटिन और रातको २ घंटे अँगरेजी साहित्यका अध्ययन तथा आलोचना किया करते थे। इस प्रकार मद्रासके प्रवासमें उनकी साधनाका समय पूर्ण हुआ।

सन् १८५६ में वे कलकत्ता वापिस आये। परंतु वहाँ उनका ऐसा कोई आत्मीय या हितैषी नहीं था, जो उनको आदरके साथ बुलाता। जब वे मद्रासमें थे, उस समय उनके माता पिताकी मृत्यु हो चुकी थी। उनके पिताका घर जो खिदिरपुरमें था किसी दूसरेके अधिकारमें था। वे अपनी जन्मभूमिमें आकर परगृहवासी हुए। वे कलकत्तेमें फिर रहने लगे। कुछ दिनोंके पश्चात् उनको पुलिसमें क्लर्की मिली। यह काम उनको बहुत दिनोंतक नहीं करना पड़ा, वे शीघ्र ही दुभाषियाके पदपर नियुक्त किये गये। मधुसूदनदत्तको मालूम पड़ने लगा कि अब मैं कलकत्तेमें निश्चिन्त और स्थायीरूपसे रह सकूँगा। इधर उनके प्राचीन मित्र बाबू गौरदासकी सहायतासे उनको कलकत्तेकी शिक्षित समाजमें सम्मिलित होनेका अवसर प्राप्त हुआ। दुश्चरित्र होनेपर भी मधुसूदनमें कई गुण थे। वे विद्वान्, मधुरभाषी तथा रसिक पुरुष थे, इस कारण थोड़े ही दिनोंमें उनकी सबसे जान-पहिचान हो गई और शिक्षित समाजमें उनकी विद्वत्ता फैलने लगी। इसी समय प्रसिद्ध बेलगाछियर थियेटरके लिए उद्योग शुरू हुआ। बंगलामें नाटकीय अभिनय दिखानेके लिए यह नाटक-शाला स्थापित की गई थी। परंतु उस समय बंगलामें

नाटक ही कहाँ थे, जिनका अभिनय किया जाता ? इस कारण पहले प्राचीन रत्नावली नाटिकाका अनुवाद किया गया। बेलगाछिया थियेटरकी तजवीज और योजना बहुत सुन्दर रीतिसे की गई थी। इसमें खेल देखनेके के लिए कतिपय यूरोपियनोंको भी निमंत्रण दिया गया, अतएव रत्नावलीके अँगरेजी अनुवादकी आवश्यकता पड़ी। उसका अँगरेजी अनुवाद मधुसूदनने किया। रत्नावलीके इस अँगरेजी अनुवादको पढ़कर देशी तथा यूरोपीय सभी विद्वान् मुग्ध हो गये—उन्होंने उसकी खूब प्रशंसा की। उस समय बंग-भाषामें अभिनय कर दिखलाने योग्य एक भी नाटक नहीं था। इस अभावको मिटानेके लिए मधुसूदनने प्रयास करना प्रारंभ किया। इस प्रयासका पहला फल शर्मिष्ठा नाटक था। इस नव-प्रणीत नाटकको पढ़कर राजा प्रतापसिंह, ईश्वरचन्द्रसिंह, महाराजा बहादुर यतीन्द्रमोहन ठाकुर आदि अनेक नव-शिक्षित पुरुषोंको आश्चर्य हुआ। जिस समय मधुसूदनदत्तने इस नाटककी रचना की थी, वे उस समय पूरे साहब थे—धर्म, आचार-विचार, खानपान आदि सभी बातोंमें पूर्ण रीतिसे विजातीय थे; परंतु उनका हृदय ऐसे जातीय भावोंसे परिपूर्ण है, इस बातको पहले कोई नहीं जानता था। उन्होंने अपने पहले प्रयासहीमें बंग-भाषामें इतनी सुन्दर और भावपूर्ण रचना कर दिखलाई कि जिसकी पहले किसीको आशा भी नहीं थी। शर्मिष्ठाको पढ़कर नवीन समाज तो मुग्ध होगया था, परंतु प्राचीन पंडितसमाजकी दृष्टिमें उसमें व्याकरण, अलंकार आदिके अनेक दोष थे—अतएव उनके मतसे वह नाटक ही नहीं कहा जा सकता था। मधुसूदनने पंडित समाजका उपदेश ग्रहण किया। उनको अपनी शक्तिपर पूर्ण भरोसा था, अतएव उन्होंने उसमें यथोचित सुधार करके उसे रंग—मंचपर खेलने योग्य बना दिया। क्रम क्रमसे उनकी रचना मधुर और प्रतिभापूर्ण होने लगी। इस प्रकार मधुसूदनदत्तने साधनाके बलसे साहित्य—क्षेत्रमें अपूर्व सिद्धि प्राप्त की

थी । उनकी साधनाका प्रसंग इसी जगह पूर्ण होता है—उनकी सिद्धिके विषयमें आगे लिखा जायगा ।

× × × ×

रामदुलाल सरकारकी साधना ।

जगतमें सब लोग एक ही उद्देश्य—साधनके लिए नहीं आते । 'कर्म' हम सब लोगोंका साधारण उद्देश्य होनेपर भी वह प्रकार भेदसे कई तरहका होता है । सामाजिक विभाग—भेदसे कर्मोंके भेद किये जाते हैं । लोग अपनी अपनी शक्ति और रुचिके अनुसार भी कार्य करते हैं । रामदुलाल सरकारके जीवनसे इस बातका उज्ज्वल उदाहरण मिलता है । उन्होंने बाल्यावस्थामें भिक्षासे मिले हुए अन्नपर ही अपना निर्वाह किया था । धनका अभाव कैसा तीव्र और अन्नकी चिन्ता कैसी भयंकर होती है, इस बातको वे भलीभाँति जानते थे । तत्पश्चात् उन्होंने अपने पालनकर्त्ता मदनमोहनदत्तके सौभाग्य और सौजन्यको भी देखा । धीरे धीरे उन्होंने मदनमोहनके अनुग्रहसे उनके कार्यमें प्रवेश करके कलकत्तेके तत्कालीन व्यापारकी अवस्था जानी । "वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः"—"व्यापारमें लक्ष्मीका निवास होता है" इस बातकी यथार्थताको उन्होंने भलीभाँति जान लिया । पढ़ लिखकर पंडित होनेकी उनकी इच्छा नहीं थी । व्यापार करना, द्रव्य कमाना, और काम करके अपने जीवनको सार्थक बनानेकी आशा बहुत दिनसे उनके हृदयमें निवास करती थी; कर्मक्षेत्रमें वे व्यापारका गूढ़ रहस्य सीखते थे । "व्यापारमें लक्ष्मी निवास करती है" इस वाक्यका अर्थ वे अच्छी तरह जानते थे और उस वाक्यको ही उन्होंने अपने जीवनका मूलमंत्र बना लिया था । अंतिम जीवनमें इस मंत्रको सिद्ध करके वे इस महामंत्रकी यथार्थताको सिद्ध कर गये हैं ।

पूँजी थोड़ी हो तो भी उससे व्यापार करनेमें संकोच नहीं करना

चाहिए; क्योंकि यदि उसके द्वारा विचारपूर्वक व्यापार चलाया जाय, तो उतनी ही पूंजीसे निश्चित लाभ मिल सकता है। रामदुलालका ऐसा दृढ़ विश्वास था और इस विश्वासपर ही आधार रखकर उन्होंने उपवास या आधे पेट भोजन करनेका दुःख स्वीकार करके, पाँच रुपया महीना वेतन-मेंसे भी थोड़ा थोड़ा बचाकर सौ रुपया इकट्ठा किया था। इन रुपयोंसे उन्होंने लकड़ीका व्यापार करना शुरू किया। यद्यपि बहुत छोटे साँचेसे काम प्रारंभ किया गया था, परंतु इससे ही उनकी प्रकृतिकी पहिचान होती है। यही रामदुलाल सरकारकी "वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः" इस मूलमंत्रकी साधनाका प्रथम अनुष्ठान था।

रामदुलाल बाल्यावस्थासे ही असाधारण परिश्रमी थे, वे यद्यपि एक छोटे कार्यपर नियुक्त थे, परंतु वे उसे बहुत सावधानी और उत्तमताके साथ किया करते थे। सुंदर महलोंके दीवानखानोंमें पंखाके नीचे बैठे हुए साधारण वेतन पानेवाले क्लर्क बहुत करके अपने कार्यको अपार परिश्रमवाला और दुःखदायक समझकर अपने भाग्यकी निंदा करते और मालिकके कार्यमें लापरवाही दिखलाते हैं; साथ-ही-साथ वे एक जगहकी गुलामीसे छूटकर दूसरी जगहकी गुलामी प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न भी करते हैं। परंतु रामदुलाल सरकार इस श्रेणीके कर्मचारी नहीं थे, वे अपने कार्यको अपना कर्त्तव्यं समझकर करते थे। एक बार एक आदमीने किसी विजयी सेनापतिसे पूछा—" महाशय! आपके समान ऐश्वर्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है?" इसके उत्तरमें उसने कहा—" यह बात बहुत सहज है। जिस युक्तिसे आप मेरे समान ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हैं उसे मैं अभी बतलाये देता हूँ, परंतु आपको एक शर्त करना पड़ेगी। उस शर्तके अनुसार कार्य करनेसे आप मेरे इस समस्त ऐश्वर्यके अधिकारी बन जायँगे।" उस मनुष्यको बड़ा विस्मय हुआ; उसकी उत्कण्ठा बढ़ने लगी। कुछ देरमें सेनापतिने कहा—" वह शर्त

यह है कि आप और मैं दोनों दस-बारह हाथके अंतरसे खड़े हो जायँ; मैं अपनी तीक्ष्ण तरवारको हाथमें लेकर पन्द्रह वार तुम्हारे ऊपर आक्रमण करके तुम्हे मारनेकी चेष्टा करूँगा। इसी प्रकार इससे भी अधिक वार बंदूकसे मारनेका प्रयत्न करूँगा। जो मेरे इन सब आक्रमणोंसे आप अपनी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे तो यह मेरा सारा वैभव आप अपना ही समझिये।" वह मनुष्य इस भयंकर बातको सुनकर घबरा गया और भयभीत होकर कहने लगा—"नहीं महाशय! मुझे ऐसे ऐश्वर्यकी जरूरत नहीं।" तब वह वीर सेनापति कहने लगा—"देखो, मैंने अनेक रणक्षेत्रोंमें अपना कर्त्तव्य समझकर तथा स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके इससे भी अधिक विपद्जनक अवस्थाओंमें कांम किया है; देखो, मेरे हाथ और छातीपर अनेक चिह्न हैं। कितने बार मैं मृत्युमुखसे बचकर आया हूँ, इसकी गिन्ती नहीं है। मैंने जीवन और मरणके बीच साधना की है और उस साधनाके द्वारा ही यह सिद्धि पाई है।"

सादृश्यता होनेपर यदि छोटे बड़ेकी तुलना की जा सकती हो तो हम वीर सेनापतिके भाग्यलाभके साथ रामदुलाल सरकारके भाग्यलाभकी तुलना करते हैं। वे भी सेनापतिके समान भाग्यलक्ष्मीकी कृपा चाहनेवाले युवकोंसे कह सकते हैं कि—"भाई! जो जेठ-बैसाखकी कड़ी धूपमें नित्य आठ दस गाँवोंको पैदल आ-जा सकते हो, जो श्रावण-भादोंकी मूसलधार वर्षामें, चोर-डाँकुओंसे अराक्षित घने जंगलमें रात्रिके समय अपने स्वामीके धनकी रक्षा कर सकते हो, जो गंगाके अथाह जलमें पड़कर अपने स्वामीके स्वार्थ और अपने जीवनकी रक्षा कर सकते हो, जो अपार सम्पत्तिके प्रलोभनको—जिसके लेनेमें जरा भी कलंक लगनेका भय न हो—त्याग सकते हो, तो तुम हमारे इस अतुल ऐश्वर्य्यके अधिकारी होनेके योग्य पात्र हो!" हम पूछते हैं कि कितने युवक इस विषयमें सम्मत होंगे? अनेक मनुष्य इस बातको सुन-

कर सिर खुजलाते हुए कहेंगे कि—"पहले प्राण, पीछे पैसा" यदि प्राण रहेंगे, तो भिक्षा माँगकर भी खा लेंगे?" जो इस प्रकार डरपोक या कायर हों वे क्या कर सकते हैं?

रामदुलाल पाँच रुपया मासिकपर नौकर थे, परंतु वे उस छोटे काम-को भी सरलता और निष्ठापूर्वक करते थे। दमदमा और बराकपूरकी छावनीके साहब लोगोंके साथ उनका कारबार चलता था। उनके पाससे पैसा वसूल करनेके लिए रामदुलालको अक्सर कलकत्तेसे पाँव पाँव आना जाना पड़ता था। वैसाखकी धूप, श्रावणकी वर्षा और पौष महीनेकी ठंड भी उनके कर्त्तव्यमार्गमें कभी बाधा नहीं डाल सकी। उस समय कलक-त्तासे बराकपुर जानेका मार्ग बहुत जोखिमका था। सुना जाता है कि एक बार रामदुलाल बिलका पैसा वसूल करके कलकत्ते आ रहे थे, आते समय दमदमाके पास रात्रि हो गई। मालिकका रुपया कहीं चोर-डाकु-ओंके हाथ न पड़ जाय, इस आशंकासे वे रास्तेके किसी घरमें नहीं ठहरे, एक वृक्षके नीचे दरिद्र मुसाफिरके वेषमें पड़ रहे। इस प्रकार उन्होंने मालिकके धनकी रक्षा करनेके लिए रातभर अनेक तकलीफें सहन कीं। क्या यह उनकी कर्त्तव्यनिष्ठाकी निशानी नहीं है? इसके पश्चात् जहाज-पर मालिकका काम करते समय वे दो बार पानीमें डूबे थे। उन्होंने दोनों बार तैरकर अपनी प्राणरक्षा की थी। इन सब बातोंसे जाना जाता है कि कर्त्तव्यतत्परता उनके चरित्रका एक महान् गुण था। इस बातके कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जो ऐसा कर्त्तव्यपरायण होता है, वह सत्यपरायण और निर्लोभी भी होता है। रामदुलाल सरकारकी सत्यनिष्ठा और निर्लोभीपन ही उनके सौभाग्यका मूल कारण हुआ। जिस घटनासे उनपर भाग्य-देवता प्रसन्न हुआ था, वह इस प्रकार है। रामदुलाल कुछ विद्वान् नहीं थे। पुस्तकें आदि पढ़कर दूसरोंके ज्ञानको वे प्राप्त नहीं कर सके थे। उनका सारा ज्ञान

उनके ऐश्वर्य्यके सदृश उनका स्वतः उपार्जन किया हुआ था। कर्मक्षेत्रके कठोर प्रसंगोंसे उन्होंने लोकचरित और व्यापारकी शिक्षा ग्रहण की थी। जब वे जहाजपर काम करते थे, उस समय उन्होंने सामुद्रिक व्यापार संबंधी अनेक बातोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया । वे जलमें डूबे हुए जहाजोंकी कीमत आदिका अनुमान करनेमें बहुत कुशल थे और इसी विषयकी कुशलताके कारण भविष्यमें उनका बड़ा उपकार हुआ । हम जिस समयकी बात लिख रहे हैं, उस समय टालामें जलमें डूबी हुई जहाजोंका नीलाम होता था। टाला नीलामके लिए प्रसिद्ध था। एक बार मदनमोहनदत्तने रामदुलालको चौदह सौ रुपया देकर जहाज खरीदनेके लिए टाला भेजा। परंतु रामदुलाल जिस समय वहाँ पहुँचे, उस समय नीलाम हो चुका था। इससे उनको कुछ खेद हुआ, परंतु उसी दिन एक और डूबी हुई जहाजका नीलाम निकला। उस जहाजके विषयमें वे पहलेसे ही जानते थे। नीलामके समय जहाजकी कीमतके हिसाबसे मूल्य बहुत ही कम लगा। रामदुलालने अपने जोखिमपर मालिककी सम्मति लिए बिना ही उस जहाजको खरीद लिया। नीलाम हो चुकनेके पश्चात् एक धनी अँगरेज व्यापारी वहाँ आ पहुँचा। उसके आनेके पहले ही जहाजोंका नीलाम हो चुका था। उसे खोज करनेपर मालूम हुआ कि एक बंगाली व्यापारीने जहाज नीलाम लिया है। उसने रामदुलालसे मिलकर जहाज खरीदनेकी इच्छा प्रगट की। रामदुलालने एक लाख रुपया नफा लेकर जहाज बेंच डाला। रामदुलालके स्वामीको इस क्रय-विक्रयकी कुछ भी खबर नहीं थी। घर आते ही उन्होंने सब रुपया मालिकके आगे रखकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मदनमोहन योग्य नौकरके योग्य स्वामी थे, उन्होंने यह नफाका रुपया स्वतः न लेकर रामदुलालको दे दिया। यदि रामदुलाल चाहते तो मालिकको प्रकट किये बिना ही सारी नफा स्वतः ले सकते थे। परंतु उनकी प्रकृति एक भिन्न प्रकारकी थी । ऐसी अवस्थामें

लोभको दबानेके लिए कितने मनोबलकी आवश्यकता है ? इसी असाधारण चरित्रबलके लिए मदनमोहनने उनको पुरस्कार दिया था। मालिकके दिये हुए इस पैसेसे उनके सौभाग्यरूपी महलकी मानो नींव स्थापित हुई। जो बालक उपवास या आधे पेट भोजन करनेके दुःखको सहकर सौ रुपया इकट्ठा करके " वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः " इस मंत्रकी साधना करनेमें प्रवृत्त हुआ था, वही आज युवावस्थामें भगवत्कृपासे एक लाख रुपयाकी पूंजीसे व्यापार करने लगा। इसके पश्चात् उनका व्यापार कई देशोंमें फैल गया था। बंदर, बंदरपर उनकी जहाजें जाती थीं। इस उत्तम स्थितिमें भी वे कभी एक दिन परिश्रम किये बिना नहीं रहते थे। देश और ब्राह्मण जातिपर उनकी अगाध भक्ति थी। अपने जीवनमें उन्होंने कभी सत्य और कर्त्तव्यके मार्गको नहीं छोड़ा। इस प्रकार कठिन साधनाके द्वारा रामदुलालने भाग्य—देवीको प्रसन्न करके सिद्धि प्राप्त की थी। साधनाके बिना सिद्धि कहाँ मिल सकती है ?

* * * *

सर जमसेदजी जीजीभाईकी साधना।

हमारे देशके अनेक लोग समझते हैं कि कुछ पूंजी लेकर माल खरीदने और उसे दूकानमें रखकर बैठ जानेका नाम ही व्यापार करना है; वे यह भी समझते हैं कि व्यापार करनेसे लाभ होता है। ऐसी धारणा करके और केवल पाटीगणितकी सहायतासे आंकड़ा निकालकर अनेक इज्जतदार व्यापारियोंके लड़के व्यापारमें पड़कर नुकसान उठा बैठते हैं; और अंतमें कहने लगते हैं कि व्यापार करना इज्जतदार आदमियोंका काम नहीं, गंधीगर या आटे दालका व्यवसाय करनेवाले मोदियोंका काम है—वे ही उससे लाभ उठा सकते हैं। जब हम इन नुकसान उठानेवाले लोगोंकी आरंभिक कार्य-पद्धतिको देखते हैं, तब हमको मालूम पड़ता है कि उनके

उक्त तिरस्कारसूचक मतकी कुछ कीमत नहीं है । क्योंकि इज्जतदार मनुष्य होनेके कारण उनको हानि नहीं उठानी पड़ती है, वरन व्यापारी-शिक्षा और ज्ञानकी हीनताके कारण ही उन्हें हानि उठानी पड़ती है ।

अधिकांश लोग इस बातको भूल ही जाते हैं कि जिस प्रकार साहित्य, शिल्प और शास्त्र, शिक्षापर आधार रखते हैं, उसी प्रकार व्यापार-धंदा भी शिक्षाकी अपेक्षा रखता है । इसका कारण यह है कि हमारे देशमें जिस प्रकार साहित्य, शिल्प और शास्त्रकी शिक्षाके लिए विद्यालयोंकी व्यवस्था है, उस प्रकार व्यापारी-शिक्षाके लिए नहीं है । यह कल्पना किसीके मनमें नहीं उठती कि व्यापारकी शिक्षा प्राप्त करनेकी भी आवश्यकता है । व्यापारी-शिक्षाके लिए कोई विद्यालय नहीं है, इस कारण कोई व्यापार नहीं सीखते हैं, यह बात नहीं, किन्तु वेतन देकर और विद्यार्थी बनकर व्यापारी-विद्यालयोंमें अभ्यास करनेकी प्रथा यूरोप और अमेरिकामें भी आधुनिक है । दूकान ही व्यापार सीखनेकी पाठशाला और बाजार ही व्यापारी चीजें पहिचाननेकी मुख्य जगह है । धनवान् व्यापारियोंके लड़के साधारण लिखना पढ़ना सीखनेके पश्चात् अपने पिताकी दूकानमें बैठकर व्यापारी ज्ञान प्राप्त करते हैं, गरीब लोगोंके लड़के आजीविकाके लिए इन सब दूकानोंमें साधारण वेतनपर नौकरी करके उदर निर्वाह और व्यापारी-शिक्षा दोनों प्राप्त करते हैं । इससे मालूम पड़ता है कि विद्यालयोंके समान व्यापारी-शिक्षा देनेवाली पाठशालायें न होनेके कारण ही व्यापारी-शिक्षाका मार्ग नहीं रुका हुआ है । यूरोपमें शिल्प, और व्यापारी स्कूल होनेपर भी उम्मेदवारीकी प्रथा प्रचलित है । कई दूकानदार बालकोंको केवल खाना-कपड़ा देकर ही उम्मेदवारीपर रखते हैं । ये उम्मेदवार आवश्यकतानुसार व्यापारीके सब कामोंमें सहायता दिया करते हैं । यह काम नहीं करूँगा, वह नहीं करूँगा, आदि कहकर वे अभिमान करके बैठ नहीं सकते । काममें निपुण होनेके

पश्चात् कुछ समयतक थोड़े वेतनपर नौकरी करके वे उनसे जुदे हो जाते हैं और फिर स्वतंत्र रीतिसे व्यापार करने लगते हैं। गरीब बालकोंके लिए यह प्रथा बहुत हितकारक है।

अपने देशमें उम्मेदवारीका कायदा वकीलोंके आफिसोंमें दिखाई देता है, परंतु वह साधारण रीतिसे जैसा चलना चाहिए, वैसा नहीं चलता। अपने देशके मध्यम स्थितिके लोग और विशेषकरके श्रीमान् लोग झूठे अभिमानके कारण अपने लड़कोंको उम्मेदवारी नहीं करने देते, जिन युवकोंकी व्यापार-धंदेमें तीक्ष्ण बुद्धि हो-जिनकी उसमें चञ्चल बुद्धि हो, उनको व्यापार-धंदेमें उम्मेदवारी अवश्य करनी चाहिए। इसका परिणाम बहुत लाभदायक होता है। प्रसिद्ध पारसी गृहस्थ सर जमसेदजी जीजीभाईका जीवन इसका एक उत्तम दृष्टान्त है।

जमसेदजी जीजीभाईके माता-पिता उनकी बाल्यावस्थामें ही मर गये थे। उनके मा-बापकी मौजूदगीमें फरामजी नशरवानजी नामक एक व्यापारीकी लड़कीके साथ उनका विवाह संबंध हुआ था। दूसरा कोई समीपी सम्बन्धी न होनेके कारण माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् वे ससुरालमें जाकर रहने लगे। ससुरालमें रहकर उनको पढ़ने लिखनेमें जितनी चाहिए उतनी सुविधा नहीं हुई। वे गुजराती-भाषा लिख पढ़ सकते थे और थोड़ी बहुत अँगरेजी भी जानते थे। इसके पश्चात् वे अपने श्वशुर फरामजीकी दूकानमें रहकर व्यापार सीखने लगे। व्यापारसम्बन्धी अनेक तत्त्व और रहस्य उन्होंने अपने श्वशुरके हाथके नीचे रहकर सीखे। परन्तु उनको इस जगह अधिक समय तक नहीं रहना पड़ा। सन् १७९९ ई० में जमसेदजी १६ वर्षकी उमरमें एक पारसी व्यापारीके हाथके नीचे गुमास्ता होकर चीन देशको गये। जाते समय वे अपने साथ अपना सर्वस्व १२०) भी लेते गये। श्वशुरके घरसे उनका खाना पीना चलता जाता था और उनकी ओरसे मिलनेवाले साधारण वेतनमेंसे उन्होंने यह रुपया इकट्ठा किया था।

इस बातपरसे उनके जीवनकी उस समयकी पैसासंबंधी स्थितिका पूरा पता मिलता है। उनका जीवनचरित पढ़नेसे भलीभाँति जाना जाता है कि वे शिक्षासंबंधी उत्तम योगोंको कभी हाथसे नहीं जाने देते थे। चीन देशमें रहते समय सेठका काम परिश्रम और यत्नपूर्वक करनेके पश्चात् उनको जब अवकाश मिलता था, तब वे वहाँकी व्यापारिक अवस्थाको खूब ध्यानपूर्वक देखा करते थे। भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाले किस मालकी खप चीनमें अधिक होती है और वह कितने नफेपर वहाँ बेंची जा सकती है, बाजारकी सब चीजोंके मूल्यका उतार-चढ़ाव किस अवस्थामें किस प्रकार होता है, इत्यादि समस्त बातोंका ज्ञान प्राप्त करने लगे। इसके सिवा उस देशके लोगोंके रीति-रिवाजका भी उन्होंने अनुसंधान किया। सफल व्यापारी होनेके लिए जिस प्रकार मालके गुण-दोष जाननेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार बाजारकी अवस्था और ग्राहकोंके रीति-रिवाज भी जाननेकी आवश्यकता होती है। जमसेदजीने बम्बईमें श्वशुरकी दूकानपर इस विषयका जो सामान्य ज्ञान प्राप्त किया था, वह अब बढ़ने लगा। चीनकी व्यापारिक सुविधाओंको देखकर उनको वहाँ व्यापार करनेकी इच्छा हुई। वे मन-ही-मन अपना संकल्प दृढ़ करने लगे और साथ ही उसके लिए साधना भी करने लगे। इतनी छोटी उमरमें वे स्वतंत्ररूपसे विदेशमें रहकर अपने सामर्थ्यसे पैसा पैदा करते थे। विदेशमें जाति और संबंधियोंकी दृष्टिसे बाहर होकर अनेक युवक क्या करते हैं? वे आमोद-प्रमोद करते हैं और अपने चरित्र-पर पानी फेरकर इंद्रियसुख भोगते हैं। विदेशमें हाथमें पैसा आनेपर अनेक युवक ऐसा ही करते हैं, परंतु जमसेदजीने कभी एक दिन भी भूलकर कुमार्गपर पैर नहीं दिया। वे जानते थे कि चरित्र और आरोग्य, ये दो ही गरीबोंके परम सहायक हैं; अतएव वे इनकी सदैव यत्नपूर्वक रक्षा किया करते थे। मालिकका कार्य परिश्रम और यत्नपूर्वक करने, तथा विदेशी व्यापारसंबंधी अच्छी जानकारी होनेके

कारण वे थोड़े ही दिनोंमें सर्वप्रिय तथा विश्वासपात्र बन गये । कुछ समयके पश्चात् उनका सारा माल बिक गया और वे स्वदेश लौट आये। इस बार जमसेदजीकी कर्तव्यनिष्ठा, सच्चरित्रता और व्यापारिक ज्ञानकी चर्चा उनकी जातिमें खूब फैल गई थी। अपने देशमें वापिस आनेके पश्चात् जमसेदजी चीनमें स्वतः व्यापार करनेकी आशासे पूंजी इकट्ठी करने लगे। परदेशी व्यापार सौ दो सौ या दो चार हजार रुपयोंमें नहीं होता। माल खरीदने तथा जहाज भाड़े करनेमें बहुत रुपयोंकी आवश्यकता होती है। परंतु वे बहुत गरीब थे । चीन जानेके पहलेकी उनकी आर्थिक स्थितिका हाल पाठक जानते ही हैं। यह सच है कि वे इस बार चीन जाकर व्यापार धंदेका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर आये थे, परंतु वेतनमेंसे बचे हुए कुछ रुपयोंके सिवा उनके पास और कुछ नहीं था। ऐसी स्थितिमें परदेशी व्यापार जैसे महान् कामको करनेके लिए प्रयत्न करना अनेकोंकी दृष्टिमें उनका पागलपन अथवा धृष्टताका ही काम था। परंतु जमसेदजीके मनमें ऐसे विचार नहीं आये, वे एकाग्र मनसे पूंजी इकट्ठी करनेका प्रयत्न करने लगे। भगवानकी कृपासे जमसेदजीकी मिहनत सफल हुई। थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने ३५ हजार रुपया इकट्ठा कर लिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि जमसेदजीका यह प्रयास प्रशंसाके योग्य था । जिन लोगोंने निर्धन होनेपर भी ऐसे उद्योगी और चरित्रवान् पुरुषके लिए इतना अधिक रुपया दिया वे भी कम प्रशंसाके पात्र नहीं हैं। जिस देश और जिस जातिमें ऐसे गुणग्राही पुरुष होते हैं, उस देश और उस जातिको धन्य है ! जमसेदजीको इतनी बड़ी रकम उनके चरित्र, ज्ञान और परिश्रमशीलताके कारण जिन महाजनोंने उधार दी थी, उनको वास्तवमें महाजन ही समझना चाहिए। जमसेदजीने यह रकम समयपर व्याजसहित कौड़ी कौड़ी चुका दी।

जमसेदजीने सब मिलकर कुल पाँच बार चीनकी यात्रा की थी। चौथी यात्रामें बम्बई वापिस आते समय उनपर भारी विपत्ति आ पड़ी

थी । उस समय अर्थात् १९ वीं शताब्दीके प्रारंभमें अँगरेज और फ्रेंचोंके बीच लड़ाई हो रही थी । जमसेद्जी जिस जहाजपर सवार थे, वह जब सीलोनके पास आया, तब फ्रेंचोंके हाथ पकड़ा गया । जमसेद्जीका बहुतसा रुपया और माल उस जहाजमें भरा था । जमसेद्जी और दूसरे यात्रियोंने फ्रेंच सेनापतिसे किनारेपर उतरनेके लिए बहुत नम्रतापूर्वक विनय की, परंतु उनकी वह विनय पूर्ण नहीं हुई । जमसेद्जी उस जहाजमें कैदी होकर फ्रेंचोंके साथ केप गुडहोपतक गये । रास्तेमें उनको अनेक दुःखोंका सामना करना पड़ा । भला, कैदियोंको सुख कहाँ रक्खा है ? वहाँ पहुँचनेपर भी वे दुःखोंसे मुक्त नहीं हुए । फ्रेंच कप्तानको संदेह था कि अँगरेज, पारसी और मुसलमान यात्री उनके मारनेके लिए प्रपंच कर रहे हैं । इसी संदेहपर वे कैद किये गये थे । बंदी होनेपर उनके दुःखका पारावार नहीं रहा ।

सारा दिन बीत जानेपर जमसेद्जीको पाव सेर चाँवल और एक विसकुट खानेको मिलता था । इस प्रकार नाना तरहकी तकलीफें सहकर वे अंतको पहिरनेके वस्त्रमात्र लेकर कलकत्ते आये । इस यात्रामें उनको शारीरिक और मानासिक कष्टके अतिरिक्त आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी, परंतु इससे उनका उत्साह भंग नहीं हुआ । उनका जीवनचरित पढ़नेसे विदित होता है कि इसके पश्चात् उन्होंने एक बार और भी चीनकी यात्रा की और अंतमें सन् १८०७ में वे स्थायी रूपसे बम्बई शहरमें कारोबार चलाने लगे । थोड़े ही दिनोंके भीतर उनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी । वे चाहते तो अकेले कारोबार चला सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा न करके अपना काम काज बड़ी बड़ी *अँगरेजी कम्पनियोंके* सदृश चलानेके विचारसे कंपनी स्थापित की । इस कम्पनीमें कई हिस्सेदार थे, परंतु वे स्वतः इसकी देखरेख करनेमें कभी आलस्य नहीं करते थे । बम्बईमें स्थायीरूपसे रहनेके पश्चात्

कुछ वर्षोंके भीतर ही उन्होंने बहुत द्रव्य कमा लिया। सन् १८९२ में उन्होंने दो करोड़ रुपया संग्रह किया था। जमसेद्जी अब लक्ष्मीके लाड़ले पुत्र थे। उनके व्यापारमें तो लक्ष्मी बसती ही थी, परंतु अब चंचल लक्ष्मी उनके घरमें अचल होकर रहने लगी। धनवान् व्यापारियोंकी कथा लोग बहुत आग्रह और भक्तिभावसे सुनते हैं। अनेक लोगोंका विश्वास है कि श्रीमान् लोगोंकी साधनाका वृत्तान्त सुननेसे लक्ष्मीजी प्रसन्न होती हैं। यदि ऐसा है तो हम आशा करते हैं कि जमसेद्जीने लक्ष्मीजी की प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए जो साधनाकी है, उस पुण्य-प्रसंगको स्मरण करके दरिद्र भारतके युवकगण व्यापार-धंदेमें प्रवृत्त होकर सफल होंगे।

एकके पश्चात् एक—जैसे राजा राममोहन राय, महाराजा रामवर्मा, सर माधवराव, सर सालारजंग, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, सर सैयद अहमद, तारानाथ तर्कवाचस्पति, सर मधुस्वामी अय्यर, श्यामाचरण सरकार, अक्षय-कुमारदत्त, मधुसूदनदत्त, रामदुलाल सरकार और सर जमसेद्जी जीजी-भाईकी साधनाका पुण्यप्रसंग वर्णन किया गया है। कर्मक्षेत्रमें—साधन-भूमिमें साधकगण इन कर्मवीर पुरुषोंकी पुण्यकथाको स्मरण करके आशा-वान् होंगे। उनकी साधनाकी मूलमें दृढ़ता और उनके संकल्पोंके भीतर इच्छाशक्तिकी प्रबलता दिखाई देगी। यहाँ हम उनकी साधनाके पुण्यप्रसँगके अंतमें एक बार फिर उनके कार्यकलापकी आलोचना करते है। महापुरुषोंके चरितोंकी आलोचना करते समय हमें उनसे कई शिक्षायें मिलती हैं। आशा, विश्वास, साहस और निश्चयबुद्धिका चिन्ह उनके प्रत्येक काममें दिखाई देता है। भगवत्कृपाके ऊपर, अपनी शक्तिके ऊपर और कर्त्तव्यकी योग्यता तथा उपकारिताके ऊपर उनका दृढ़ विश्वास रहता है। वे प्रत्येक कार्यमें—आशामें ईश्वरका अभय और आश्वासन वाणी सुनते हैं। महापुरुष वीर पुरुष होते हैं। उष्णता-

रहित अँगार जिस प्रकार अग्नि नहीं हो सकता, उसी प्रकार साहसहीन व्यक्ति भी महापुरुष नहीं हो सकता। महापुरुष साहसकी सहायतासे समस्त विघ्न-बाधाओंको लाँघ जाते हैं—कोई भी कठिनाई उनके सामने नहीं टिक सकती। वे निश्चय बुद्धिकी सहायतासे—जीवन संकटमें पड़नेपर भी—निरंतर साधनामें तत्पर रहते हैं। महापुरुष उनके उत्तम गुणोंसे अलंकृत होते हैं।

"विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना,
आरब्धमुत्तमगुणाः सततं वहन्ति।"

बारंबार विघ्न आनेपर भी उत्तम—गुणसम्पन्न पुरुष अपने आरंभ किये हुए कामको निरंतर किया करते हैं। मनुष्य स्त्रीके द्वारा जन्म ग्रहण करके मानो स्वतःही पुत्ररूपसे प्रकट होते हैं। उसी प्रकार महापुरुष भी प्रकृतिके गर्भमें देह बदलकर पुनः जन्म धारण करते हैं, इसी लिए वे अजर अमर होकर सब शुभ कामोंका विचार तथा अनुष्ठान करते हैं। महापुरुषोंके जो लक्षण हैं—जो गुण हैं, वे सब ध्यानपूर्वक देखनेपर इस पुस्तकमें वर्णित महापुरुषोंके चरित्रोंमें दिखाई देंगे। उनकी साधनामें समस्त गुण और भावोंकी प्रबलता स्पष्टरूपसे दृष्टि पड़ेगी। हम भी उनके उज्ज्वल आदर्शसे उत्साहित होकर, कर्मक्षेत्रके भीतर आशापूर्ण साधनामें तत्पर होंगे और उनके समान "मंत्र साधन या देहपात" इस महावाक्यका उच्चारण करना सीखेंगे।

चौथा प्रकरण।

सिद्धि।

साधना पुरुषार्थपर आधार रखती है, परन्तु सिद्धि दैवके आधीन है। भगवानका नाम सिद्धिदाता है,—वास्तवमें भगवान् ही सिद्धि देते हैं; इसी लिए साधकगण सिद्धिको दैवाधीन मानते हैं। " कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। " मनुष्यको केवल कर्म करनेका अधिकार है, उसके फलका नहीं। किसी भी काममें सफलता प्राप्त करना मनुष्याधीन नहीं है। मनुष्योंको अपना कर्त्तव्य समझकर काम करना चाहिए—उसे सिद्धि-असिद्धि या जय-पराजयकी चिंता करना उचित नहीं। यही शास्त्रका उपदेश है—यही गीताका मत है। हम सच्चे साधकोंको क्या कर्मक्षेत्र, क्या धर्मक्षेत्र सभी जगह इसी प्रकार साधना करते हुए पाते हैं। वे जिस प्रकार सिद्धिको दैवाधीन मानते हैं, उसी प्रकार उनको यह भी विश्वास रहता है कि सच्ची साधना कभी विफल नहीं होती—कभी व्यर्थ नहीं जाती। यह उनका अंध विश्वास नहीं है, कारण कि " Heaven helps those who help themselves." जो स्वतः परिश्रम करते हैं उनको ईश्वर सहायता देता है। उनको ऐसा विश्वास भी रहता है कि ईश्वर भक्तके अधीन है। सच्चा साधक और भक्त इन दोनोंका अर्थ एक ही है, इसी कारण सिद्धिको दैवाधीन माननेवाले धर्मवीर या कर्मवीर पुरुषोंकी साधनामें कोई विघ्न नहीं आता; इतना ही नहीं, परंतु महापुरुष अपने सब कामोंमें देश, काल और पात्रकी योग्यताका विचार रखते हैं; और इसी कारण वे अपने जीवनमें साधनाकी सिद्धि न पानेपर भी निराश अथवा भग्नोत्साह नहीं होते। जगत् और जीवकी अनन्त उन्न-

तिके लिए वे ईश्वरीय आकाशवाणी सुनते हैं। इस विशाल विश्वरूपी राज्यके उत्तराधिकारत्वमें उनका आश्चर्यजनक विश्वास रहता है। संसारी और विषयी लोग पुत्र-पौत्रादिके लिए धन रख जाते हैं, परंतु महापुरुष भविष्यमें उत्पन्न होनेवाली प्रजाके लिए साधना करते हैं। यदि उनके जीवनमें संकल्पका बीज साधनाकी सहायतासे उग न निकले तो भी वे उस बीजकी शक्तिमें संदेह नहीं रखते। उनको विश्वास रहता है, कि हमारा बोया हुआ बीज समयपर अवश्य अङ्कुरित होगा और पीछे पत्र-पुष्पोंसे सुशोभित होकर योग्य फल देगा। वे अपने इस विश्वासको देखे हुए के समान सत्य मानते हैं। धर्मक्षेत्र या कर्मक्षेत्रके उच्चश्रेणीके साधक सिद्धिके विषयमें ऐसे ही विचार रखते हैं।

धर्मक्षेत्रमें धर्मप्रवर्त्तक और कर्मक्षेत्रमें साहित्य, शिल्प और विज्ञानवेत्ता पंडित उच्चश्रेणीके साधक कहे जाते हैं। धर्मप्रवर्त्तकोंके जीवनचरित पढ़नेसे जाना जाता है कि वे अपने जीवनमें अपनी साधनाकी सिद्धि बहुत कम अंशमें देख पाते हैं। उनके मरनेके पश्चात् बहुत समयमें उनके प्रवर्तित धर्मको साधारण लोग ग्रहण करते हैं। बुद्धदेव अपने जीवनमें अपने प्रवर्तित धर्मका अधिक प्रसार नहीं देख सके, परन्तु उनकी मृत्युके बहुत समय पश्चात् प्रियदर्शन अशोकके साम्राज्यके समय बौद्ध-धर्म भारतवर्षका मुख्य धर्म बन गया था। ख़ीष्ट-धर्मके विषयमें भी ऐसा ही कह सकते हैं। महात्मा ईसाने जब शूलीपर प्राणत्याग किया, उस समय उनके कितने शिष्य थे? अपनी देहका रक्त बहाकर उन्होंने जिस धर्मका बीज बोया था, वह बहुत समय पीछे अंकुरित हुआ। वह अंकुर आजकल एक विशाल वृक्षके रूपमें परिणत होकर सहस्रों स्त्री-पुरुषोंको शान्ति दे रहा है। मुहम्मदने भी अपने जीवनमें अनेक अत्याचार सहन किये थे। नानक और चैतन्यको भी कुछ कम विघ्नोंका सामना नहीं करना पड़ा। जिन लोगोंने इन महापुरुषोंको उनकी जीवित दशामें अपार दुःख दिया था—उनकी साधनामें अनेक विघ्न उपस्थित किये थे,

उनके कार्यकी सफलताके विषयमें सन्देह किया था और उनके कामोंकी घोर निन्दा की थी, उन लोगोंकी संकीर्णताको इस समय हम भलीभाँति जान गये हैं, परंतु उन महापुरुषोंने उनकी संकीर्णताको उसी समय जान लिया था, और इसी लिए वे उनकी निन्दा आदिकी कुछ परवा न करके अपनी साधनामें लगे थे। यद्यपि धर्मक्षेत्रमें धर्मवीरोंके संबंधमें संक्षेपसे लिखा गया है, परंतु उससे उनके सिद्धि विषयक विचार भलीभाँति जाने जाते हैं। कर्मक्षेत्रमें शिल्प, साहित्य और विज्ञानविशारद पुरुषोंके जीवनचरितोंपर विचार करनेसे विदित होता है कि वे अपने जीवनमें सिद्धि-लाभके लिए व्याकुल रहते थे। इस प्रसंगपर हम बिजली तथा भाफके आविष्कर्त्ताओंका उदाहरण देते हैं।

शिल्प, साहित्य और विज्ञानकी उन्नति करनेवाले पुरुष भी अपने जीवनमें कभी पूर्णरीतिसे सिद्धि-लाभ नहीं कर सके। यह सच है कि कई लोग किसी किसी विषयोंमें कुछ आविष्कार कर गये हैं, परन्तु उनका वह आविष्कार उनकी मृत्युके बहुत समय पश्चात् ही पूर्णताको प्राप्त हुआ है; अथवा वह पूर्णताको प्राप्त हो गया ऐसा कह ही कैसे सकते हैं? क्योंकि ये वैज्ञानिक आविष्कार क्रम क्रमसे विकास पाते हैं। विद्युतशास्त्रसम्बन्धी जो कईएक तत्त्व महात्मा फ्रेंकलिनने खोज निकाले थे, उससे अधिक उनकी मृत्युके पश्चात् प्रकट हुए थे। जब फ्रेंकलिनने विद्युतसंबंधी कुछ तत्त्वोंका पता लगाया था, उस समय वे यह भी मानते थे कि विद्युतसंबंधी अनेक तत्त्व अभी प्रकृतिके भंडारमें छुपे पड़े हैं। उनकी यह भी धारणा थी कि हमारी आरंभ की हुई साधनाका अंत हमारे जीवनमें नहीं होगा, वरन हमारे शिष्य—प्रशिष्य भी अपनी आसन-पर बैठकर इसी साधनामें तत्पर रहेंगे और क्रम क्रमसे कठोर साधना-द्वारा एक एक तत्त्व प्रकृतिके भंडारसे प्राप्त करेंगे। फ्रेंकलिनने विद्युत्-संबंधी कुछ तत्त्वोंका खोज किया था, अतएव यह कह सकते हैं कि

उन्होंने अपने जीवनकालमें कुछ अंशोंमें सिद्धि प्राप्त की थी। उनके शिष्य-प्रशिष्य गाल्वेनो, गॉस्, वेबर, स्टॅन्हील्, व्हीस्टोन्मर्स, एडीसन, रॉजन, मार्कनी, वसु आदि साधकोंने विद्युत्शास्त्रकी साधनामें तत्पर रहकर अनेक हितकारी काम किये हैं और कर रहे हैं। इसी लिए कहते हैं कि महात्मा फ्रेंकलिनने कुछ अंशोंमें ही सिद्धि प्राप्त की थी। कौन जाने कब इस कठोर साधनाकी पूर्ण सिद्धि होगी !

भाफके विषयमें भी ऐसा ही कह सकते हैं। जेम्स वाटने अपनी साधनामें जो फल प्राप्त किया था, उनकी अपेक्षा उनके पीछे ट्रेवीथिक और वीवियनने अपनी साधनामें विशेष फल पाया था, और अंतमें राबर्ट स्टीफनने रेलगाड़ी आदि प्रस्तुत करके अपने पहलेके सब साधकोंसे विशेष सिद्धि प्राप्त की थी। वर्तमान समयमें शारीरिक और वाष्पशक्तिके बीच बड़ी प्रतिस्पर्धा चल रही है। रेल स्टीमर छापाखाने, मिलें और घरमें पंखातक चलानेका काम वाष्पशक्तिसे लिया जाता है *। जेम्सवाट, ट्रेवीथिक, वीवियन और स्टीफन आदि साधकोंने अपनी साधनामें जो सिद्धि प्राप्त की है, उस परसे उनके भविष्य वंशज इसी साधनभूमिमें साधना करके उत्तरकालमें कितने अचिन्तनीय और नवीन तत्त्वोंका खोज करेंगे तथा उससे जगतका कितना कल्याण होगा, इनका अनुमान कौन कर सकता है ?

बिजली और भाफके विषयमें विज्ञानवेत्ताओंकी साधना और सिद्धिकी बात बहुत संक्षेपसे कही गई है। विज्ञानके अनेक विभाग हैं और उनके साधक भी बहुत हैं, परंतु इस जगह इन सब बातोंकी आलोचनाकी आवश्यकता नहीं है। उदाहरणके तौरपर जो कुछ लिखा गया है, उससे

---

* बिजलीकी शक्तिके द्वारा वाष्पशक्तिका पराभव करनेका प्रयत्न आजकल चल रहा है और अनेक कारखाने अब बिजलीकी शक्ति द्वारा चलाये जाने लगे हैं। — अनुवादक।

विदित होता है कि जो कर्त्तव्य समझकर साधना करते हैं, वे सिद्धिके लिए एकदम अधीर नहीं होते। साधनामें शरीरपात होना भी कल्याणकारी है! साधनामें प्रत्यक्षरीतिसे सिद्धि न मिले, तो भी उससे संतोष मिलता है। साधनामें सन्मान है-गौरव है। साधनभूमिमें साधन करते करते जो शरीरपात करते हैं, वे भी सिद्ध पुरुषोंकी पंक्तिमें गिने जाते हैं। उत्तम संकल्प करके साधनामें प्रवृत्त होना चाहिए। श्रद्धा, निश्चय और आशाके साथ साधना करनी चाहिए। ऐसा करनेपर यदि अपने जीवनमें ही सिद्धि मिल जाय तो बहुत ही अच्छा, अन्यथा दुःखी या निरुत्साह न होना चाहिए; कारण कि सच्ची साधना व्यर्थ नहीं जाती। समय आनेपर साधना अवश्य सफल होती है। आस्था, निश्चय और आशाके साथ साधना करनेसे योग्य समयपर सिद्धिदाता परमेश्वर सिद्धि देता है। सिद्धपुरुषोंका ऐसा ही कथन है। उत्तम साधक उसे सत्य मानते हैं, अतएव साधना ही सिद्धिका सरल मार्ग है।

* * * *

राजा राममोहन-रायकी सिद्धि।

राजा राममोहन रायकी साधनाके प्रसंगमें कहा गया है कि उनकी साधनाका फल उनके भविष्य वंशज भोगते हैं और उत्तरकालमें अब और भी अधिक उत्तम रीतिसे भोगेंगे। प्रत्येक मनुष्यके सुख, स्वातंत्र्य और मान मर्यादाके विषयमें कहें तो यह बात स्पष्टरीतिसे जानी जाती है कि राजा राममोहनराय इन सब बातोंमें भाग्यशाली थे। उन्होंने दीवानका काम बहुत अच्छी तरह चलाया था। इस काममें उनको अच्छी प्रतिष्ठा मिली थी। रंगपुरकी दीवानगिरी छोड़नेके पश्चात् पैतृक धनके एक मात्र वारिस होनेके कारण उनको सुख और स्वतंत्रताका अभाव नहीं रहा। भारतवर्षमें उनके बहुत शत्रु थे, परंतु उनकी विद्या, बुद्धि और ज्ञानके कारण देशके बड़े बड़े राज-दरबारी पुरुष भी उनका आदर-सन्मान किया करते थे। दिल्लीके

बादशाहने उनको राजाकी उपाधि दी थी। राजा राममोहनराय, सम्राट्के कई एक कामों तथा स्वदेशहितके लिए इंग्लैंड गये थे । यहाँ भी उनको अच्छा सन्मान मिला । इंग्लैंडके राजा विलियमके राज्याभिषेकके समय राजा राममोहनरायको यूरोपीय रजवाड़ोंके प्रतिनिधियोंके समान सन्मान मिला था । राजा विलियमने उनको आदरपूर्वक अपने घर बुलाया था । इसके पश्चात् जब वे फ्रान्स गये, तब वहाँके राजा लुई फिलिफने उनका अच्छा सन्मान किया और दो बार निमंत्रण करके उनको अपने साथ भोजन कराया । यूरोपकी पंडित मंडली भी उनके गुणोंसे पहलेसे ही परिचित थी । इंग्लैंडके तत्कालीन साहित्य, विज्ञान और दर्शनशास्त्रके पंडितोंने उनके साथ मिलकर तथा उनसे बातचीत करके बहुत प्रसन्नता प्रकट की थी । सुप्रसिद्ध कवि कैम्बलेने उनकी प्रशंसाकी थी । प्रख्यात ब्राउहम साहबने उनसे मित्रता की थी । विलियम रॉस्को उनके साथ मिलनेके लिए बहुत उत्सुक थे । ऋग्वेद संहिताके अनुवादकर्त्ता रॉजन साहबने उनके साथ वेदके संबंधमें बहुत बातचीत की थी । जनहितेच्छु तत्त्ववेत्ता बेन्थाम साहब उनके गुणोंसे बहुत प्रसन्न हुए थे और वे उनको हितैषी मानते थे । इस प्रकार विदेशमें उनको सब तरफसे सन्मान मिला । उन्होंने स्वदेशहितके लिए साधना करते करते विदेशमें प्राणत्याग किये थे । ब्रिस्टलमें उनकी समाधि बनाई गई थी । स्वदेशहितैषी अब भी उस जगहको पुण्यतीर्थके समान मानते हैं । उस समाधिपर राजा राममोहनकी साधनाके विषयमें संक्षेपसे इस प्रकार लिखा है:—

"Beneath this stone rest the remains of Raja Rammohan Ray. A conscientious and steadfast believer in the unity of Godhead he consecrated his life with entire devotion to the worship of the Divine spirit above. To great Natural talents he united a thorough mastery of many

languages and early distinguished himself as one of the greatest scholars of the day. His universal labours to promote the Social, moral and physical condition of the people of India, his earnest endeavours to supress idolatry and the rite of sati and his constant zealous advocacy for whatever tended to advance the glory of God and the welfare of man, live in the grateful remembrance of his country men."

"इस स्मारकशिलाके नीचे राजा राममोहनरायका शरीर पड़ा है। वे सच्चे अंतःकरणसे ईश्वरके एकत्त्वको माननेवाले थे। वे ईश्वरके पूजनमें अखंड भक्ति रखकर अपने जीवनको पवित्र कर गये हैं। उन्होंने अपनी स्वाभाविक उत्कृष्ट बुद्धिसे अनेक भाषाओंका ज्ञान प्राप्त किया था, वे छोटी उमरमें ही अपने समयके उत्तम विद्वानोंमें गिने जाने लगे थे। भारतवासियोंकी सामाजिक, नैतिक और शारीरिक स्थिति सुधारनेके लिए उनका सार्वजनिक प्रयास, मूर्तिपूजा तथा सती प्रथाको बंद करनेका उनका हार्दिक परिश्रम और जनसमूहकी निरंतर हिताकांक्षा, ये सब बातें उनके देशभाइयोंको उनका सदैव कृतज्ञतापूर्वक स्मरण दिलाती रहेंगीं।"

कीर्तिमंदिरमें भक्तलोग साधक और सिद्धपुरुषोंकी स्तुति-गान करना पुण्यकर्म समझते हैं। एक विदेशी भक्त अध्यापक मोक्षमूलर राजा राममोहनरायके गुणोंसे प्रसन्न होकर उनके विषयमें लिख गया है:—

The German name for Prince is Furst;in English:first--he who is always to the fore; he who courts the place of danger; the first in fight the last in flight. Such a Furst was Rammohan Ray--a true prince, a real Raja if Raja also, like Rex originally meant the Steersman, the man at the helm."

"जर्मन-भाषामें राजकुमारको "फ्रुर्स्ट" कहते हैं। अँगरेजीका "फर्स्ट" शब्द उसीसे निकला है। फर्स्ट उसे कहते हैं, जो सबसे आगे रहे और भयसे

मेटे, जो युद्धमें सबसे आगे और भागनेमें सबसे पीछे रहे । ऐसे ही फर्स्ट राममोहनराय थे । वे सच्चे राजा थे । कारण कि 'रेक्स' शब्दका मूल अर्थ पतवार चलानेवाला है । "

राजा राममोहनरायके एक परम भक्तके स्तुति-गानके प्रसंगपर हम उनकी कुछ महिमा वर्णन करके उनके पुण्यचरितको समाप्त करते हैं । आशा है कि भारतीय युवक उनकी स्तुतिको सुनकर कर्मक्षेत्रमें उनके बतलाये हुए मार्गपर अग्रसर होंगे ।

"धन्य राजा राममोहनराय ! एक समय तुम्हारी सतेज बुद्धिका प्रकाश अज्ञानरूपी घने बादलोंको भेदकर चारों ओर फैल गया था; साथ ही तुमने शुद्ध तथा निर्मल हृदयसे तत्कालीन प्रचलित कुसंस्कारोंका परित्याग किया था; यह कुछ कम प्रशंसाकी बात नहीं है । उस समय तुम्हारे ज्ञान और धर्मके उत्साहसे उत्साहित हुए हृदयमें एक ज्वालामुखी जल रहा था, उससे पुण्य और पवित्रताकी धंधगती हुई ज्ञानाग्नि निकलकर चारों ओर फैलती थी । तुमने शास्त्रज्ञानके पक्षमें जो गंभीर भेरी बजाई थी, वह अब भी हमारे कानोंमें गूँज रही है; वह गंभीर आवाज अब भी हमारे कानोंके पर्दोंको फाड़कर इस अयोग्य देशमें जय प्राप्त कर रही है । तुमने स्वदेश तथा विदेशमें फैले हुए कुसंस्कारोंका संहार करनेके लिए, रणमें चढ़े हुए वीरपुरुषके सदृश पराक्रम दिखलाया था और वाग्युद्धमें अपने समस्त शत्रुओंको पराजित किया था । तुम्हें राजाकी पदवी है । तुम इस जड़जगतके नहीं, एक विस्तृत मनोराज्यके अधिकारी हो; तुम्हारे समकालीन और विशेषकर उत्तरकालके शिक्षित पुरुष तुमको राजमुकुट पहिनाकर तुम्हारी जय बोल रहे हैं । जो आजतक हिन्दूजातिके मनोराज्यमें निर्विवादरूपसे राज्य करते चले आये थे उनको तुमने पराजित किया है । अतएव तुम राजाओंके भी राजा हो । तुम्हारी विजयपताका उनकी सीमापर चिरकालतक

फहराती रहेगी। पहले जो भारतीय लोग तुमको शत्रु समझते थे, उनकी संतानोंमेंसे अधिकांश आज तुमको परम बन्धु समझते हैं। केवल भारतवर्षके क्या तुम समस्त जगतके बंधु हो ?"

× × × × ×

महाराजा रामवर्माकी सिद्धि।

महाराजा रामवर्माने राजसिंहासनपर बैठकर जो साधना की थी, वह निष्फल नहीं गई। महाराजाका आदर्श हमारे देशके राजाओंके समक्ष चिरकालतक बना रहेगा। अपने राज्यकी उन्नतिके लिए असाधारण साधना करके वे जो कीर्ति स्थापित कर गये हैं, वह उनके नामको त्रावणकोर राज्यमें बहुत समयतक स्थिर रक्खेगी। त्रावणकोरकी शिल्पशाला, कवीलनकी कपड़ेकी मिल और पुनालूरका कागजका कारखाना, ये सब कर्मक्षेत्रमें उनकी सिद्धिके दृष्टान्त हैं।

महाराजाकी विविध साधनाओंका परिचय पाकर भिन्न भिन्न देशके विद्वानोंने उनको पृथक् पृथक् पदवियाँ और सन्मान दिया था। अनेक सभा–समितियोंमें उनका नाम सम्मिलित था। वे मद्रास यूनीवर्सिटीके फेलो थे। विलायतकी लिनियन सोसायटीने उनके वनस्पतिशास्त्रसंबंधी ज्ञानको देखकर उन्हें अपना सभासद बनाया था। वे भूगोलसंबंधी सभा तथा रायल एशियाटिक सोसायटीके भी सभासद थे। उनके विद्यानुरागकी चर्चा फ्रान्स जैसे सुदूर देशमें भी पहुँच गई थी। वहाँकी गवर्नमेंटने उनको " Officer of the public Instruction " (शिक्षाविभागके एक अधिकारी) की पदवी देकर उनका योग्य सन्मान किया था। पेरिस शहरकी सार्वजनिक सभाने उनको अपना मेम्बर बनाकर मान दिया था। इसके सिवा महारानी विक्टोरियाने उनके गुणोंका परिचय पाकर उनको " Grand Commandership of the most ex-

alted order of the star of India अर्थात् (G. C. S. I.) की उपाधिसे विभूषित किया था।

हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि " राजा अपने ही देशमें पूजा जाता है, परंतु विद्वानोंकी पूजा सर्वत्र होती है। " महाराजा रामवर्मा इन दोनों ही गुणके अधिकारी थे। राजा होनेके सिवा साधनाके बलसे वे विविध गुणोंके अधिकारी हो गये थे और इस कारण उनका देश तथा परदेश सभी जगह सन्मान होता था।

× × × × ×

सर माधवरावकी सिद्धि।

सर माधवराव भाग्यवान् पुरुष थे। उन्होंने देशी रजवाड़ोंकी राजनैतिक अवस्था सुधारनेके लिए जो अपूर्व साधना की थी, वह विफल नहीं हुई। त्रावणकोर राज्यके अनेक हितकारी काम उनकी कीर्तिका परिचय दे रहे हैं। मंत्रिश्रेष्ठ माधवरावने त्रावणकोर और होल्कर राज्यमें जिन शुभ कामोंकी नीव डाली थी, वे सब काम योग्य समयपर पूर्ण होकर उनकी दूरदर्शिता प्रकट कर रहे हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि मंत्रिश्रेष्ठ माधवरावका प्रधान कार्यक्षेत्र बड़ौदा था। इस जगह उन्होंने सुदीर्घ समयतक विषम राजनीतिके क्षेत्रमें साधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। तंत्र ग्रंथोंमें सिद्ध पुरुषोंके विषयमें लिखा है कि ' वे इच्छामात्रसे अलौकिक काम कर सकते हैं। ' सचिवश्रेष्ठ सर माधवरावने राजनैतिक क्षेत्रमें जो सिद्धि प्राप्त की थी, उस परसे जाना जाता है कि उन्होंने भी इच्छामात्रसे ही बड़ौदामें कई असाधारण कार्य किये थे। उनकी इच्छासे ही बड़ौदाकी राजलक्ष्मी प्रसन्न हुई थी। उस कर्मवीर पुरुषके प्रयत्नसे ही गायकवाड़ राज्यमें निष्पक्ष न्यायके लिए धर्माधिकारी नियुक्त किये गये थे; जगह जगह विद्यालय खोले

गये थे; सार्वजनिक हितके लिए पुस्तकालय स्थापित हुए थे और इसी प्रकार अनेक हितकारी कामोंकी प्रतिष्ठा हुई थी। अच्छी तरह न्याय करने तथा राजकार्य चलानेके लिए उन्होंने मद्रास तथा बंबईसे कई सुशिक्षित, सदाचारी और कार्यकुशल लोगोंको बुलाकर नियुक्त किया था। ऐसे सुयोग्य व्यक्तियोंकी मुकर्ररीसे राजा और प्रजा दोनोंको बड़ा लाभ हुआ था। क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है-

" प्राज्ञे नियोज्यमाने हि सन्ति राज्ञस्त्रयो गुणाः।
यशः स्वर्गनिवासश्च विपुलश्च धनागमः ॥ "

अर्थात् बुद्धिमान् कर्मचारियोंकी नियुक्तिसे राजाको यश, सुख और विपुल धनकी प्राप्ति होती है। सर माधवरावके कार्योंकी सफलता देखकर कहना पड़ता है कि वे वास्तवमें सिद्धपुरुष थे। उनकी कठोर साधनासे प्राप्त की हुई विद्या-बुद्धि और कुशलताके कारण तत्कालीन महापुरुष उनसे सलाह, उपदेश और सहायता लेनेके लिए सदैव प्रयत्न किया करते थे। बड़ौदाके राजकार्यसे निवृत्त होनेके पश्चात् वे मद्रासके गवर्नर और गवर्नर जनरलकी कौन्सिलके सभासद् बनाये गये। उन्होंने आफ्रिकाके अधिकारियोंके विषयमें जर्मनीके प्रधानमंत्री प्रिन्स बिस्मार्कको सलाह दी थी और इसके उपलक्षमें उन्होंने सर माधवरावको अपने हाथसे पत्र लिखकर धन्यवाद दिया था। उन्होंने जर्मनमंत्री प्रिन्स बिस्मार्कको जो सत्परामर्श दिया था, उसका जर्मन भाषान्तर होकर प्रत्येक सैनिकको बाँटा गया था। इस बातपरसे जाना जाता है कि उनका वह परामर्श कितना बहुमूल्य होगा? वे स्वदेशहितके लिए कई एक बहुमूल्य उपदेश दे गये हैं। भारतीय युवक सर माधवरावके जीवनचरित और उपदेश दोनोंसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और दिखला सकते हैं कि शिक्षित सच्चरित्र और कर्मकुशल भारतीय युवक सब प्रकारसे राजा और राज्यकी सेवा करनेके योग्य हैं।

महापुरुषोंका गुणगान करनेसे भी पुण्य होता है। दो प्रसिद्ध अँगरेजोंने सर माधवरावकी जो प्रशंसाकी है वह नीचे लिखी जाती है:—

Within the short space of a year, Madhava Rao has called forth order out of disorder; has distributed justice between man and man and man, without fear or favour; has expelled decoits; has raised the revenues; and his minutes and State papers show the liberality the soundness and statesmanship of his views and principles. He has received the thanks of his sovereign; he has obtained the voluntary admiring testimony of some of the very missionaries who memorialized, to the excellency of his admimistration. Now, here is a man raised up as it were amid the anarchy and confusion of his country to save it from destruction. Annexation looming in the not-fa. distant future, would be banished into the shades of night if such an administration as he has introduced into two of the districts were given to the whole kingdom, by his advancement to the post of minister. He is indeed splendid example of what education may do for native.

John Bruce Norton.

" एक वर्ष जैसे थोड़े समयमें सर माधवरावने समस्त अँधाधुँधी दूर करके उत्तम प्रबंध कर दिया है। भय या अनुग्रह प्रदर्शित किये बिना ही प्रजाजनोंको न्याय वितरण किया है। छल-कपट बंद कर दिया है और 'राज्यकी आमदनी बढ़ाई है। इसके सिवा उनकी नोटबुक और राजकीय कागज-पत्र उनके विचारों और सिद्धान्तोंकी उदारता दृढ़ता तथा राजनैतिकता प्रकट कर रहे हैं। इसी प्रकार उन्होंने अपने राजाकी ओरसे कृतज्ञतासूचक सहानुभूतियाँ भी प्राप्त की हैं। जिन ईसाई धर्मोपदेशकोंने उनके राजकार्य्यके विषयमें वाइसराय महोदयसे भूरि भूरि प्रशंसा की थी, उससे उनकी राजकार्यपटुताकी कई बहुमूल्य अयाचित सबूतियाँ मिलती हैं। सरमाधवराव ऐसे पुरुष हैं, जो अपने देशको अँधाधुँधी और घबराहटसे

खींचकर ऊपर उठाना चाहते हैं। उन्होंने दीवानके पदपर पहुँचकर दो जिलोंका जो राजकीय सुधार किया है यदि वैसा सुधार सारे राज्यमें किया जाय तो अदूर भविष्यमें उसके खालसा करनेका विचार रात्रिके अंधकारमें लीन हो जायगा। देशके लिए शिक्षा क्या क्या कर सकती है, इसके वे एक सत्य और उज्ज्वल उदाहरण हैं।"—जान ब्रुस नार्टन।

अमात्य माधवराव देशी राज्योंकी दीवानगिरी करते थे, तो भी ब्रिटिश सरकार उनके कार्योंसे सदैव संतुष्ट रहती थी और अँग्रेजी राज्य उनके गुणोंका आदर करनेमें कभी कसर नहीं रखता था। सन् १८७८ के दिल्लीदरबारमें उनको राजाकी उपाधि मिली थी। इसके पहले उनको के. सी. एस्. आई. की पदवी मिल चुकी थी। इस विषयमें मद्रासके तत्कालीन गवर्नर लार्ड नेपियरने अमात्य माधवरावकी जो प्रशंसा की थी, वह इस जगह लिखी जाती है—

"Sir Madhava Rao–The Government and the people of Madras are happy to welcome you to a place where you laid the foundation of those distinguished qualities which have become conspicuous and useful on another scene. The mark of Royal favour which you have this day received will prove to you that the attention and generosity of our Gracious Sovereign are not circumscribed to the circle of her immediate dependents. But Her majesty regards the faithful service rendered to the princes and people of India beyond the boundaries of our direct administration, as rendered to Herself and to her representatives of this Empire. Continue to serve the Maharaja industriously and wisely reflecting the intelligence and virtues of His Highness faithfully to his people."

"सर माधवराव—जिस जगह तुमने उत्तम गुणोंकी नींव डाली है और जो गुण दूसरी जगह भी उपयोगी सिद्ध हुए हैं, उस जगहकी जनता और मद्रासकी

सरकार तुम्हारा स्वागत करनेमें भाग्यशाली निकली है । राजकृपाकी जो निशानी आज तुमको मिली है, उससे तुमको विश्वास होगा कि हमारी माननीया महारानीकी दृष्टि तथा उदारता अपने समीपी सेवकोंके लिए ही नहीं है, प्रत्युत जो सेवा राजाओं तथा भारतवर्षकी प्रजाके लिए की जाती है उसे वे–स्वतः अपनी या अपने प्रतिनिधिकी ही सेवा समझती हैं । आशा है कि तुम अपने माननीय महाराजाकी पूर्ण उद्योग तथा बुद्धिमानीसे सेवा करते रहोगे । ”

*   *   *   *

सर सालारजंगकी सिद्धि ।

साम्प्रत भारतवर्षके राजनीतिक्षेत्रमें सचिव माधवरावके समान सर सालारजंग भी एक सिद्धपुरुष समझे जाते हैं । हैदराबादके कल्याणके लिए उन्होंने जो कठोर साधना की थी, उसका वर्णन पहले लिखा जा चुका है । उस कठोर साधनामें उनको पूर्ण सिद्धि मिली थी । निजामके हितके लिए उन्होंने अपने धन और जीवनको जोखिममें डालकर भी निजामकी सेनाको बलवाई सिपाहियोंके साथ नहीं मिलनेदी थी । समग्र हैदराबाद एक ओर और सर सालारजंग दूसरी ओर थे । ‘अँगरेजोंके हितमें भारतका हित और भारतके हितमें अँगरेजोंका हित है’ इस बातको सर सालारजंग बहुत अच्छी तरह समझते थे । समग्र राज्यके आग्रहने सर सालारजंगकी इच्छाशक्तिके सामने पराभव पाया था । इच्छाशक्तिकी ऐसी प्रबलता सिद्धपुरुषोंके सिवा अन्य किसी व्यक्तिमें होना संभावित नहीं है । ब्रिटिश राज्य गुणग्राही है । सर सालारजंगकी मित्रता और दूरदर्शिताके उपलक्षमें अँगरेज सरकारने बलवा शान्त होनेके पश्चात् उनको तीस हजार रुपयाकी जागीर पुरस्कारमें दी थी, और तत्कालीन गवर्नर जनरलने उनकी होशयारी, दृढ़ता और साहसिकताकी प्रशंसा करके कृतज्ञता प्रकट की थी ।

सर सालारजंगने अपनी असाधारण साधनाके बलसे प्राप्त की हुई ज्ञानशक्तिके द्वारा निजाम राज्यको अनेक आपत्तियोंसे बचाया था । राजस्वके

विषयमें उनकी जानकारी बहुत बढ़ी चढ़ी थी, जिन निजामको एक दिन सामान्य ऋण देनेके लिए भी लोग आनाकानी करते थे, उन निजामका भांडार सर सालारजंगके उत्तम प्रबंधसे धन-रत्न-परिपूर्ण हो गया था। यह सब उनकी साधनाकी सिद्धि थी। अंतमें सब लोग उनकी अन्य असाधारण शक्तियोंसे भी परिचित हो गये थे और उसके लिए उनको सन्मान देते थे। महारानी विक्टोरियाने उनको जी. सी. एस. आईकी उपाधिसे अलंकृत किया था। सर सालारजंग निजाम राज्यके हितके लिए जब विलायत गये थे तब आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटीकी ओरसे उनको डी. सी. एलकी पदवी मिली थी।

लंदनमें लार्ड मेयरने उनका लंदनके नागरिकके समान सन्मान किया था। इस प्रकार स्वदेश तथा विदेशमें उनको सर्वत्र सन्मान मिला था। महापुरुषोंका सन्मान करना मनुष्यका कर्तव्य है। वीर पूजा करना वीरका लक्षण है। गुणी पुरुष ही गुणका आदर करते हैं। जिस दिन भारतवर्षके युवक वीर-पूजा करना सीखेंगे उस दिनसे भारतवर्षकी उन्नतिका प्रारंभ समझा जायगा, भगवान् करे वह दिन समीप आवे। शिक्षा तथा सौभाग्यके बलसे जो भारतीय युवक राजनीतिक्षेत्रको अपना कर्मक्षेत्र बनावेंगे, वे सर माधवराव और सर सालारजंगके उज्ज्वल उदाहरणसे उत्साहित होंगे और उनके आशीर्वादसे उनके समान अँगरेजोंके हितैषी बनकर राजा और राज्यकी सेवा करनेमें समर्थ होंगे।

सर सालारजंगकी जीवित दशामें भारत सरकारने उनके प्रति समुचित सन्मान प्रदर्शित किया था; इसी तरह उनकी मृत्युके उपरान्त भी उसने उनके शोकमें समवेदना प्रकट की थी। सर सालारजंगकी मृत्युके पश्चात् भारत-सरकारने 'गजट एकस्ट्रा ओर्डिनरी' में लिखा था—

"It is with feeling of great regret that the Governor General in council announces the death of His Excellency nawab Sir Salar Jung G. C. S. I., the Regent and

minister of the Haidrabad State. By this unhappy event the British Government has lost an enlightened and experienced friend, His Highness the Nizam, a wise and Faithful Servant, and the Indian Community one of its most distinguished representatives."

"हैदराबादके राजकार्यसंचालक और दीवान माननीय नवाब सर सालार-जंग जी. सी. एस. आईकी मृत्युपर कलकत्तेमें गवर्नरजनरलने अपनी कौंसिलमें अत्यंत शोकपूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की है। इस दुःखदायक घटनासे ब्रिटिश सरकारको एक विद्वान् तथा अनुभवी मित्रकी; माननीय निजाम साहबको एक बुद्धिमान् तथा नमकहलाल नौकरकी तथा भारतयि प्रजाको एक उत्तमोतम प्रतिनिधिकी क्षति सहन करनी पड़ी है।"

* * * *

ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी सिद्धि।

ब्रिटिश बंगालमें आजतक जितने कर्मवीर पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उनमेंसे राजा राममोहनरायके पश्चात् विद्यासागर महाशय गणनीय हैं। बंगाल प्रांतके कल्याणके लिए विद्यासागरके समान समग्र मन और प्राणोंको उत्सर्ग करनेवाले लोग बहुत कम निकलेंगे। विद्यासागरका कर्मक्षेत्र बहुत विस्तृत था। विद्यालयमें, बंगसाहित्यमें, ज्ञान और शिक्षाके विस्तारमें तथा समाज-सुधारमें उन्होंने साधना की थी। इस क्षुद्र ग्रंथमें उनकी समग्र साधना और सिद्धिका वर्णन करना असंभव है। हम उनकी विद्याप्राप्ति और ज्ञानविस्तारके विषयको मुख्यरीतिसे कहते आते हैं। कैसी कठोर साधना करके उन्होंने विद्या प्राप्त की थी। उसे हम पहले ही विस्तारपूर्वक कह चुके हैं। विद्यासागरकी बाल्यावस्थाके साथ दरिद्रता जुड़ी होनेके कारण गरीब विद्यार्थियोंके लिए उनकी साधना विशेष अनुकरणीय है। ज्ञानसाधनामें सिद्धि प्राप्त करके ही वे विद्यासागर हुए थे। वे वास्तवमें विद्यासागर ही थे!

वंगाल प्रान्तमें ज्ञान और शिक्षाका प्रसार करना विद्यासागरके जीवनका मुख्य उद्देश्य था। उनका यह उद्देश्य पूर्णरूपसे सफल हुआ था। उनकी ग्रंथावली आज भी वंगालियोंके घर घर विराजमान होकर विद्याका प्रचार कर रही है। उनके स्थापित किये हुए मेट्रोपोलीटन कालेजमें शिक्षा पाकर सहस्रों विद्यार्थी अपने जीवनको यशस्वी वना गये हैं और वनाते हैं। उनका वह कालेज आज गैरसरकारी कालेजोंमें आदर्श स्वरूप है। उसके आदर्शपर अभीतक कई कालेज स्थापित हुए हैं और वे देशमें ज्ञान तथा शिक्षाका प्रचार कर रहे हैं। आज भारतवर्षके इस शिक्षा और नीतिके हेरफेरके समयमें सब लोग विद्यासागर महाशयकी जय मना रहे हैं। शिक्षित वंगालमें घर घर विद्यासागर महाशयका चित्र शोभा पाता है। उनकी उस पवित्र मूर्तिकी ओर अँगुली वतलाकर भक्तिके आवेशमें प्राचीन वंगाल नवीन वंगालको परिचय देनेके वहानेसे सदैव कहा करता है—

"श्रीमानीश्वरचन्द्रोऽयं विद्यासागरसंज्ञकः।
भूदेवकुलसंभूतो मूर्त्तिमद्दैवतं भुवि॥"

* * * *

सर सैयद अहमदकी सिद्धि।

वर्तमान समयमें भारतवर्षके मुसलमानोंमें सर सैयद अहमदका दरजा बहुत ऊँचा गिना जाता है। कई एक कहते हैं कि सर सालारजंगके पश्चात् सर सैयद अहमदका ही नाम लिखने योग्य है। तुलना करनेमें टीका करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि साधनभूमिमें उनकी सिद्धिका विचार करनेसे ही इस वातका निपटारा हो जाता है। अलीगढ़का एँग्लो ओरियंटल कालेज सर सैयद अहमदकी मुख्य कीर्ति है। मुसलमान जातिको उत्तम शिक्षा मिलनेके लिए वे जो साधना कर गये हैं, उसमें उनको पूर्ण सिद्धि प्राप्त हुई थी, वे एक सफल पुरुष थे। उनको अपने जीवनकालमें ही अपने प्रारंभ किये हुए अनेक कामोंकी

सिद्धि मिली थी । उनकी मृत्युके पश्चात मुसलमान जातिकी शिक्षाके लिए, उनका स्मारक कायम रखनेके लिए और मुसलमान यूनीवर्सिटी स्थापित करनेके लिए भारतवर्षके मुसलमानोंने विशेष प्रयास किया था । उनकी स्मारक-फंडकी सभामें लार्ड एलगिन उपस्थित हुए थे । उन्होंने उनकी स्वदेशप्रीति, स्वजाति-उन्नतिकी इच्छा और उनके राजा-प्रजाके मध्य सद्भाव स्थापित करनेके प्रयासकी बहुत प्रशंसा की थी ।

उत्तर हिन्दुस्थानमें मुसलमान राजाओंकी अनेक कीर्ति मौजूद हैं । दिल्लीका कुतुबमीनार अब भी अपने ऊँचे माथेसे मुसलमान राज्यकी कीर्ति-पताका उड़ा रहा है । अपार धनके स्वामी होकर मीनार, मंदिर या स्तंभ बनवाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, परंतु प्रजाके सामान्य स्थितिके पुरुष होकर, विशेष प्रयत्न करके-भिक्षा माँगकर जनसमूहके कल्याणके लिए इमारतें बनवाना ही आश्चर्यकी बात है । उनका बनवाया हुआ विद्यामंदिर दिल्लीके समीपवर्ती शहरमें रहकर दिल्लीके बादशाही कीर्तिमंदिरके साथ गौरवकी स्पर्धा कर रहा है ।

वर्तमान समयमें या भविष्यमें जो कोई विचारशील पुरुष उत्तर हिन्दुस्थानमें मुसलमानोंकी कीर्ति देखनेके लिए जायगा, वह दिल्लीमें बादशाही और अलीगढ़में प्रजाकी कीर्ति देखकर स्तंभित होगा; इतना ही नहीं, वरन वह वहाँ मुसलमानोंके कृतज्ञतापूर्ण स्मृतिक्षेत्रमें ज्ञानरूपी दर्पणके भीतर सैयद अहमदकी मानसिक मूर्ति देखकर विस्मित होगा ।

* * * *

तारानाथ तर्कवाचस्पतिकी सिद्धि ।

स्वधर्म-परायण तारानाथ तर्कवाचस्पति अपनी सांसारिक साधना पूर्ण करके सन् १८८५ में काशी गये थे । जिस समय वे संसारसे निवृत्त हुए थे, उस समय उनकी साधना सिद्ध हो चुकी थी । संस्कृत शास्त्रोंका पुनरुद्धार करना उनके जीवनका मुख्य

उद्देश्य था ,उसे वे एक प्रकारसे पूर्ण कर गये थे । उनकी मृत्युके पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्रने १०७ प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथोंको टीकासहित छपवा-कर प्रसिद्ध किया था । उनकी स्थापित की हुई पाठशालामें दूर दूरके विद्यार्थी आकर शिक्षा प्राप्त करते हैं । देव-भाषाका प्रचार करनेके लिए उन्होंने जो आजीवन कठोर साधना की थीं, उसमें उनकों पूर्ण सिद्धि मिली थी । वे सिद्धपुरुष थे । कर्म उनकी प्रकृतिका धर्म था। काशीमें वे अल्पकाल रहे थे, परंतु उस समय भी वे तत्त्वजिज्ञासुओंको सांख्य, योग, वेद, वेदान्त आदि शास्त्रोंका गूढ़ रहस्य स्पष्टरीतिसे समझाया करते थे । राजयोग और हठयोगके साधनाकी प्रक्रिया और अन्य गूढ़ तत्त्व जाननेके लिए अनेक दंडी और परमहंस उनके पास आया करते थे ।

काशीमें कुछ दिन रहनेके पश्चात् वाचस्पति महाशयका स्वर्गवास हो गया । आस्थावान् और ईश्वरभक्त हिन्दूकी अंतिम आशा पूर्ण हुई । पुण्य-सलिला भागीरथीके तीर मणिकर्णिका घाटपर उनकी अन्त्येष्टि-क्रि-या की गई । इसके साथ भारतवर्ष एक विद्वान् पंडितसे रहित हो गया । इनकी मृत्युपर देशी राजाओंने बहुत शोक प्रकट किया । त्रावणको-रके महाराजा रामवर्माने कहा था-" तर्कवाचस्पतिकी मृत्युसे भारतवासी संस्कृत-शास्त्ररूपी सूर्यके प्रकाशको खो बैठे हैं । " मैसूरके दीवान रंगा-चार्लूने कहा था-" मेरे विचारोंके अनुसार उनकी मृत्यु ही नहीं हुई, कारण कि-"कीर्तिर्यस्य स जीवति (जिसकी कीर्ति है, वह मनुष्य जीवित ही है) ।" उनका वाचस्पत्यभिधान और अन्य ग्रन्थ जबतक पृथ्वीपर रहेंगे तबतक वे जीवित ही हैं और यह बात वास्तवमें सत्य है ।

" Thou art a monument without a tomb,-
And art alive still while thy book doth live,
And we have wits to read and praise to give. "

" तुम समाधिस्तंभके विना ही चिरस्मरणीय हो । जबतक तुम्हारे ग्रन्थ मौजूद

है और जबतक हममें उनके पढ़ने और उनकी प्रशंसा करनेकी बुद्धि है, तबतक तुम जीवित ही हो। ”

*   *   *   *

सर मधुस्वामीकी सिद्धि

अनेक लोगोंकी ऐसी धारणा होती है कि कोई प्रसिद्ध या चिरस्थायी कीर्तिका काम किये बिना महापुरुषोंके जीवनका महत्त्व नहीं रहता है; परंतु उनकी यह धारणा सर्वत्र सच नहीं निकलती। क्योंकि मंदिर, बाग, सरोवर, कुआ, बावड़ी, विद्यालय आदि बनवाना सबके भाग्यमें नहीं घटता; पृथ्वी इन सब कीर्तियोंको अपने वक्षःस्थलपर धारण करके एक तरहके साधकोंके सिद्धिकी पहिचान कराती है, दूसरे प्रकारके साधकोंकी कीर्तिको अशरीरिणी वाणी मनुष्यकी स्मृतिके भीतर रक्षित रखती है। सर मधुस्वामी अय्यरके महान् जीवनकी कीर्ति स्मृतिपटपर अंकित है। सर मधुस्वामीने अपनी असाधारण साधनाके बलसे दारिद्र्यरूपी राक्षसको पराजित किया था। वे अपनी विद्या–बुद्धि और कर्मकुशलताके बलसे भारतवासियोंको मिल सकने योग्य एक उच्च राजकीयपदपर पहुँचे थे। मद्रास हाईकोर्टके जज होनेके लिए उन्होंने जो कठोर साधनाकी थी, उससे उनको सिद्धि मिली थी, परंतु इसके सिवा उनको एक दूसरे विषयमें भी सिद्धि मिली थी। वह उनके जीवनमें एक आदर्शरूप है।

सर मधुस्वामीका रंगीन चित्र उनके अनेक भक्तोंके कमरोंमें लटका हुआ दिखाई देता है। चित्रकारने जैसा चाहिए वैसे रंगसे कपड़ेके ऊपर उनके चित्रको अंकित किया है। परंतु वह चित्र सर्वांगसुन्दर नहीं है। उन्होंने अपना चित्र अपने जीवनकालमें स्वतःही चित्रित कर दिया है। लोगोंके मनरूपी क्षेत्रोंमें वे अपना आदर्श–जीवन अङ्कित कर गये हैं। उस चित्रमें स्वतंत्रता, साहस, आस्था, बुद्धि, विद्या, चातुर्य्य, कर्मकुशलता, भक्ति, प्रेम, स्नेह आदि समस्त सद्गुणरूपी

रंगोंका मिश्रण दिखाई देता है। इस आदर्शचित्र—आदर्श जीवनके विविध रंगोंका पृथक्करण करनेसे हमको दिखाई देता है कि मातृ-पितृ-हीन मधुस्वामीने आत्मपरिश्रम, आत्मबल और आत्मबुद्धिकी सहायतासे विविध विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया था। कर्मक्षेत्रमें वे चतुराई और कर्मकुशलताके गुणसे सफल-मनोरथ हुए थे। अपने गृहस्थाश्रममें वे देव और ब्राह्मणोंमें अत्यंत भक्ति रखते थे, क्रियाकाण्डमें उनकी पूर्ण आस्था थी और स्त्री-पुत्रमें उनका समुचित स्नेह था।

भारतीय दरिद्र तथा शिक्षित युवकोंके हृदयमें सर मधुस्वामी अय्यरकी स्मृति आशा-स्थल होकर चिरकालतक जागृत रहेगी। सर मधुस्वामीने न्यायाधीश होकर ब्रिटिश राज्यके निष्पक्ष-न्यायका परिचय दिया था। इन्होंने दिखा दिया है कि परिश्रम, विद्या बुद्धि और सच्चरित्रता होनेपर ब्रिटिश-राज्य योग्य पात्रको योग्य पुरस्कार देनेसे नहीं चूकता है। यह कुछ कम आशाकी बात नहीं है! ब्रिटिश राज्यके न्याय और गुणग्राहितापर आधार रखकर तथा सर मधुस्वामी अय्यरके आदर्श-जीवनकी ओर अँगुली दिखाकर हम भारतीय शिक्षित, सच्चरित्र, विद्वान् और दरिद्र युवकोंसे आशापूर्ण हृदयसे सदैव कहेंगे कि—

Act,-act in the living present !
Heart within and good overhead.
Lives of great man all remind us,
We can make our lives sublime.

"कर्म करो—उपस्थित समयमें कर्म करो! अंतःकरणपूर्वक कर्म करो और ईश्वरका भजन करो कि जिससे कर्म सफल हो। समस्त महापुरुषोंके चरित्र हमको उपदेश देते हैं कि तुम अपने जीवनको उच्च बनाओ।"

× × × ×

इस संसारमें सबके उद्देश्य समान नहीं होते और इस कारण सबके आदर्श भी समान नहीं हो सकते हैं। सबकी आकांक्षा भी उच्च नहीं होती और न सबकी शक्ति ही उच्चाशयोंके अनुरूप होती है। बुद्धदेव अथवा ईसा, सिकंदर

या नेपोलियन, उसी प्रकार शेक्सपियर या कालिदास, इन सबकी आकांक्षा और शक्ति सबके लिए अनुकरणीय नहीं हो सकती हैं । इनका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत था। परंतु जो उनकी अपेक्षा बहुत कम आकांक्षा रखता हो और जिसकी शक्ति भी न्यून हो उसे अपने समान अवस्थावाले साधकोंकी सीद्धि देखकर उनके उत्साहसे उत्साहित होकर साधना करना चाहिए ।

श्यामाचरण सरकारकी सिद्धि ।

इसी हिसाबसे श्यामाचरण सरकारकी सिद्धि सद्गुणी, सच्चरित्र और उत्तम इच्छा रखनेवाले साधारण पुरुषोंके लिए विशेष आशान्वित करनेवाली हैं। जिस दरिद्र युवकको चारों ओर अँधकार दिखाई देता हो, साहाय्य और सम्पत्ति न होनेके कारण जो अपने भाग्यकी निन्दा किया करता हो, अधिक उमर हो जानेके कारण जो उद्यम न कर सकता हो, और प्रखर बुद्धि स्मरणशक्ति तथा प्रतिभा (ईश्वरदत्त शक्ति) न होनेके कारण जो दुखित रहता हो, उसे एक बार श्यामाचरण सरकारके उज्ज्वल उदाहरणकी ओर दृष्टि डालना चाहिए । ऐसा करनेसे उसके सारे संशय दूर हो जायँगे; हृदयमें आशाका संचार होगा; कर्ममें प्रवृत्ति होगी और वह सिद्धि प्राप्त करनेके लिए प्राणपनसे चेष्टा करने लगेगा । श्यामाचरण बाल्यावस्थामें दरिद्रतामें डूबे हुए थे। न तो उनके पास सहाय, सम्पत्ति या अलौकिक प्रतिभा ही थी, और न उनकी आकांक्षा ही अत्यंत प्रबल थी। वे अपनी स्थिति सुधारकर सुखी गृहस्थकी नाई अपने कुटुम्बकी और बन सके तो समाज और देशकी सेवा करनेकी आशा रखते थे । इस शुभ संकल्पको उन्होंने जीवनभर ध्रुव तारेके समान सन्मुख रक्खा । श्यामाचरणने " अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् । " बुद्धिमान् मनुष्य विद्या और धन प्राप्त करनेमें अपनेको अजर-अमर समझकर प्रयत्न

करते हैं, इस नीतिवाक्यका अनुसरण किया था। आजकलके युवक जिस अवस्थामें सुशिक्षित होकर, विश्वविद्यालयोंकी पदवियाँ प्राप्त करके और चस्मा, नैकटाई आदिसे सुशोभित होकर कर्मक्षेत्रमें प्रवृत्त होते हैं और समय समयपर निराश होकर संसारसे विरक्त होनेकी इच्छा करते हैं, उस उमरमें श्यामाचरणने अँगरेजी वर्णमाला सीखना प्रारंभ किया था; और जिस उमरमें हमारे देशवासी लोग विरक्त होकर सांसारिक कार्योंसे निवृत्त हो जाते हैं, उस उमरमें चतुर श्यामाचरणने नये उत्साहके साथ जमींदारी कानूनकी डिग्री प्राप्त करनेके लिए चतुर अँगरेज वकीलोंके साथ प्रतिस्पर्धामें विजयी होकर बहुत यश और धन प्राप्त किया था। मुसलमानोंके उत्तराधिकारत्वके विषयमें उनका रचा हुआ ग्रंथ उनकी अक्षय कीर्तिके रूपसे अब भी विद्यमान है। कायदा कानूनके विषयमें मत-मतांतर होनेपर भी आजकलके मौलवी, वकील और काजी इस ग्रन्थके मतको प्रमाणस्वरूप मानते हैं। श्यामाचरणने उर्दू, फारसी और अरबी भाषाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए जो साधना की थी, मुसलमानी कायदाके विषयमें लिखे हुए उक्त ग्रंथको उसकी सिद्धिस्वरूप समझना चाहिए। संस्कृतकालेजमें शिक्षकका कार्य करते समय महामहोपाध्यायके समीप उन्होंने शास्त्रज्ञान प्राप्त करनेके लिए जो साधनाकी थी, उसकी सिद्धि उनके रचे हुए 'व्यवस्था-दर्पण' और 'व्यवस्था-चन्द्रिका' में दिखाई देती है। कलकत्ता हाईकोर्टमें जब वे दुभाषियाका कार्य्य करते थे उस समय उन्होंने उक्त दोनों ग्रंथोंकी रचना की थी। इनमेंसे एक ग्रन्थ तत्कालीन वकालतकी परीक्षाके लिए पाठ्य-ग्रंथ नियत किया गया था। श्यामाचरणने निश्चय और परिश्रमके गुणसे ९ भाषाओंका ज्ञान प्राप्त किया था। यद्यपि उन्होंने कानूनका अध्ययन किया था, परंतु वे भाग्यदेवताके किसी अज्ञात संके-

तके कारण वकालती धंदेको स्वीकार नहीं कर सके । श्यामाचरणका जीवन यद्यपि प्रतिभाके मुकुटसे शोभित नहीं था, तथापि परिश्रमद्वारा प्राप्त किये हुए गुणोंसे मंडित था । यद्यपि उनके जीवनमें अद्भुत या विस्मयजनक कोई बात नहीं है, परंतु जो कुछ है, उसमें सुनने, जानने और सीखने योग्य बहुत है । बालपन और युवावस्थाके बहुत दिन दरिद्रता और अनेक दुःखोंमें बिताकर, उन्होंने अपनी सच्चरित्रता और श्रमशीलताके कारण सरकारी उच्च नौकरी, सुखी गृहस्थाश्रम और समाजमें प्रतिष्ठा प्राप्त की थी—यह कुछ कम प्रशंसाकी बात नहीं है । श्यामाचरणकी सिद्धि और साधनाकी बात बहुत समयतक बंगालमें स्थिर रहेगी और वह उनकी अवस्थावाले साधकोंको साधनामें प्रवृत्त करेगी । जिसके जीवन और मरणमें सिद्धिकी ऐसी सार्थकता हो, उसे धन्य है !

* * * *

अक्षयकुमारकी सिद्धि ।

बंगालके साहित्य-क्षेत्रमें अक्षयकुमारकी कीर्ति अक्षय है । अपने जातीय-साहित्यके द्वारा जातिकी उन्नति करना उनके जीवनका महान् उद्देश्य था । जिस समय उन्होंने साहित्य-सेवाका व्रत ग्रहण किया था, उस समय बंग-भाषा और बंग-समाजकी अवस्था प्रशंसनीय नहीं थी । बंगला-साहित्यमें उस समय कुत्सित कविताका प्राधान्य था । उस समयके पाठकोंकी रुचि बी विचित्र थी । अक्षयकुमारने नये भाव और नये विचारोंसे भरे हुए विषयोंपर गद्य लिखनेका प्रयास किया और उसमें वे सफल हुए । ऐसा कहनेमें अतिशयोक्ति न होगी कि वे प्रतिभापूर्ण बंगला गद्य-साहित्यके स्रष्टा—विधाता थे । उन्होंने अपनी ओजस्विनी भाषामें बंगालियोंको उत्तम उत्तम नीतिकी शिक्षा दी है । ‘तत्त्वबोधिनी’ मासिकपत्रिका द्वारा उन्होंने शिक्षित

बंगालियोंको अनेक तत्त्व समझाये हैं। इस समय भी उनके रचे हुए चारुपाठ, धर्मनीति, और बाह्य-वस्तुके साथ मानव प्रकृतिके संबंधमें विचार, नामक ग्रन्थ बंग-समाजका बहुत कल्याण कर रहे हैं। अक्षयकुमारने बंग-भाषामें नव-जीवन प्रदान किया था। उन्होंने जिस समय बंग-साहित्यकी सेवा करना प्रारंभ किया था, उस समय बंग-भाषा जरावस्थामें थी। अक्षयकुमारके अकाल वृद्धावस्थाकी बात मनमें आते ही राजा ययातिकी पौराणिक कथाका स्मरण हो आता है। राजा ययाति जराग्रस्त थे। उनके पुत्र पुरुने अपने यौवनके साथ पिताके वार्द्धक्यका विनिमय किया था। पुत्रकी पूर्ण भक्तिके कारण ययाति जरामुक्त हुए थे। राजा ययातिके समान बंग-भाषाने भी अपने सुयोग्य पुत्रके कारण नव-जीवन प्राप्त किया था। बंगमाताके सुयोग्य पुत्र अक्षयकुमारने अपना स्वास्थ्य और जीवन देकर बंग-साहित्यमें नवजीवनका संचार किया था। वे मातृरूपिणी बंग-भाषाको जरामुक्त करके उसके गलेमें अक्षय यशकी माला पहिना गये हैं। अक्षयकुमारने बंगदेशमें जन्म ग्रहण किया था, अतएव बंगभूमिको धन्य है! बंग-भाषा अक्षयकुमार-द्वारा सेवित हुई है, अतएव वह भी धन्य है! और अक्षयकुमार अपनेको बंगवासी कहते थे, अतएव बंगवासी भी धन्य हैं!

बंगालके सफल-साहित्यसेवी अक्षयकुमारका योग्य सन्मान स्थिर रखनेके लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया। चित्र खींचने या मूर्ति स्थापित करनेसे वास्तविक स्मरण या सन्मान नहीं होता। बंगालके शिक्षित समुदायके मनोराज्यमें अक्षयकुमार भलीभाँति प्रतिष्ठा पा चुके हैं। यह सच है कि उनका पंचभौतिक शरीर नष्ट हो गया है, परंतु वे लोगोंके मनमें कीर्तिरूपसे अब भी जीवित हैं; कारण कि "(स जीवति मनो यस्य मननेन हि जीवति" मनमें जिसका मनन होता रहता है—जिसकी स्मृति बनी रहती है,—वही जीवित है।)

* * * *

कहा जाता है कि जो तंत्रोक्त साधनामें सिद्ध होता है, वह इच्छामात्रसे ही सब कर सकता है। उसके हस्तस्पर्शसे धूल स्वर्ण हो जाती है; शून्यमें जीवका आविर्भाव होता है, ऊसर जमीन तृण, लता, पुष्प आदिसे सुशोभित हो जाती है; उसकी अँगुलीके इशारेसे लोग हँसने या रोने लगते हैं; उनकी इच्छामात्रसे लोग व्याकुल या सुस्थ हो जाते हैं। साधनाका ऐसा ही माहात्म्य है। सिद्धिमें ऐसी ही ऐन्द्रजालिक शक्ति है। मधुसूदनने साधना द्वारा जो सिद्धि प्राप्त की थी, वह इसकी अपेक्षा किसी अंशमें कम न थी।

माइकेल मधुसूदन-दत्तकी साधना।

उनकी मंत्रसे पवित्र हुई कलमके स्पर्शसे अनेक अपूर्व ग्रन्थ लिखे गये हैं। उन्होंने साहित्य-क्षेत्रमें स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकोंके रमणीय और भयंकर प्राणियों तथा पदार्थोंको पाठकोंके सामने लटकते हुए चित्रके समान चित्रित किये हैं। उनको पढ़ते समय उनकी इच्छासे भूत और भविष्यकाल वर्तमानकी नाईं प्रतीत होता है। उनके दरशाये हुए देव और दानवोंके अमित-वीर्य्य, पराक्रम तथा सौन्दर्य्ययुक्त अद्भुत कार्योंको देखकर विस्मित होना पड़ता है। उनकी इच्छासे किसी समय विस्मय, किसी समय क्रोध और किसी समय करुणा रसके उद्रेकसे आँखोंसे आँसू गिरने लगते हैं।

वास्तवमें साहित्य-क्षेत्रमें मधुसूदनने असाधारण शक्ति दिखलाई है। उन्होंने अपने समग्र जीवनकी साधनासे जो शक्ति प्राप्त की थी, उसे मातृ-भाषाकी सेवामें खर्च की है। उनके काव्योंकी समालोचना करना न तो इस ग्रन्थका उद्देश्य ही है और न इस क्षुद्र ग्रन्थमें वह हो ही सकती है। मधुसूदनने कैसे संकल्पसे बंग-भाषाकी उन्नतिके लिए साधना की और उसमें कितने अंशमें सिद्धि प्राप्त की, यह हमारे पाठकोंको विदित ही है। जो साहित्य-सेवक साहित्य-क्षेत्रमें सुधार अथवा नये मार्गको दिखलानेका

गुरुतर भार उठानेकी इच्छा रखते हैं, उनको मधुसूदनकी अगम्य इच्छा-शक्ति, निर्भीकता और सबसे श्रेष्ठ उनके अगाध विविध ज्ञानकी बातको स्मरण रखना चाहिए। केवल प्रतिभापर आधार रखकर किसी कार्य्यमें प्रवृत्त होना योग्य नहीं है। यदि अतिशय तीक्ष्ण बुद्धि ही प्रतिभा कहलाती हो तो केवल उसकी सहायतासे कोई भी कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता। उसके लिए अविश्रान्त परिश्रम और कठोर साधनाकी आवश्यकता है। मधुसूदनदत्तने सैकड़ों भूलें करनेपर भी साहित्यके लिए कठोर साधना की है। बंग-भाषाकी उन्नतिके लिए उन्होंने जैसी साधना की है, वह पहले कही जा चुकी है। उनके रचे हुए ग्रन्थ उनकी सिद्धिका परिचय देते हैं। वे बंग-भाषाको समृद्धिशालिनी करके उसे अपार शब्दभंडार प्रदान कर गये हैं। उनके रचे हुए काव्योंसे बंगाली लोग अनंत आनंदामृत पान करेंगे और बंग-साहित्यका मानसिक कमल कभी मधुहीन न होगा।

यद्यपि मधुसूदनके हृदयरूपी अरण्यमें सैकड़ों आशालतायें सूखकर कुम्हला गईं किंतु बंगभूमिके लिए उन्होंने जो आशायें प्रकट की थीं वे पूर्णरूपसे सफल हुईं। उनके गुणोंसे प्रसन्न होकर जन्मभूमिने उनको अमरता प्रदान की है। बंगालके सर्वसाधारण लोगोंके हृदयमंदिरमें वे चिरकालतक विराजमान रहेंगे।

* * * *

रामदुलाल सरकारकी सिद्धि।

भारतभूमि शस्यश्यामला और विविध धन-रत्नोंकी खानि होनेपर भी हम दरिद्र हैं! दरिद्र भारतवर्षमें खेती और व्यापारकी उन्नति होनेकी बड़ी आवश्यकता है। जो महापुरुष परदेशी व्यापार करके प्रख्यात हुए हैं, उनमें रामदुलाल सरकार और सर जमसेदजी जीजीभाईका नाम उल्लेख योग्य है। उनके संकल्प और साधनाकी बात योग्य स्थलपर अनुक्रमसे कही गई है। अब उनकी

सिद्धिका प्रसंग है। रामदुलाल सरकारके जीवनके जिस समयकी बात हम इस समय कहते हैं, उस समय वे भारतवर्षके एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। रामदुलाल सरकार व्यापार करने, खूब पैसा कमाने तथा अच्छे कामों द्वारा अपने जीवनको यशस्वी बनानेकी इच्छा रखते थे। उनकी यह आशा पूर्णरूपसे सफल हुई। उनके सौभाग्यके समयकी बातोंका विचार करनेसे इस बातका यथोचित प्रमाण मिल जाता है। रामदुलाल सरकारकी चार निजी व्यापारी जहाजें थीं। इन जहाजोंके द्वारा वे अमेरिका और इंग्लैंडके साथ व्यापार किया करते थे। चीन और फिलिपाइन टापुओंको भी इनकी जहाजें आया-जाया करती थीं। विदेशी बड़े बड़े व्यापारियोंके साथ रामदुलालका कारबार चलता था। एक बार उन्होंने यूरोपके एक व्यापारीको तेतीस लाख रुपया ऋण देकर उसके व्यापारमें सहायता की थी। उन्होंने भारतमें अमेरिकाका व्यापार बढ़ानेके लिए बहुत श्रम किया था। अमेरिकाके व्यापारियोंको वे अनेक प्रकारसे सहायता दिया करते थे। भारतवर्षकी बनी हुई अनेक व्यापारिक वस्तुओंसे उनके जहाज भर देते थे और विदेशी वस्तुओंको भारतवर्षके बाजारमें पहुँचाते थे। आगे चलकर वे अमेरिकाके व्यापारीवर्गके प्रतिनिधि बनाये गये। उस देशके व्यापारी उनपर बहुत श्रद्धा-भक्ति रखते थे; यहाँतक कि एक अमेरिकन व्यापारीने अपने जहाजका नाम रामदुलालके नामसे प्रसिद्ध किया था।

रामदुलाल सरकारके स्वदेशी तथा विदेशी व्यापारका वृत्तान्त सुनकर साफ जाना जाता है कि उन्होंने अपने मंत्रमें सिद्धि प्राप्त की थी। उनके व्यापारमें लक्ष्मीका निवास था। चंचल लक्ष्मी उनके जीवनमें उनके घर अचल होकर रहती थी। लक्ष्मीकी कृपासे उनकी बाल्यावस्थाकी अनेक आशायें सफल हुई थीं। उन्होंने बहुत धन पैदा किया था और पैदा किये हुए धनको भक्त और आस्थावान् हिन्दूके

योग्य धर्मानुष्ठानमें लगाया था। उनके घरपर नित्य सैकड़ों अनाथ अन्न-पानसे तृप्त होते थे। उनकी स्थापित की हुई अतिथिशालामें सैकड़ों साधु-संन्यासी भोजन वसन पाकर उनको आशीर्वाद दिया करते थे। पुण्यतीर्थ काशीमें उन्होंने शिवालय बनवाया था। बंगाली हिन्दू जिन नित्य-नैमित्तिक कर्मकांडोंको करके अपनेको धन्य समझते हैं, रामदुलालने निज परिश्रमद्वारा पैदा किये हुए धनसे उन सबको सम्पन्न किया था।

रामदुलाल सरकारकी नाशवान् देह नष्ट हो गई; परंतु उनके संकल्प, साधना और सिद्धिकी बातें चिरकालतक बंगदेशमें व्याप्त रहेंगी और वे इस दासत्व-पंकमें डूबे हुए दरिद्र देशमें निज पुरुषार्थ और व्यापारके माहात्म्यको प्रकट करती रहेंगी।

* * * *

सिद्धि और शक्ति ये दोनों शब्द बहुत जगह एक ही अर्थमें व्यवहृत किये जाते हैं। सिद्धपुरुष शक्तिवान् होते हैं।

सर जमसेदजी जीजी-भाईकी सिद्धि।

उत्तम इच्छावाले पुरुष शक्तिकी सहायतासे अनेक उत्तम कार्य करते हैं। पारसी व्यापारी जमसेदजीने लक्ष्मीकी कृपासे सिद्धि प्राप्त की थी। उनके पास पैसेका बड़ा बल था। उन्होंने द्रव्यबलसे देश और विदेशमें अनेक उत्तम कार्य किये हैं। बम्बई प्रान्तमें स्वदेश और स्वदेशवासियोंके कल्याणके लिए उन्होंने जो कुछ किया है, वह अबतक विद्यमान है। सन् १८३७ में काठियावाड़ प्रान्तमें अत्यंत भयानक आग लगी थी। उसके कारण २० हजार आदमी भिखारी हो गये थे। इस दुखदायी समाचारको सुनते ही उन्होंने ३५ हजार रुपया उन दीन दुखियोंकी सहायताके लिए भेजा था। पारसियोंकी अग्यारी बनवानेके लिए उन्होंने ६० हजार रुपया दिया था। ८० हजार रुपया व्यय करके उन्होंने बम्बईमें जो धर्मशाला बनवाई थी, वह आज भी उनकी दानशीलताको प्रकट कर रही है। दो लाख रुपया खर्च करके

उन्होंने अस्पताल बनवाई थी। बम्बईका सुप्रसिद्ध सर जमसेदजी जीजी-भाई आर्टस्कूल उनकी अचल कीर्ति है। उन्होंने बम्बई प्रान्तमें छोटे मोटे अनेक दान किये हैं। उनकी कीर्ति सुदूर यूरोपतक जा पहुँची थी। उनकी सुकीर्ति सुनकर महारानी विक्टोरियाने संतोष प्रकट किया था और राजकृपास्वरूप उनको ब्रिटिश राज्यके बेरोनेटकी पदवी दी थी। सन् १८४२ ई० में उक्त उपाधि प्रदान करते समय बम्बईके तत्कालीन गवर्नर सर जार्ज एन्डरसनने जो कुछ कहा था, उसका मर्म इस प्रकार है—

"The dignity of knighthood has amongst natives of Enrope been considered as most honaurable. to abtain this distinction has continually been the ambition of the highest minds and noblest spirits, either by deeds of most daring valour or by the exercise of the most eminent talent."

"You by your deeds for the good of mankind, by your acts of princely munificence to alleviate the pains of Suffering humanity, have attained this honour and have edrolled among the illustrions of the land."

"यूरोपनिवासी 'नाइटहुड' के खितावको बहुमानास्पद समझते हैं। सद्-इच्छा रखनेवाले बड़े बड़े आदमियोंको जो अपनी उत्कृष्ट बुद्धिका परिचय देते या जो किसी महान् कार्य्यको कर दिखलाते हैं, उनको यह खिताब दिया जाता है."

"तुमने मनुष्य जातिकी भलाईके लिए किये हुए अपने कामों तथा दीन-दुखियोंको दुःखसे मुक्त करनेकी इच्छासे राजोचित दानके कारण इस पदको पाया है और देशके नामाङ्कित पुरुषोंमें अपना नाम प्रसिद्ध किया है।"

महाराष्ट्र देशमें महापुरुषोंकी पूजा होती है। जिस जगह वीर पुरुषोंका आदर नहीं होता, उस जगह वीर पुरुष जन्म नहीं लेते। सन् १८५६ ई० में बम्बई निवासियोंने ६० हजार रुपया खर्च करके सर जमसेदजीकी मूर्ति टाउनहालमें स्थापित की थी। उस मूर्तिके गलेमें सुन्दर जयमाला सुशोभित हो रही है। उसमें लिखा है—" सर जमसेदजी

जीजीभाई, नाइटको उनकी उदारता और स्वदेशाभिमानके हेतु ब्रिटिश राज्यकी ओरसे भेंट। " बम्बईनिवासियोंने वीर-पूजा की है, उसके फल-स्वरूप उन्होंने भारतमाताके सुपूत जे. एन. ताता जैसे महापुरुषको पाया है। वीर-पूजाका ऐसा ही फल है। आदर्शकी ऐसी ही महिमा है।

आदर्शकी महिमा अनंत है। आदर्शसे मनुष्यके मनमें उत्साहका संचार होता है। आदर्श निराश और आलसी हृदयमें आशा और उत्साहका प्रकाश फैलाता है। इस क्षुद्र ग्रन्थमें जिनके संकल्प, साधना और सिद्धिके पुण्य-प्रसंग वर्णित किये गये हैं, वे कर्मक्षेत्रमें भारतीय नवयुवकोंके निकट चिरकालतक आदर्शरूप रहेंगे। कर्मक्षेत्रके भिन्न भिन्न विभागोंमें इन सब कर्मवीरोंके आदर्शोंसे उत्साहित होकर जो लोग साधनामें तत्पर होंगे, वे सिद्धिके मार्गमें आगे बढ़ सकेंगे। ज्ञानके साथ युवाओंकी श्रद्धा और भक्ति भी बढ़ेगी। वे वीर-पूजा करना सीखेंगे। सिद्धपुरुषोंके आशीर्वादसे उनके मनमें शक्तिका संचार होगा, कर्ममें आस्था होगी, संकल्प दृढ़ होगा, साधनामें प्रवृत्ति होगी और भगवत्कृपासे सिद्धि उनके समीप आ जायगी। तभी भारतवर्षके सौभाग्यका उदय होगा। कारण कि शास्त्रकारोंने कहा है कि—

" आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते॥ "

" बारंबार थक जानेपर भी कर्मोंका आरंभ करना चाहिए; क्योंकि कर्मोंके आरंभ करनेवाले पुरुषकी ही सेवा लक्ष्मी करती है। "
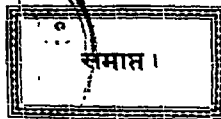
हिन्दी-साहित्य-प्रचारक ग्रंथमाला।
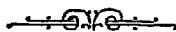
उद्देश्य—इस मालाका जन्म मातृभाषा हिन्दीके उत्तमोत्तम ग्रंथोंका हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें प्रचार करनेके लिए हुआ है।

स्थायीग्राहक—॥) प्रवेशफीस दाखिल करनेवाले मालाके स्थायीग्राहक समझे जावेंगे। और उन्हें कार्यालयसे प्रकाशित पुस्तकें पौनी कीमतमें भेजी जावेंगी।

पोस्टेज और मनिआर्डर कमीशन खरीददारके जिम्मे रहेगा। मालाके निम्न ग्रंथ तैयार हुए हैं:—

गुरु-शिष्य-संवाद—(ग्रंथमालाका प्रथम पुष्प) यह पुस्तक भारतवर्षके उद्धारक स्वामी विवेकानंदजीके मुखारविन्दसे निकले उपदेशोंका स्रोत है। समय समयपर उनके शिष्योंने जो उनसे प्रश्न किये थे, वे ही प्रश्नोत्तररूपसे इस पुस्तकमें लिखे गये हैं। इसमें देशभक्ति सामाजिक तत्त्व धार्मिक और ज्ञान विषयक अनेक कूट प्रश्नोंको सरल भाषामें हल किया है। पुस्तककी लेखनशैली ऐसी विचित्र है कि उसका परिणाम पाठकोंके मनपर शीघ्र पड़े बिना नहीं रहता है। स्वामीजीके उपदेशोंकी अधिक प्रशंसा करना, मानो सूर्यको दीपक दिखाना है। मूल्य ।)

आर्थिक-सफलता—(ग्रंथमालाका द्वितीय पुष्प) यह पुस्तक एडवर्ड ई० बिलसकी 'फाइनानशियल सकसेस' के आधारसे लिखी गई है। इसमें प्रामाणिकपनसे पैसा पैदा करनेकी युक्तियाँ लिखी गई हैं। इसमें बतलाये हुये मानसिक विचारों द्वारा बिल्कुल गरीब और निर्धन मनुष्य भी धनवान् बन सकता है। मूल्य ।=)

नारी-नीति—स्त्रियोंके नित्य उपयोगमें आनेवाले अनेक गुणोंका वर्णन इस पुस्तकमें बड़ी उत्तमताके साथ किया गया है। प्रत्येक गृहिणीके हाथमें देने योग्य अपूर्व पुस्तक है। इस पुस्तकके अनुवादक है, हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक पंडित रूपनारायणजी पांडेय। मूल्य लगभग ॥=)होगा, शीघ्र छपकर प्रकाशित होगी।

गृहिणीभूषण—स्त्रियोंकी वास्तविक शोभा कीमती कपड़ों और जेवरसे नहीं होती। किन्तु उत्तम गुणोंके सीखनेसे होती है। इस पुस्तकमें स्त्रियोंके योग्य उत्तमोत्तम २४ गुणोंका वर्णन बड़ी खूबीके साथ सरल भाषामें किया है। पति प्रेम, सतीत्व रक्षा, स्वजनवात्सल्य, चरित्रगठन, गृह-प्रबंध, माताका कर्त्तव्य, गर्भवतीका कर्त्तव्य, सन्तान पालन आदि कई बातोंका समावेश करके यह भूषण तैयार किया गया है। इस पुस्तकके उपदेशसे आपका घर स्वर्गधाम बन जायगा। प्रथमावृत्ति हाथोंहाथ बिक गई। दूसरी बार छपी है। मू० ॥)

अन्य उत्तमोत्तम पुस्तकें।

आदर्श चरितावली—परोपकारी महात्माओंके पवित्र जीवनचरित मूल्य।~)

मेरे गुरु देव—जगत्प्रसिद्ध स्वामी विवेकानंदके गुरु स्वामी रामकृष्णका सचित्र जीवनचरित मू०।)

भारतीय नीतिकथा—महाभारतकी शिक्षाप्रद कथायें मूल्य ।॥)

जननी-जीवन—माताके कर्त्तव्योंका वर्णन ॥~)

शारदा—स्त्रीपाठ्य अपूर्व उपन्यास ।=)

अन्योक्ति कुसुमाञ्जलि—कविता...~)

मनोरंजक कहानियाँ—इसमें बच्चोंके लिए छोटी छोटी कहानियाँ हैं। मू०≡)

सदाचार-सोपान—यह पुस्तक बँगलाके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत अविनाशचन्द्रदास एम. ए. बी. एल. की 'सुकथा' नामक पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। इसमें धैर्य्य, स्वावलम्बन, शिक्षा, यौवन, व्यायाम, अध्यवसाय, सुनीति, आदि छात्रोपयोगी अनेक उत्तम विषयोंका समावेश किया गया है। छात्रोंके लिए बहुत कामकी पुस्तक है। छपाई सफाई बम्बई की है। मूल्य ।)

इनके सिवाय हमारे यहाँ हिन्दीग्रन्थरत्नाकर का० हिन्दी-गौरवग्रंथमाला बम्बई और अन्यान्य स्थानोंकी उत्तमोत्तम पुस्तकें विक्रयार्थ रहती हैं। बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये।

मिलनेका पता—

मैनेजर-हिन्दी-साहित्य-प्रचारक कार्यालय,
नरसिंहपुर (म० प्र०)।